रचना संसार

उपन्यास एवं कहानियों का परिचय

Rachna Sansar: Introduction to Hindi and Sanskrit Plays

साहिल सक्सेना

रचना संसार : उपन्यास एवं कहानियों का परिचय

रचना संसार : उपन्यास एवं कहानियों का परिचय

(Rachna Sansar: Introduction to Novels and Stories)

साहिल सक्सेना

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-6113-8

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

उपन्यास को मानव जीवन का गद्यात्मक महाकाव्य कहा जाता है। जीवन के विविध पक्षों का व्यापक चित्रण यहां कथा के माध्यम से किया जाता है। लोकरंजन की भावना के साथ लोकमंगल की भावना इसके पीछे रहती है। आज साहित्य की सबसे लोकप्रिय विद्या उपन्यास बन चुकी है। प्रत्यक्ष जीवन की घटना को कथा के रंग में रंगकर उपन्यास में चित्रित किया जाता है।

हिंदी उपन्यास का आरम्भ श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (1882 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चंद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरम्भ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

कहानी, हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है।

कहानी एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। प्राय:

सभी पत्र-पत्रिकाओं में, पाठकीय माँग के फलस्वरूप, कहानियों का छापा जाना अनिवार्य हो गया है। इस देश की प्रत्येक भाषा में केवल कहानियों की पत्रिकाएँ भी संख्या में कम नहीं हैं। रहस्य, रोमांस और साहस की कहानियों के अतिरिक्त उनमें जीवन को गंभीर रूप में लेने वाली कहानियाँ भी छपती हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**हिन्दी उपन्यास**	**1**
	उपन्यास	1
	उपन्यास का तात्विक विवेचन	3
	उपन्यास के प्रकार	6
	हिंदी साहित्य में उपन्यास	11
2.	**कहानी**	**13**
	परिभाषा	14
	हिन्दी कहानी का इतिहास	15
3.	**गोदान (उपन्यास)**	**18**
	उपन्यास का सारांश	18
	कथानक	20
4.	**गबन**	**22**
5.	**आहुति**	**58**
6.	**एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न**	**68**
7.	**परीक्षा गुरु (हिन्दी का प्रथम उपन्यास)**	**74**
	भाषा-शैली	75

8. बाणभट्ट की आत्मकथा **76**
कथानक 76
9. अनामदास का पोथा **78**
प्रमुख पात्र 78
10. डाक बंगला **80**
11. प्रेमा **90**
12. वरदान **97**
वैराग्य 99
13. दुनिया का सबसे अनमोल रत्न **107**
14. मनुष्य का जीवन आधार क्या है **116**
15. वैशाली की नगरवधू **128**
प्रमुख पात्र 130
16. निर्मला **146**

1

हिन्दी उपन्यास

परंपरागत रूप से गद्य साहित्य और उसके समस्त विधात्मक रूप श्रव्य साहित्य के अंतर्गत आते हैं। रूप रचना की दृष्टि से गद्य साहित्य के कथात्मक गद्य, विचार गद्य, विश्लेषणात्मक गद्य, भावात्मक गद्य जैसे कई प्रकार किए जा सकते हैं। कथात्मक गद्य जिसे कथाश्रुत गद्य साहित्य भी कहा जाता है, ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारीक, राजनैतिक, आर्थिक किसी भी प्रकार की कथा का विशेष ढंग से वर्णन करता है। इसमें कथा का आश्रय लेकर लेखक अपने विचारों को व्यक्त करता है। यह कथा किसी वस्तु, स्थान, व्यक्ति, वर्ण आदि से संबंधित हो सकती हैं। जिसके माध्यम से लेखक जीवन के समस्त आयामों को अभिव्यक्त करता है। कथात्मक गद्य के अंतर्गत उपन्यास,कहानी, नाटक आदि को लिया जा सकता है।

उपन्यास

इसे मानव जीवन का गद्यात्मक महाकाव्य कहा जाता है। जीवन के विविध पक्षों का व्यापक चित्रण यहां कथा के माध्यम से किया जाता है। लोकरंजन की भावना के साथ लोकमंगल की भावना इसके पीछे रहती हैं। आज साहित्य की सबसे लोकप्रिय विद्या उपन्यास बन चुकी है। प्रत्यक्ष जीवन की घटना को कथा के रंग में रंगकर उपन्यास में चित्रित किया जाता है।

व्युत्पतिलभ्य अर्थ

वास्तव में हिंदी उपन्यास का उद्‌भव और विकास अंग्रेजी उपन्यास के प्रभाव से हुआ। यह अंग्रेजी के Novel का पर्यायी है। जिसका अर्थ है, कुछ नया। मराठी में कादंबरी, गुजराती में नवलकथा के नाम से यह जाना जाता है।

हिंदी में उपन्यास शब्द को दो शब्दों के मेल से स्वीकारा गया है। उप. न्यास, 'उप' उपसर्ग है, जिसका अर्थ है सामने या समीप, तो 'न्यास' का अर्थ है रखना। अर्थात निकट रखी हुई वस्तु। जिसके अनुसार हम उपन्यास उस कृति को कहेगें जिसे पढकर लगे, यह हमारी ही है, जिसमें जीवन का प्रतिबिंब हो। वैसे संस्कृत के साहित्य में भी उपन्यास शब्द का उल्लेख हुआ है, लेकिन सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग किसने किया यह ज्ञात नहीं है।

परिभाषा

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

न्यु इंग्लिश डिक्शनरी

उपन्यास एक लंबी काल्पनिक कथा या प्रबंधन है, जिसके द्वारा एक कार्यकरण शृंखला में बद्ध कथावस्तु में वास्तविक जीवन के प्रतिनिधि पात्र का चित्रण होता है।

बेकन

उपन्यास कल्पित इतिहास है।

फिल्डींग

उपन्यास एक मनोरंजनपूर्ण महाकाव्य है।

बेकर

उपन्यास वह रचना है, जिसमें किसी कल्पित गद्य कथा द्वारा मानव जीवन की व्याख्या की गई हो।

डॉ. श्याम सुंदर दास

मनुष्य के वास्तविक जीवन की कथा उपन्यास है।

प्रेमचंद

'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मानता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना ही उपन्यास का मूलतत्त्व है।'

इन परिभाषाओं को देखने के पश्चात कहा जा सकता है कि उपन्यास ऐसा गद्यमय आख्यान है, जिसमें मानव जीवन का यथार्थ चित्रण किया जाता है।

उपन्यास का तात्विक विवेचन

उपन्यास में घटनाएं होती हैं, जो उपन्यास के कथा शरीर का निर्माण करती हैं। यही घटनाएं उपन्यास के जिस अंग में संपादित की जाती हैं, उन्हें कथावस्तु कहते हैं। कथावस्तु और घटनाएं जिन मनुष्यों पर आधारित होती हैं वे मनुष्य पात्र कहलाते हैं। इन पात्रों का पारस्पारिक वार्तालाप कथोपकथन कहलाता है। पात्रों के आस-पास की स्थिति देशकाल वातावरण कहलाती हैं। उपन्यास के वर्णन की एक विशिष्ट पद्धति होती हैं, जो शैली कहलाती हैं। संपूर्ण कथा तथा पात्र किसी उद्देश्य या विचार की अभिव्यक्ति करते हैं। इस तरह उपन्यास के मुख्यत: छह तत्त्व माने जाते हैं, जो निम्नानुसार है-

1. कथावस्तु

उपन्यासों की दृष्टि से कथावस्तु को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। कथावस्तु उपन्यास का मूलतत्त्व है। जिसे अंग्रेजी में Plot कहते हैं। जिस तरह भवन निर्माण के लिए भूमि उसका आधार मानी जाती हैं, उसी प्रकार कथावस्तु उपन्यास का आधार है। कथावस्तु में तीन गुणों का होना आवश्यक है- रोचकता, संभाव्यता तथा मौलिकता। रोचकता लाने के लिए कौतुहल और नवीनता की आवश्यकता है। आज के जाग्रत पाठक के लिए असंभाव्य घटनाएं कोई अर्थ नहीं रखति। अत: उपन्यासकार को संभाव्यता की ओर ध्यान देना चाहिए। मौलिकता से तात्पर्य प्रस्तुति के ढंग से है, साथ ही प्रामाणिक अनुभूति से है।

उपन्यासकार की सफलता के लिए कथानक में समन्वित विकास की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। प्रत्येक उपन्यास के विकास की तीन अवस्थाएं होती हैं- आरंभ, मध्य और अंत। वैसे देखा जाए तो कथानक के दो रूप माने जाते हैं- वस्तुविन्यास की दृष्टि से और अभिव्यंजना या अभिव्यक्ति पद्धति से।

वस्तुविन्यास के अंतर्गत दो तरह के कथानक होते है। चरित्रप्रधान या भाव-विचार प्रधान तथा घटनाप्रधान। पहले प्रकार में चरित्र या कोई भाव विचार प्रमुख होते हैं, तो दूसरे में घटना प्रमुख होती हैं।

अभिव्यक्ति पद्धति की दृष्टि से वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्र या संवाद या फिर डायरी रूप में कथानक देखे जा सकते हैं। पूर्व दीप्तिशैली या फ्लैशबैक शैली इसमें सम्मिलित की जा सकती हैं। वस्तुस्थितियों की जटिलता, जीवन की दृढता उपन्यास के कथानक में द्वंद्व और संघर्ष उत्पन्न करती हैं। जिससे कथा में गति आती हैं और कथा विकसित होती हैं। मुख्य कथा के साथ कुछ उपकथाएं भी चलती हैं। स्पष्ट है, उपन्यास में कथानक का वही स्थान है, जो मानव शरीर में रीड़ की हड्डी का होता है।

2. पात्र

उपन्यास के कथा रूपी शरीर को गति देनेवाले अवयव पात्र कहलाते हैं। इस कारण उपन्यास के पात्र सजीव, स्वाभाविक, सहज हो। किसी भी पात्र के दो पक्ष होते हैं- बाह्य और आंतरिक। बाह्य व्यक्तित्त्व के अंतर्गत पात्र का आकार, रूप, वेशभूषा, आचरण का ढंग, बातचीत का ढंग आते हैं। तथा आंतरिक पक्ष में उस पात्र की मानसिकता तथा बौद्धिक विशेषतायें आती हैं।

उपन्यास के कुछ पात्र केंद्रिय होते हैं, जिनके इर्द-गिर्द उपन्यास की सारी कहानी घूमती रहती हैं। ऐसे पात्र को मुख्य पात्र कहा जा सकता है। तो अन्य गौण पात्र होते हैं, जो मुख्य पात्रों से किसी न किसी रूप से संबंध बनाये रहते हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से कुछ पात्र परिस्थितियों के अनुरूप अपने आप को बदलते हैं, जिन्हें यथार्थवादी पात्र कहा जाता है। जब कि कुछ पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं- जिन्हें वर्गगत पात्र कहा जाता है। विशेष तथा अलग व्यक्तित्त्ववाले पात्र व्यक्तिगत पात्र कहलाते हैं। वैसे उपन्यास में चरित्र -चित्रण की जिन विधाओं या प्रकारों को अपनायां गया है वे - वर्णनात्मक, नाटकीय, विश्लेषणात्मक आदि हैं।

3. संवाद योजना

पात्रों के परस्पर वार्तालाप को संवाद योजना या कथोपकथन कहते हैं। उपन्यास में लेखक अपनी ओर से बहुत कुछ कह सकता है। मगर यदि वह पात्रों से मुख से वार्तालाप करता है, तो उपन्यास अधिक सजीव बनेगा। वैसे संवाद भी उद्देश्य पूर्ण होने चाहिए। उपयुक्त अवसरों पर उनका प्रयोग होना चाहिए। अच्छे संवादों की कुछ विशेषतायें होती हैं-

- संवाद चरित्र चित्रण में सहायक होते हैं।
- संवाद उपन्यास की कथावस्तु को आगे बढानेवाले हों।
- संवाद आकार में संक्षिप्त हों।
- संवाद पात्र तथा परिस्थिति के अनुकूल हों।
- संवाद की भाषा जीवन की भाषा के समांतर हों।

इस दृष्टि से स्थान आवश्यक, सार्थक, गतिशील चरित्र चित्रणक्षम तथा पात्रानुरूप भाव या विचारारूप संवाद आदर्श कहे जाएंगे।

4. देशकाल वातावरण

उपन्यास की कथावस्तु जिस परिवेश में घटित होती हैं, उसका संबंध किसी न किसी स्थान से होता है। कथा किसी समय विशेष या युग विशेष की देन होती हैं। कथा का विकास भी स्थान और समय के अनुरूप होता है। उपन्यास में देश के अनुसार रीति-रिवाज, परंपरा, रहन-सहन, आचार -व्यवहार, वेशभूषा, बोल-चाल, व्यवहार तथा राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थिति का चित्रण किया जाता है। देशकाल- वातावरण उपन्यास की कथा में यथार्थवाद लाने में मदद करता है।

5. भाषाशैली

भाषाशैली के माध्यम से उपन्यासकार अपनी रचना को आकर्षक और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करता है। भाषा पात्रों को वाणी प्रदान करती हैं, तो शैली उसे प्रतिष्ठा दिलाती हैं। अत: उपन्यास की भाषा स्पष्ट, सरल और प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए। अलंकार, मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रयोग आवश्यकतानुसार होना चाहिए। उपन्याकार के विचार और भावनाएं शैली का रूप पाते हैं।

उपन्यास में कई शैलियां पाई जाती हैं। जैसे वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी, मिश्रित शैली, ऐतिहासिक या नाटकीय शैली आदि।

6. उद्देश्य

प्रत्येक उपन्यासकार किसी न किसी विचार से प्रभावित होकर लेखन कार्य करता है। उपन्यास में जीवन के दृष्टिकोण को व्याख्यायित करने का प्रयास उपन्यासकार का होता है। इस दृष्टि से उद्देश्य सभी तत्त्वों का साध्य है। आरंभ में उपन्यासों का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना था। लेकिन साहित्य की अन्य

विधाओं की तरह वर्तमान उपन्यास भी जीवन के यथार्थ को सामने रखने की कोशिश करता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा मानव मन का गहन व्याख्या का प्रयास इसमें किया जा रहा है। जीवन रहस्यों को, जीवन के अनुभवों को व्यक्त करने का कार्य उपन्यास करते हैं।

उपन्यास के प्रकार

वर्ण विषय, उद्देश्य आदि के आधार पर उपन्यास के कुछ प्रकार माने जाते हैं। इनमें सामाजिक, तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आंचलिक, घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान, आदर्शवादी, यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक, मार्क्सवादी, जनवादी समस्यावादी आदि प्रमुख हैं।

आकार के आधार पर भी बृहत् या महाकाव्यात्मक, लघु उपन्यास जैसे इसके भेद किए जा सकते हैं।

हिंदी उपन्यास का आरम्भ श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (1882 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चंद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरम्भ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात प्रेमचंद (1918-1936) से हुआ। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी की ओर मुड़े। आपके 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान', आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का उत्तम चित्रण है। चरित्रचित्रण में प्रेमचंद गांधी जी के 'हृदयपरिवर्तन' के सिद्धांत को मानते थे। बाद में उनकी रुझान समाजवाद की ओर भी हुआ, ऐसा जान पड़ता है। कुल मिलाकर उनके उपन्यास हिंदी में आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यासों में भिन्न प्रकार के समाजों का चित्रण है, परंतु शैली अधिक काव्यात्मक है। प्रेमचंद की ही शैली में, उनके अनुकरण से विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था। परंतु पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि ने फ्रांसीसी ढंग का

यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नैचुरॉलिज्म) अपनाया और समाज की बुराइयों का दंभस्फोट किया। इस शैली के उपन्यासकारों में सबसे सफल रहे 'चित्रलेखा' के लेखक भगवतीचरण वर्मा, जिनके 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' का भी इस समाज की बुराइयों के चित्रणवाली रचनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र' इसी यथार्थवादी शैली में आगे बढ़कर आंचलिकता मिलानेवाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। सियारामशरण गुप्त की 'नारी' की अपनी अलग विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से शुरू हुए। 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि से भी अधिक आप के 'त्यागपत्र' ने हिंदी में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जैनेंद्र जी दार्शनिक शब्दावली में अधिक उलझ गए। मनोविश्लेषण में स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने 'शेखर – एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी' में उत्तरोत्तर गहराई और सूक्ष्मता उपन्यासकला में दिखाई। इस शैली में लिखनेवाली बहुत कम मिलते हैं। सामाजिक विकृतियों पर इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी' आदि में अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस शैली के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और नरेश मेहता का 'वह पथबंधु था' उत्तम उपलब्धियाँ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक बहुत मनोरंजक कथाप्रयोग है जिसमें प्राचीन काल के भारत को मूर्त किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा के 'महारानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिकता तो बहुत है, रोचकता भी है, परंतु काव्यमयता द्विवेदी जी जैसी नहीं है। राहुल सांकृत्यायन (1895-1963), रांगेय राघव (1922-1963) आदि ने भी कुछ संस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास दिए हैं।

यथार्थवादी शैली सामाजिक यथार्थवाद की ओर मुड़ी और 'दिव्या' और 'झूठा सच' के लेखक भूतपूर्व क्रांतिकारी यशपाल और 'बलचनमा' के लेखक नागार्जुन इस धारा के उत्तम प्रतिनिधि हैं। कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में प्रचार का आग्रह बढ़ गया है। हिंदी की नवीनतम विधा आंचलिक उपन्यासों की है, जो शुरू होती हैं फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' से और उसमें अब कई लेखक हाथ आजमा रहे हैं, जैसे राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, मनहर चौहान, शिवानी इत्यादि।

हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास

हिंदी के मौलिक कथासाहित्य का आरम्भ ईशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात् पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाजसुधार है।

भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाजसुधारक के रूप में लिखा। बाबू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यासलेखक थे जिन्होंने विशुद्ध उपन्यासलेखक के रूप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिए ही कहानी कही। वह अपने युग के घात प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी शृंखला जोड़ी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम ईशाकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलतापूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथासाहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती हैं। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में पं. किशोरीलाल गोस्वामी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा में घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्रायः सभी कहीं पड़ा हुआ है।

जासूसी उपन्यासलेखकों में बाबू गोपालराम गहमरी का नाम महत्त्वपूर्ण है। गहमरी जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण स्वयं अनुभव की हुई घटनाओं के आधार पर किया है, इसलिए कथावस्तु पर प्रामाणिकता की छाप है। कथावस्तु हत्या या लाश के पाए जाने के विषयों से संबंधित है। जनजीवन से संपर्क होने के कारण उपन्यासों की भाषा में ग्रामीण प्रयोग प्रायः मिलते हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासलेखकों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। तिलस्मी उपन्यासों की दिशा में जौहर ने बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा स्थापित उपन्यासपरंपरा को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। आधुनिक जीवन की विषमाओं एवं सभ्य समाज के यथार्थ जीवन का प्रदर्शन करने के लिए ही बाबू हरिकृष्ण जौहर ने जासूरी उपन्यासों का निर्माण किया है। 'काला बाघ' और 'गवाह गायब' आपके इस दिशा में महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों का निर्माण लोकसाहित्य की आधारशिला पर हुआ। कौतूहल और जिज्ञासा के भाव ने इसे विकसित किया। आधुनिक जीवन की विषमताओं ने जासूसी उपन्यासों की कथा को जीवन के यथार्थ में प्रवेश कराया। असत्य पर सत्य की सदैव ही विजय होती हैं यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति का केंद्रबिंदु है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मूल रूप से पाई जाती हैं।

उपन्यास : गद्य लेखन की एक विधा

परिचय

अर्नेस्ट ए. बेकर ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसे गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। यों तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवत: कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज तक के साहित्य का मेरुदंड रही हैं, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना अधिक समीचीन होगा। साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक है। साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना आसान हो गया है। जहाँ महाकाव्यों में कृत्रिमता तथा आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती हैं, आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विशृंखलताओं का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।

यथार्थ के प्रति आग्रह का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि कथा साहित्य के अपौरुषेय तथा अलौकिक तत्त्व, जो प्राचीन महाकाव्यों के विशिष्ट अंग थे, पूर्णतया लुप्त हो गए। कथाकार की कल्पना अब सीमाबद्ध हो गई। यथार्थ की

परिधि के बाहर जाकर मनचाही उड़ान लेना उसके लिए प्रायः असंभव हो गया। उपन्यास का आविर्भाव और विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ। एक ओर जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामन्य धरातल से देखने तथा चित्रित करने की प्ररेणा दी वहीं दूसरी ओर उसने जीवन की समसयाओं के प्रति एक नए दृष्टिकोण का भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यतः बौद्धिक था। उपन्यासकार के ऊपर कुछ नए उत्तरदायित्व आ गए थे। अब उसकी साधना कला की समस्याओं तक ही सीमित न रहकर व्यापक सामाजिक जागरुकता की अपेक्षा रखती थी। वस्तुतः आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है उतना साहित्य के अन्य किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं।

सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अर्जित व्यक्तिस्वातंत्र्य के साथ लगी हुई है। इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतिष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्त्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

अंग्रेजी के महान् उपन्यासकार हेनरी फील्डिंग ने अपनी रचनाओं को गद्य के लिखे गए व्यंग्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी। उन्होंने उपन्यास की इतिहास से तुलना करते हुए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण कहा। जहाँ इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं तक ही सीमित रहता है, उपन्यास प्रदर्शित जीवन के सत्य, शाश्वत और संर्वदेशीय महत्त्व रखते हैं। साहित्य में आज उपन्यास का वस्तुतः वही स्थान है, जो प्राचीन युग में महाकाव्यों का था। व्यापक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य है, लेकिन जहाँ महाकाव्यों

में जीवन तथा व्यक्तियों का आदर्शवादी चित्र मिलता है, उपन्यास, जैसा फील्डिंग की परिभाषा से स्पष्ट है, समाज की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार के लिए कहानी साधन मात्र है, साध्य नहीं। उसका ध्येय पाठकों का मनोरंजन मात्र भी नहीं। वह सच्चे अर्थ में अपने युग का इतिहासकार है, जो सत्य और कल्पना दोनों का सहारा लेकर व्यापक सामाजिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।

उपन्यासिका

उपन्यास के समानांतर इधर उपन्यासिका नामक नवीन गद्य विधा का सूत्रपात हुआ है

हिंदी साहित्य में उपन्यास

हिंदी साहित्य में उपन्यास शब्द के प्रथम प्रयोग के संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि- 'हिन्दी में नॉवेल के अर्थ में उपन्यास पद का प्रथम प्रयोग 1875 ई. में हुआ।'

प्रथम उपन्यास

बाणभट्ट की कादम्बरी को विश्व का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है। कुछ लोग जापानी भाषा में 1007 ई. में लिखा गया "जेन्जी की कहानी" नामक उपन्यास को दुनिया का सबसे पहला उपन्यास मानते हैं। इसे मुरासाकी शिकिबु नामक एक महिला ने लिखा था। इसमें 54 अध्याय और करीब 1000 पृष्ठ हैं। इसमें प्रेम और विवेक की खोज में निकले एक राजकुमार की कहानी है।

यूरोप का प्रथम उपन्यास सेर्वैन्टिस का "डोन क्विक्सोट" माना जाता है, जो स्पेनी भाषा का उपन्यास है। इसे 1605 में लिखा गया था।

अंग्रेजी का प्रथम उपन्यास होने के दावेदार कई हैं। बहुत से विद्वान 1678 में जोन बुन्यान द्वारा लिखे गए "द पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस" को पहला अंग्रेजी उपन्यास मानते हैं।

भारतीय भाषाओं में उपन्यास

जिसे बँगला और हिंदी में उपन्यास कहा जाता है गोपाल राय के अनुसार उसे 'उर्दू में 'नाविल', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई है।'

हिन्दी का प्रथम उपन्यास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार परीक्षा गुरु हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसके लेखक लाला श्रीनिवास दास हैं। 'देवरानी जेठानी की कहानी' (लेखक – पंडित गौरीदत्त, सन् 1870)। श्रद्धाराम फिल्लौरी की भाग्यवती को भी हिन्दी के प्रथम उपन्यास होने का श्रेय दिया जाता है।

मलयालम

इंदुलेखा – रचनाकाल, 1889, लेखक चंदु मेनोन

तमिल

प्रताप मुदलियार – रचनाकाल 1879, लेखक, मयूरम वेदनायगम पिल्लै

बंगाली

दुर्गेशनंदिनी – रचनाकाल, 1865, लेखक, बंकिम चंद्र चटर्जी

मराठी

यमुना पर्यटन – रचनाकाल, 1857, लेखक, बाबा पद्मजी।

इसे भारतीय भाषाओं में लिखा गया प्रथम उपन्यास माना जाता है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि भारत की लगभग सभी भाषाओं में उपन्यास विधा का उद्भव लगभग एक ही समय दस-बीस वर्षों के अंतराल में हुआ।

2

कहानी

कहानी, हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्रा, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्त्व आदि की कथाएँ, जिनकी कथानक घटना प्रधान हुआ करती थीं, भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की 'वृहत्कथा' को, जिसमें 'उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है, प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है। वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी', 'सुबन्धु' की 'वासवदत्ता', 'धनपाल' की 'तिलकमंजरी', 'सोमदेव' के 'यशस्तिलक' तथा 'मालतीमाधव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली', 'मृच्छकटिकम्' जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर साफ-साफ परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् छोटे आकार वाली 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल

पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शुक सप्तति', 'कथा सरित्सागर', 'भोजप्रबन्ध' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई है।

परिभाषा

अमेरिका के कवि-आलोचक-कथाकार 'एडगर एलिन पो' के अनुसार कहानी की परिभाषा इस प्रकार है– 'कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्त्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।' हिंदी कहानी को सर्वश्रेष्ठ रूप देने वाले 'प्रेमचन्द' ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार से की है– 'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।' हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने तीन लेखों में कहानी के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं – 'कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का संपूर्ण तथा बृहत रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।' कहानी की और भी परिभाषाएँ उद्धृत की जा सकती हैं। पर किसी भी साहित्यिक विधा को वैज्ञानिक परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता, क्योंकि साहित्य में विज्ञान की सुनिश्चितता नहीं होती। इसलिए उसकी जो भी परिभाषा दी जाएगी वह अधूरी होगी।

कहानी के तत्त्व

रोचकता, प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये रखने के लिये सभी प्रकार की कहानियों में

निम्नलिखित तत्त्व महत्त्वपूर्ण माने गए हैं कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य। कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं - आरम्भ, आरोह, चरम स्थिति एवं अवरोह। कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र चित्रण' कहा जाता है। चरित्र चित्रण से विभिन्न चरित्रों में स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती हैं। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तद्वन्द एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है।

हिन्दी कहानी का इतिहास

1910 से 1960 के बीच हिन्दी कहानी का विकास जितनी गति के साथ हुआ उतनी गति किसी अन्य साहित्यिक विधा के विकास में नहीं देखी जाती। सन 1900 से 1915 तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र) 1907 गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) 1902, पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) 1903, ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) 1903, दुलाईवाली (बंगमहिला) 1907, विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा) 1909, राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा) 1909, ग्राम (जयशंकर 'प्रसादश') 1911, सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1911, रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद) 1912, परदेसी (विश्वम्भरनाथ जिज्जा) 1912, कानों में कंगना (राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह) 1913, रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक') 1913, उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1915, आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिह्न मिल जाते हैं। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर मुड़ा। और प्रसाद के आगमन से रोमांटिक यथार्थवाद की ओर। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' में यह

अपनी पूरी रंगीनी में मिलता है। सन 1922 में उग्र का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश हुआ। उग्र न तो प्रसाद की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे – प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। 1927-1928 में जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नया उत्थान शुरू हुआ। 1936 प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपाल राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे, अत: वह प्रभाव उनकी कहानियों में भी आया। अज्ञेय प्रयोगधर्मा कलाकार थे, उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती हैं उसके प्रथम पुरस्कर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं। अश्क प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है, किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन 1950 के आस-पास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगीं। आधुनिकता बोध की कहानियाँ या नई कहानी नाम दिया गया।

समालोचना

कहानी एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। प्राय: सभी पत्र-पत्रिकाओं में, पाठकीय माँग के फलस्वरूप, कहानियों का छापा जाना अनिवार्य हो गया है। इस देश की प्रत्येक भाषा में केवल कहानियों की पत्रिकाएँ भी संख्या में कम नहीं हैं। रहस्य, रोमांस और साहस की कहानियों के अतिरिक्त उनमें जीवन को गंभीर रूप में लेने वाली कहानियाँ भी छपती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन्हीं का महत्त्व है। ये कहानियाँ चारित्रिक विशेषताओं, 'मूड', वातावरण, जटिल स्थितियों आदि के साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन से भी संबंद्ध होती हैं। सामानयत: कहानी मीमांसा के लिए छ: तत्त्वों का उल्लेख किया जाता है–

1. कथावस्तु,
2. चरित्र-चित्रण,
3. कथोपकथन,

4. देशकाल,
5. भाषाशैली और
6. उद्देश्य।

किंतु इन प्रतिमानों का प्रयोग नाटक और उपन्यासों के लिए भी होता है। ऐसी स्थिति में भ्रांति की सृष्टि हो सकती हैं, लेकिन इसका परिहार यह कह कर लिया जाता है कि कहानी की कथावस्तु इकहरी होती हैं। चरित्र के लिए किसी पहलू का चित्रण होता है। कथोपकथन अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी होता है। कहानी में एक देश और एक काल की जरूरत होती हैं। सन साठ के बाद की कहानियों का तेवर बदला हुआ है। इन कहानियों को साठोत्तरी कहानी कहा जाता है। इस दौर में कई कहानी आंदोलन चले जिनमें अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी और सक्रिय कहानी आंदोलन प्रमुख थे। बाद में जनवादी कहानी आंदोलन में इनका समाहार हो जाता है। नब्बे के दशक की कहानी और 21 वीं सदी के पहले दशक की कहानी का अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है, लेकिन उनमें वैश्वीकरण, सूचना तंत्र और बाजारवाद की अनुगूँज साफ सुनी जा सकती हैं। नब्बे का दशक दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के उभार का दशक भी था। इस दशक में स्त्री सशक्तिकरण, उसके अधिकारों की लड़ाई और अभिव्यक्ति की छटपटाहट की अनुगूंज स्त्री रचनाकारों की कहानियों में बखूबी सुनाई देती हैं। इसी तरह दलित रचनाकारों ने भी अपनी स्वानुभूतियों के रंग से हिंदी कहानी को नया रंग और मोड़ दिया। आज के दौर में तकनीकी विकास को रेखांकित करती हुई और उससे उत्पन्न खतरों को व्याख्यायित करने वाली कहानियां भी खूब लिखी जा रही हैं।

3

गोदान (उपन्यास)

गोदान, प्रेमचन्द का अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। कुछ लोग इसे उनकी सर्वोत्तम कृति भी मानते हैं। इसका प्रकाशन 1936 ई0 में हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई द्वारा किया गया था। इसमें भारतीय ग्राम समाज एवं परिवेश का सजीव चित्रण है। गोदान ग्राम्य जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य है। इसमें प्रगतिवाद, गांधीवाद और मार्क्सवाद (साम्यवाद) का पूर्ण परिप्रेक्ष्य में चित्रण हुआ है।

गोदान हिंदी के उपन्यास-साहित्य के विकास का उज्ज्वलतम प्रकाशस्तंभ है। गोदान के नायक और नायिका होरी और धनिया के परिवार के रूप में हम भारत की एक विशेष संस्कृति को सजीव और साकार पाते हैं, ऐसी संस्कृति जो अब समाप्त हो रही है या हो जाने को है, फिर भी जिसमें भारत की मिट्टी की सोंधी सुबास भरी है। प्रेमचंद ने इसे अमर बना दिया है।

उपन्यास का सारांश

गोदान प्रेमचंद का हिंदी उपन्यास है जिसमें उनकी कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची है। गोदान में भारतीय किसान का संपूर्ण जीवन - उसकी आकांक्षा और निराशा, उसकी धर्मभीरुता और भारतपरायणता के साथ स्वार्थपरता ओर बैठकबाजी, उसकी बेबसी और निरीहता- का जीता जागता चित्र उपस्थित किया गया है। उसकी गर्दन जिस पैर के नीचे दबी है उसे सहलाता, क्लेश और

वेदना को झुठलाता, 'मरजाद' की झूठी भावना पर गर्व करता, ऋणग्रस्तता के अभिशाप में पिसता, तिल-तिल शूलों भरे पथ पर आगे बढ़ता, भारतीय समाज का मेरुदंड यह किसान कितना शिथिल और जर्जर हो चुका है, यह गोदान में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। नगरों के कोलाहलमय चकाचौंध ने गाँवों की विभूति को कैसे ढँक लिया है, जमींदार, मिल मालिक, पत्रसंपादक, अध्यापक, पेशेवर वकील और डाक्टर, राजनीतिक नेता और राजकर्मचारी जोंक बने कैसे गाँव के इस निरीह किसान का शोषण कर रहे हैं और कैसे गाँव के ही महाजन और पुरोहित उनकी सहायता कर रहे हैं, गोदान में ये सभी तत्त्व नखदर्पण के समान प्रत्यक्ष हो गए हैं। गोदान वास्तव में 20वीं शताब्दी की तीसरी और चौथी दशाब्दियों के भारत का ऐसा सजीव चित्र है, जैसा हमें अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

गोदान में बहुत-सी बातें कही गई हैं। जान पड़ता है प्रेमचंद ने अपने संपूर्ण जीवन के व्यंग और विनोद, कसक और वेदना, विद्रोह और वैराग्य, अनुभव और आदर्श सभी को इसी एक उपन्यास में भर देना चाहा है। कुछ आलोचकों को इसी कारण उसमें अस्तव्यस्तता मिलती हैं। उसका कथानक शिथिल, अनियंत्रित और स्थान-स्थान पर अति नाटकीय जान पड़ता है। ऊपर से देखने पर है भी ऐसा ही है, परंतु सूक्ष्म रूप से देखने पर गोदान में लेखक का अद्‌भुत उपन्यास-कौशल दिखाई पड़ेगा क्योंकि उन्होंने जितनी बातें कहीं हैं वे सभी समुचित उत्थान में कहीं गई हैं। प्रेमचंद ने एक स्थान पर लिखा है - 'उपन्यास में आपकी कलम में जितनी शक्ति हो अपना जोर दिखाइए, राजनीति पर तर्क कीजिए, किसी महफिल के वर्णन में 10-20 पृष्ठ लिख डालिए (भाषा सरस होनी चाहिए), कोई दूषण नहीं।' प्रेमचंद ने गोदान में अपनी कलम का पूरा जोर दिखाया है। सभी बातें कहने के लिये उपयुक्त प्रसंगकल्पना, समुचित तर्कजाल और सही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रवाहशील, चुस्त और दुरुस्त भाषा और वणर्नशैली में उपस्थित कर देना प्रेमचंद का अपना विशेष कौशल है और इस दृष्टि से उनकी तुलना में शायद ही किसी उपन्यास लेखक को रखा जा सकता है।

जिस समय प्रेमचन्द का जन्म हुआ वह युग सामाजिक-धार्मिक रुढ़िवाद से भरा हुआ था। इस रुढ़िवाद से स्वयं प्रेमचन्द भी प्रभावित हुए। जब अपने कथा-साहित्य का सफर शुरू किया अनेकों प्रकार के रुढ़िवाद से ग्रस्त समाज को यथाशक्ति कला के शस्त्र द्वारा मुक्त कराने का संकल्प लिया। अपनी कहानी के बालक के माध्यम से यह घोषणा करते हुए कहा कि 'मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ।'

प्रेमचन्द और शोषण का बहुत पुराना रिश्ता माना जा सकता है। क्योंकि बचपन से ही शोषण के शिकार रहे प्रेमचन्द इससे अच्छी तरह वाकिफ हो गए थे। समाज में सदा वर्गवाद व्याप्त रहा है। समाज में रहने वाले हर व्यक्ति को किसी न किसी वर्ग से जुड़ना ही होगा।

प्रेमचन्द ने वर्गवाद के खिलाफ लिखने के लिए ही सरकारी पद से त्यागपत्र दे दिया। वह इससे सम्बन्धित बातों को उन्मुख होकर लिखना चाहते थे। उनके मुताबिक वर्तमान युग न तो धर्म का है और न ही मोक्ष का। अर्थ ही इसका प्राण बनता जा रहा है। आवश्यकता के अनुसार अर्थोपार्जन सबके लिए अनिवार्य होता जा रहा है। इसके बिना जिन्दा रहना सर्वथा असंभव है।

वह कहते हैं कि समाज में जिन्दा रहने में जितनी कठिनाइयों का सामना लोग करेंगे उतना ही वहाँ गुनाह होगा। अगर समाज में लोग खुशहाल होंगे तो समाज में अच्छाई ज्यादा होगी और समाज में गुनाह नहीं के बराबर होगा। प्रेमचन्द ने शोषितवर्ग के लोगों को उठाने का हर संभव प्रयास किया। उन्होंने आवाज लगाई 'ए लोगों जब तुम्हें संसार में रहना है तो जिन्दों की तरह रहो, मुर्दों की तरह जिन्दा रहने से क्या फायदा।'

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में शोषक-समाज के विभिन्न वर्गों की करतूतों व हथकण्डों का पर्दाफाश किया है।

कथानक

उपन्यास वे ही उच्च कोटि के समझे जाते हैं जिनमें आदर्श तथा यथार्थ का पूर्ण सामंजस्य हो। 'गोदान' में समान्तर रूप से चलने वाली दोनों कथाएं हैं - एक ग्राम्य कथा और दूसरी नागरी कथा, लेकिन इन दोनों कथाओं में परस्पर सम्बद्धता तथा सन्तुलन पाया जाता है। ये दोनो कथाएं इस उपन्यास की दुर्बलता नहीं वरन, सशक्त विशेषता है।

यदि हमें तत्कालीन समय के भारत वर्ष को समझना है तो हमें निश्चित रूप से गोदान को पढ़ना चाहिए इसमें देश-काल की परिस्थितियों का सटीक वर्णन किया गया है। कथा नायक होरी की वेदना पाठकों के मन में गहरी संवेदना भर देती हैं। संयुक्त परिवार के विघटन की पीड़ा होरी को तोड़ देती हैं, परन्तु गोदान की इच्छा उसे जीवित रखती हैं और वह यह इच्छा मन में लिए ही वह इस दुनिया से कूच कर जाता है।

गोदान औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसान का महाजनी व्यवस्था में चलने वाले निरंतर शोषण तथा उससे उत्पन्न संत्रास की कथा है। गोदान का नायक होरी एक किसान है, जो किसान वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर मौजूद है। 'आजीवन दुर्धर्ष संघर्ष के बावजूद उसकी एक गाय की आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती'। गोदान भारतीय कृषक जीवन के संत्रासमय संघर्ष की कहानी है।

'गोदान' होरी की कहानी है, उस होरी की जो जीवन भर मेहनत करता है, अनेक कष्ट सहता है, केवल इसलिए कि उसकी मर्यादा की रक्षा हो सके और इसीलिए वह दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयास भी करता है, किंतु उसे इसका फल नहीं मिलता और अंत में मजबूर होना पड़ता है, फिर भी अपनी मर्यादा नहीं बचा पाता। परिणामत: वह जप-तप के अपने जीवन को ही होम कर देता है। यह होरी की कहानी नहीं, उस काल के हर भारतीय किसान की आत्मकथा है। और इसके साथ जुड़ी है शहर की प्रासंगिक कहानी। 'गोदान' में उन्होंने ग्राम और शहर की दो कथाओं का इतना यथार्थ रूप और संतुलित मिश्रण प्रस्तुत किया है। दोनों की कथाओं का संगठन इतनी कुशलता से हुआ है कि उसमें प्रवाह आद्योपांत बना रहता है। प्रेमचंद की कलम की यही विशेषता है।

इस रचना में प्रेमचन्द का गांधीवाद से मोहभंग साफ-साफ दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में जहाँ आदर्शवाद दिखाई पड़ता है, गोदान में आकर यथार्थवाद नग्न रूप में परिलक्षित होता है। कई समालोचकों ने इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास का दर्जा भी दिया है।

पात्र

- गोबर-झुनिया
- होरीराम-धनिया
- सोना-मथुरा
- रूपा-रामसेवक
- सोभा
- हीरा-पुनिया

4

गबन

बरसात के दिन हैं, सावन का महीना। आकाश में सुनहरी घटाएँ छाई हुई हैं। रह - रहकर रिमझिम वर्षा होने लगती हैं। अभी तीसरा पहर है, पर ऐसा मालूम हों रहा है, शाम हो गयी। आमों के बाग में झूला पड़ा हुआ है। लड़कियाँ भी झूल रहीं हैं और उनकी माताएँ भी। दो-चार झूल रहीं हैं, दो-चार झुला रही हैं। कोई कजली गाने लगती हैं, कोई बारहमासा। इस ऋतु में महिलाओं की बाल-स्मृतियाँ भी जाग उठती हैं। ये फुहारें मानो चिंताओं को हृदय से धो डालती हैं। मानो मुरझाए हुए मन को भी हरा कर देती हैं। सबके दिल उमंगों से भरे हुए हैं। घानी साडियों ने प्रकृति की हरियाली से नाता जोड़ा है।

इसी समय एक बिसाती आकर झूले के पास खड़ा हो गया। उसे देखते ही झूला बंद हो गया। छोटी -बड़ी सबों ने आकर उसे घेर लिया। बिसाती ने अपना संदूक खोला और चमकती -दमकती चीजें निकालकर दिखाने लगा। कच्चे मोतियों के गहने थे, कच्चे लैस और गोटे, रंगीन मोजे, खूबसूरत गुडियां और गुडियों के गहने, बच्चों के लट्टू और झुनझुने। किसी ने कोई चीज ली, किसी ने कोई चीज। एक बड़ी-बड़ी आंखों वाली बालिका ने वह चीज पसंद की, जो उन चमकती हुई चीजों में सबसे सुंदर थी। वह गिरोजी रंग का एक चन्द्रहार था। मां से बोली-अम्मां, मैं यह हार लूंगी।

मां ने बिसाती से पूछा-बाबा, यह हार कितने का है - बिसाती ने हार को रूमाल से पोंछते हुए कहा- खरीद तो बीस आने की है, मालकिन जो चाहें दे दें।

माता ने कहा–यह तो बड़ा महंगा है। चार दिन में इसकी चमक–दमक जाती रहेगी।

बिसाती ने मार्मिक भाव से सिर हिलाकर कहा–बहूजी, चार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जाएगा!

माता के हृदय पर इन सहृदयता से भरे हुए शब्दों ने चोट की। हार ले लिया गया।

बालिका के आनंद की सीमा न थी। शायद हीरों के हार से भी उसे इतना आनंद न होता। उसे पहनकर वह सारे गांव में नाचती गिरी। उसके पास जो बाल–संपत्ति थी, उसमें सबसे मूल्यवान, सबसे प्रिय यही बिल्लौर का हार था। लडकी का नाम जालपा था, माता का मानकी।

महाशय दीनदयाल प्रयाग के छोटे – से गांव में रहते थे। वह किसान न थे पर खेती करते थे। वह जमींदार न थे पर जमींदारी करते थे। थानेदार न थे पर थानेदारी करते थे। वह थे जमींदार के मुख्तार। गांव पर उन्हीं की धाक थी। उनके पास चार चपरासी थे, एक घोडा, कई गाएं– – भैंसें। वेतन कुल पांच रुपये पाते थे, जो उनके तंबाकू के खर्च को भी काफी न होता था। उनकी आय के और कौन से मार्ग थे, यह कौन जानता है। जालपा उन्हीं की लड़की थी। पहले उसके तीन भाई और थे, पर इस समय वह अकेली थी। उससे कोई पूछता–तेरे भाई क्या हुए, तो वह बड़ी सरलता से कहती–बड़ी दूर खेलने गए हैं। कहते हैं, मुख्तार साहब ने एक गरीब आदमी को इतना पिटवाया था कि वह मर गया था। उसके तीन वर्ष के अंदर तीनों लड़के जाते रहे। तब से बेचारे बहुत संभलकर चलते थे। फूंक – फूंककर पांव रखते, दूध के जले थे, छाछ भी फूंक – फूंककर पीते थे। माता और पिता के जीवन में और क्या अवलंब? दीनदयाल जब कभी प्रयाग जाते, तो जालपा के लिए कोई न कोई आभूषण जरूर लाते। उनकी व्यावहारिक बुद्धि में यह विचार ही न आता था कि जालपा किसी और चीज से अधिक प्रसन्न हो सकती हैं। गुडियां और खिलौने वह व्यर्थ समझते थे, इसलिए जालपा आभूषणों से ही खेलती थी। यही उसके खिलौने थे। वह बिल्लौर का हार, जो उसने बिसाती से लिया था, अब उसका सबसे प्यारा खिलौना था। असली हार की अभिलाषा अभी उसके मन में उदय ही नहीं हुई थी। गांव में कोई उत्सव होता, या कोई त्योहार पड़ता, तो वह उसी हार को पहनती। कोई दूसरा गहना उसकी आंखों में जंचता ही न था। एक दिन दीनदयाल लौटे, तो मानकी के लिए एक चन्द्रहार लाए। मानकी को यह साके बहुत दिनों से थी।

यह हार पाकर वह मुग्ध हो गई। जालपा को अब अपना हार अच्छा न लगता, पिता से बोली–बाबूजी, मुझे भी ऐसा ही हार ला दीजिए।

दीनदयाल ने मुस्कराकर कहा–ला दूंगा, बेटी!

कब ला दीजिएगा

बहुत जल्दी।

बाप के शब्दों से जालपा का मन न भरा।

उसने माता से जाकर कहा–अम्मांजी, मुझे भी अपना सा हार बनवा दो।

मां–वह तो बहुत रुपयों में बनेगा, बेटी!

जालपा–तुमने अपने लिए बनवाया है, मेरे लिए क्यों नहीं बनवातीं?

मां ने मुस्कराकर कहा–तेरे लिए तेरी ससुराल से आएगा।

यह हार छ सौ में बना था। इतने रुपये जमा कर लेना, दीनदयाल के लिए आसान न था। ऐसे कौन बड़े ओहदेदार थे। बरसों में कहीं यह हार बनने की नौबत आई जीवन में फिर कभी इतने रुपये आयेंगे, इसमें उन्हें संदेह था। जालपा लजाकर भाग गई, पर यह शब्द उसके हृदय में अंकित हो गए। ससुराल उसके लिए अब उतनी भंयकर न थी। ससुराल से चन्द्रहार आएगा, वहां के लोग उसे माता–पिता से अधिक प्यार करेंगे, तभी तो जो चीज ये लोग नहीं बनवा सकते, वह वहां से आएगी।

लेकिन ससुराल से न आए तो उसके सामने तीन लड़कियों के विवाह चुके थे, किसी की ससुराल से चन्द्रहार न आया था। कहीं उसकी ससुराल से भी न आया तो– उसने सोचा–तो क्या माताजी अपना हार मुझे दे देंगी? अवश्य दे देंगी।

इस तरह हंसते–खेलते सात वर्ष कट गए। और वह दिन भी आ गया, जब उसकी चिरसंचित अभिलाषा पूरी होगी।

मुंशी दीनदयाल की जान – पहचान के आदमियों में एक महाशय दयानाथ थे, बड़े ही सज्जन और सहृदय कचहरी में नौकर थे और पचास रुपये वेतन पाते थे। दीनदयाल अदालत के कीड़े थे। दयानाथ को उनसे सैकड़ों ही बार काम पड़ चुका था। चाहते, तो हजारों वसूल करते, पर कभी एक पैसे के भी रवादार नहीं हुए थे। दीनदयाल के साथ ही उनका यह सलूक न था? –यह उनका स्वभाव था। यह बात भी न थी कि वह बहुत ऊँचे आदर्श के आदमी हों, पर रिश्वत को हराम समझते थे। शायद इसलिए कि वह अपनी आंखों से इस तरह के दृश्य देख चुके थे। किसी को जेल जाते देखा था, किसी को संतान से हाथ धोते, किसी को दुर्व्यसनों के पंजे में फंसते। ऐसी उन्हें कोई मिसाल न मिलती थी, जिसने

रिश्वत लेकर चनै किया हो उनकी यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि हराम की कमाई हराम ही में जाती हैं। यह बात वह कभी न भूलते इस जमाने में पचास रुपए की भुगुत ही क्या पांच आदमियों का पालन बड़ी मुश्किल से होता था। लड़के अच्छे कपड़ों को तरसते, स्त्री गहनों को तरसती, पर दयानाथ विचलित न होते थे। बड़ा लड़का दो ही महीने तक कालेज में रहने के बाद पढ़ना छोड़ बैठा। पिता ने साफ कह दिया–मैं तुम्हारी डिग्री के लिए सबको भूखा और नंगा नहीं रख सकता। पढ़ना चाहते हो, तो अपने पुरुषार्थ से पढ़ो। बहुतों ने किया है, तुम भी कर सकते हो। लेकिन रमानाथ में इतनी लगन न थी। इधर दो साल से वह बिलकुल बेकार था। शतरंज खेलता, सैर – सपाटे करता और मां और छोटे भाइयों पर रोब जमाता। दोस्तों की बदौलत शौक पूरा होता रहता था। किसी का चेस्टर मांग लिया और शाम को हवा खाने निकल गए। किसी का पंप:शू पहन लिया, किसी की घड़ी कलाई पर बांधा ली। कभी बनारसी फैशन में निकले, कभी लखनवी फैशन में, दस मित्रों ने एक–एक कपड़ा बनवा लिया, तो दस सूट बदलने का उपाय हो गया। सहकारिता का यह बिलकुल नया उपयोग था। इसी युवक को दीनदयाल ने जालपा के लिए पसंद किया। दयानाथ शादी नहीं करना चाहते थे। उनके पास न रुपये थे और न एक नए परिवार का भार उठाने की हिम्मत, पर जागेश्वरी ने त्रिया–हठ से काम लिया और इस शक्ति के सामने पुरूष को झुकना पड़ा। जागेश्वरी बरसों से पुत्रवधू के लिए तड़प रही थी। जो उसके सामने बहुएं बनकर आइ, वे आज पोते खिला रही हैं, फिर उस दुखिया को कैसे धैर्य होता। वह कुछ–कुछ निराश हो चली थी। ईश्वर से मनाती थी कि कहीं से बात आए। दीनदयाल ने संदेश भेजा, तो उसको आंखें–सी मिल गईं। अगर कहीं यह शिकार हाथ से निकल गया, तो फिर न जाने कितने दिनों और राह देखनी पड़े। कोई यहां क्यों आने लगा। न धन ही है, न जायदाद। लड़के पर कौन रीझता है। लोग तो धन देखते हैं, इसलिए उसने इस अवसर पर सारी शक्ति लगा दी और उसकी विजय हुई।

दयानाथ ने कहा, भाई, तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मुझमें समाई नहीं है, जो आदमी अपने पेट की फिक्र नहीं कर सकता, उसका विवाह करना मुझे तो अधर्म–सा मालूम होता है। फिर रुपये की भी तो फिक्र है। एक हजार तो टीमटाम के लिए चाहिए, जोड़े और गहनों के लिए अलग। (कानों पर हाथ रखकर) ना बाबा! यह बोझ मेरे मान का नहीं।

जागेश्वरी पर इन दलीलों का कोई असर न हुआ, बोली–वह भी तो कुछ देगा–

मैं उससे मांगने तो जाऊंगा नहीं।

तुम्हारे मांगने की जरूरत ही न पड़ेगी। वह खुद ही देंगे। लड़की के ब्याह में पैसे का मुंह कोई नहीं देखता। हां, मकदूर चाहिए, सो दीनदयाल पोढ़े आदमी हैं। और फिर यही एक संतान है, बचाकर रखेंगे, तो किसके लिए? दयानाथ को अब कोई बात न सूझी, केवल यही कहा–वह चाहे लाख दे दें, चाहे एक न दें, मैं न कहूँगा कि दो, न कहूँगा कि मत दो। कर्ज मैं लेना नहीं चाहता, और लूं, तो दूंगा किसके घर से?

जागेश्वरी ने इस बाधा को मानो हवा में उड़ाकर कहा–मुझे तो विश्वास है कि वह टीके में एक हजार से कम न देंगे। तुम्हारे टीमटाम के लिए इतना बहुत है। गहनों का प्रबंध किसी सर्राफ से कर लेना। टीके में एक हजार देंगे, तो क्या द्वार पर एक हजार भी न देंगे– वही रुपये सर्राफ को दे देना। दो–चार सौ बाकी रहे, वह धीरे–धीरे चुक जाएंगे। बच्चा के लिए कोई न कोई द्वार खुलेगा ही।

दयानाथ ने उपेक्षा–भाव से कहा–'खुल चुका, जिसे शतरंज और सैर–सपाटे से फुरसत न मिले, उसे सभी द्वार बंद मिलेंगे।'

जागेश्वरी को अपने विवाह की बात याद आई। दयानाथ भी तो गुलछर्रे उड़ाते थे लेकिन उसके आते ही उन्हें चार पैसे कमाने की फिक्र कैसी सिर पर सवार हो गई थी। साल–भर भी न बीतने पाया था कि नौकर हो गए। बोली–बहू आ जाएगी, तो उसकी आंखें भी खुलेंगी, देख लेना। अपनी बात याद करो। जब तक गले में जुआ नहीं पड़ा है, तभी तक यह कुलेलें हैं। जुआ पड़ा और सारा नशा हिरन हुआ। निकम्मों को राह पर लाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय ही नहीं।

जब दयानाथ परास्त हो जाते थे, तो अखबार पढ़ने लगते थे। अपनी हार को छिपाने का उनके पास यही संकेत था।

मुंशी दीनदयाल उन आदमियों में से थे, जो सीधों के साथ सीधे होते हैं, पर टेढ़ों के साथ टेढ़े ही नहीं, शैतान हो जाते हैं। दयानाथ बड़ा–सा मुंह खोलते, हजारों की बातचीत करते, तो दीनदयाल उन्हें ऐसा चकमा देते कि वह उम्र– भर याद करते। दयानाथ की सज्जनता ने उन्हें वशीभूत कर लिया। उनका विचार एक हजार देने का था, पर एक हजार टीके ही में दे आए। मानकी ने कहा–जब टीके में एक हजार दिया, तो इतना ही घर पर भी देना पड़ेगा। आएगा कहां से–

दीनदयाल चिढ़कर बोले–भगवान मालिक है। जब उन लोगों ने उदारता दिखाई और लड़का मुझे सौंप दिया, तो मैं भी दिखा देना चाहता हूँ कि हम भी शरीफ हैं और शील का मूल्य पहचानते हैं। अगर उन्होंने हेकड़ी जताई होती, तो अभी उनकी खबर लेता।

दीनदयाल एक हजार तो दे आए, पर दयानाथ का बोझ हल्का करने के बदले और भारी कर दिया। वह कर्ज से कोसों भागते थे। इस शादी में उन्होंने मियां की जूती मियां की चांद वाली नीति निभाने की ठानी थी पर दीनदयाल की सहृदयता ने उनका संयम तोड़ दिया। वे सारे टीमटाम, नाच–तमाशे, जिनकी कल्पना का उन्होंने गला घोंट दिया था, वही रूप धारण करके उनके सामने आ गए। बंधा हुआ घोडाथान से खुल गया, उसे कौन रोक सकता है। धूमधाम से विवाह करने की ठन गई। पहले जोड़े–गहने को उन्होंने गौण समझ रखा था, अब वही सबसे मुख्य हो गया। ऐसा चढ़ावा हो कि मड़वे वाले देखकर भड़क उठें। सबकी आंखें खुल जाएं। कोई तीन हजार का सामान बनवा डाला। सर्राफ को एक हजार नगद मिल गए, एक हजार के लिए एक सप्ताह का वादा हुआ, तो उसने कोई आपत्ति न की। सोचा–दो हजार सीधे हुए जाते हैं, पांच–सात सौ रुपये रह जाएंगे, वह कहां जाते हैं। व्यापारी की लागत निकल आती हैं, तो नगद को तत्काल पाने के लिए आग्रह नहीं करता। फिर भी चन्द्रहार की कसर रह गई। जडाऊ चन्द्रहार एक हजार से नीचे अच्छा नहीं मिल सकता था। दयानाथ का जी तो लहराया कि लगे हाथ उसे भी ले लो, किसी को नाक सिकोड़ने की जगह तो न रहेगी, पर जागेश्वरी इस पर राजी न हुई। बाजी पलट चुकी थी। दयानाथ ने गर्म होकर कहा–तुम्हें क्या, तुम तो घर में बैठी रहोगी। मौत तो मेरी होगी, जब उधार के लोग नाकभौं सिकोड़ने लगेंगे।

जागेश्वरी–दोगे कहां से, कुछ सोचा है?

दयानाथ–कम–से–कम एक हजार तो वहां मिल ही जाएंगे।

जागेश्वरी–खून मुंह लग गया क्या?

दयानाथ ने शरमाकर कहा–नहीं–नहीं, मगर आखिर वहां भी तो कुछ मिलेगा?

जागेश्वरी–वहां मिलेगा, तो वहां खर्च भी होगा। नाम जोड़े गहने से नहीं होता, दान–दक्षिणा से होता है। इस तरह चन्द्रहार का प्रस्ताव रद्द हो गया।

मगर दयानाथ दिखावे और नुमाइश को चाहे अनावश्यक समझें, रमानाथ उसे परमावश्यक समझता था। बरात ऐसे धूम से जानी चाहिए कि गांव–भर में

शोर मच जाय। पहले दूल्हे के लिए पालकी का विचार था। रमानाथ ने मोटर पर जोर दिया। उसके मित्रों ने इसका अनुमोदन किया, प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। दयानाथ एकांतप्रिय जीव थे, न किसी से मित्रता थी, न किसी से मेल-जोल। रमानाथ मिलनसार युवक था, उसके मित्र ही इस समय हर एक काम में अग्रसर हो रहे थे। वे जो काम करते, दिल खोल कर। आतिशबाजियां बनवाईं, तो अव्वल दर्जे की। नाच ठीक किया, तो अव्वल दर्जे का, बाजे-गाजे भी अव्वल दर्जे के, दोयम या सोयम का वहां जिक्र ही न था। दयानाथ उसकी उच्छृंखलता देखकर चिंतित तो हो जाते थे पर कुछ कह न सकते थे। क्या कहते!

नाटक उस वक्त पास होता है, जब रसिक समाज उसे पंसद कर लेता है। बरात का नाटक उस वक्त पास होता है, जब राह चलते आदमी उसे पंसद कर लेते हैं। नाटक की परीक्षा चार-पांच घंटे तक होती रहती हैं, बरात की परीक्षा के लिए केवल इतने ही मिनटों का समय होता है। सारी सजावट, सारी दौड़धूप और तैयारी का निबटारा पांच मिनटों में हो जाता है। अगर सबके मुंह से वाह-वाह निकल गया, तो तमाशा पास नहीं तो! रुपया, मेहनत, फिक्र, सब अकारथ। दयानाथ का तमाशा पास हो गया। शहर में वह तीसरे दर्जे में आता, गांव में अव्वल दर्जे में आया। कोई बाजों की धोंधों-पों-पों सुनकर मस्त हो रहा था, कोई मोटर को आंखें गाड़-गाड़कर देख रहा था। कुछ लोग फुलवारियों के तख्त देखकर लोट-लोट जाते थे। आतिशबाजी ही मनोरंजन का केंद्र थी। हवाइयां जब सर के से ऊपर जातीं और आकाश में लाल, हरे, नीले, पीले, कुमकुमे-से बिखर जाते, जब चर्खियां छूटतीं और उनमें नाचते हुए मोर निकल आते, तो लोग मंत्रमुग्ध-से हो जाते थे। वाह, क्या कारीगरी है! जालपा के लिए इन चीजों में लेशमात्र भी आकर्षण न था। हां, वह वर को एक आंख देखना चाहती थी, वह भी सबसे छिपाकर, पर उस भीड़-भाड़ में ऐसा अवसर कहां। द्वारचार के समय उसकी सखियां उसे छत पर खींच ले गईं और उसने रमानाथ को देखा। उसका सारा विराग, सारी उदासीनता, सारी मनोव्यथा मानो छू-मंतर हो गई थी। मुंह पर हर्ष की लालिमा छा गई। अनुराग स्फूर्ति का भंडार है।

द्वारचार के बाद बरात जनवासे चली गई। भोजन की तैयारियां होने लगीं। किसी ने पूरियां खाई, किसी ने उपलों पर खिचड़ी पकाई। देहात के तमाशा देखनेवालों के मनोरंजन के लिए नाच-गाना होने लगा। दस बजे सहसा फिर बाजे बजने लगे। मालूम हुआ कि चढ़ावा आ रहा है। बरात में हर एक रस्म डंके की चोट पर अदा होती हैं। दूल्हा कलेवा करने आ रहा है, बाजे बजने लगे। समधी

मिलने आ रहा है, बाजे बजने लगे। चढ़ावा ज्योंही पहुँचा, घर में हलचल मच गई। स्त्री-पुरूष, बूढ़े-जवान, सब चढ़ावा देखने के लिए उत्सुक हो उठे। ज्योंही किश्तियां मंडप में पहुँचीं, लोग सब काम छोड़कर देखने दौड़े। आपस में धक्कम-धक्का होने लगा। मानकी प्यास से बेहाल हो रही थी, कंठ सूखा जाता था, चढ़ावा आते ही प्यास भाग गई। दीनदयाल मारे भूख-प्यास के निर्जीव-से पड़े थे, यह समाचार सुनते ही सचेत होकर दौड़े। मानकी एक-एक चीज को निकाल-निकालकर देखने और दिखाने लगी। वहां सभी इस कला के विशेषज्ञ थे। मदोऊ ने गहने बनवाए थे, औरतों ने पहने थे, सभी आलोचना करने लगे। चूहेदन्ती कितनी सुंदर है, कोई दस तोले की होगी वाह! साढ़े। ग्यारह तोले से रत्ती-भर भी कम निकल जाए, तो कुछ हार जाऊं! यह शेरदहां तो देखो, क्या हाथ की सफाई है! जी चाहता है कारीगर के हाथ चूम लें। यह भी बारह तोले से कम न होगा। वाह! कभी देखा भी है, सोलह तोले से कम निकल जाए, तो मुंह न दिखाऊं। हां, माल उतना चोखा नहीं है। यह कंगन तो देखो, बिलकुल पक्की जड़ाई है, कितना बारीक काम है कि आंख नहीं ठहरती! कैसा दमक रहा है। सच्चे नगीने हैं। झूठे नगीनों में यह आब कहां। चीज तो यह गुलूबंद है, कितने खूबसूरत फूल हैं! और उनके बीच के हीरे कैसे चमक रहे हैं! किसी बंगाली सुनार ने बनाया होगा। क्या बंगालियों ने कारीगरी का ठेका ले लिया है, हमारे देश में एक-से-एक कारीगर पड़े हुए हैं। बंगाली सुनार बेचारे उनकी क्या बराबरी करेंगे। इसी तरह एक-एक चीज की आलोचना होती रही। सहसा किसी ने कहा-चन्द्रहार नहीं है क्या!

मानकी ने रोनी सूरत बनाकर कहा-नहीं, चन्द्रहार नहीं आया।

एक महिला बोली-अरे, चन्द्रहार नहीं आया?

दीनदयाल ने गंभीर भाव से कहा-और सभी चीजें तो हैं, एक चन्द्रहार ही तो नहीं है।

उसी महिला ने मुंह बनाकर कहा-चन्द्रहार की बात ही और है!

मानकी ने चढ़ाव को सामने से हटाकर कहा-बेचारी के भाग में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है।

इस गोलाकार जमघट के पीछे अंधेरे में आशा और आकांक्षा की मूर्ति - सी जालपा भी खड़ी थी। और सब गहनों के नाम कान में आते थे, चन्द्रहार का नाम न आता था। उसकी छाती धक-धक कर रही थी। चन्द्रहार नहीं है क्या? शायद सबके नीचे हो इस तरह वह मन को समझाती रही। जब मालूम हो गया

चन्द्रहार नहीं है तो उसके कलेजे पर चोट-सी लग गई। मालूम हुआ, देह में रक्त की बूंद भी नहीं है। मानो उसे मूर्च्छा आ जायगी। वह उन्माद की सी दशा में अपने कमरे में आई और फूट-फूटकर रोने लगी। वह लालसा जो आज सात वर्ष हुए, उसके हृदय में अंकुरित हुई थी, जो इस समय पुष्प और पल्लव से लदी खड़ी थी, उस पर वज्रपात हो गया। वह हरा-भरा लहलहाता हुआ पौधा जल गया? -केवल उसकी राख रह गई। आज ही के दिन पर तो उसकी समस्त आशाएं अवलंबित थीं। दुर्दैव ने आज वह अवलंब भी छीन लिया। उस निराशा के आवेश में उसका ऐसा जी चाहने लगा कि अपना मुंह नोच डाले। उसका वश चलता, तो वह चढ़ावे को उठाकर आग में गोंक देती। कमरे में एक आले पर शिव की मूर्ति रक्खी हुई थी। उसने उसे उठाकर ऐसा पटका कि उसकी आशाओं की भांति वह भी चूर-चूर हो गई। उसने निश्चय किया, मैं कोई आभूषण न पहनूंगी। आभूषण पहनने से होता ही क्या है, जो रूप-विहीन हों, वे अपने को गहने से सजाएं, मुझे तो ईश्वर ने यों ही सुंदरी बनाया है, मैं गहने न पहनकर भी बुरी न लगूंगी। सस्ती चीजें उठा लाए, जिसमें रुपये खर्च होते थे, उसका नाम ही न लिया। अगर गिनती ही गिनानी थी, तो इतने ही दामों में इसके दूने गहने आ जाते!

वह इसी क्रोध में भरी बैठी थी कि उसकी तीन सखियां आकर खड़ी हो गई। उन्होंने समझा था, जालपा को अभी चढ़ाव की कुछ खबर नहीं है। जालपा ने उन्हें देखते ही आंखें पोंछ डालीं और मुस्कराने लगी।

राधा मुस्कराकर बोली-जालपा- मालूम होता है, तूने बड़ी तपस्या की थी, ऐसा चढ़ाव मैंने आज तक नहीं देखा था। अब तो तेरी सब साध पूरी हो गई। जालपा ने अपनी लंबी-लंबी पलकें उठाकर उसकी ओर ऐसे दीन -नजर से देखा, मानो जीवन में अब उसके लिए कोई आशा नहीं है?

हां बहन, सब साध पूरी हो गई। इन शब्दों में कितनी अपार मर्मान्तक वेदना भरी हुई थी, इसका अनुमान तीनों युवतियों में कोई भी न कर सकी। तीनों कौतूहल से उसकी ओर ताकने लगीं, मानो उसका आशय उनकी समझ में न आया हो बासन्ती ने कहा-जी चाहता है, कारीगर के हाथ चूम लूं।

शहजादी बोली-चढ़ावा ऐसा ही होना चाहिए, कि देखने वाले भड़क उठें।

बासन्ती-तुम्हारी सास बड़ी चतुर जान पड़ती हैं, कोई चीज नहीं छोड़ी।

जालपा ने मुंह उधरकर कहा-ऐसा ही होगा।

राधा-और तो सब कुछ है, केवल चन्द्रहार नहीं है।

शहजादी–एक चन्द्रहार के न होने से क्या होता है बहन, उसकी जगह गुलूबंद तो है।

जालपा ने वक्रोक्ति के भाव से कहा–हां, देह में एक आंख के न होने से क्या होता है, और सब अंग होते ही हैं, आंखें हुई तो क्या, न हुई तो क्या!

बालकों के मुंह से गंभीर बातें सुनकर जैसे हमें हंसी आ जाती हैं, उसी तरह जालपा के मुंह से यह लालसा से भरी हुई बातें सुनकर राधा और बासन्ती अपनी हंसी न रोक सकीं। हां, शहजादी को हंसी न आई। यह आभूषण लालसा उसके लिए हंसने की बात नहीं, रोने की बात थी। कृत्रिम सहानुभूति दिखाती हुई बोली–सब न जाने कहां के जंगली हैं कि और सब चीजें तो लाए, चन्द्रहार न लाए, जो सब गहनों का राजा है। लाला अभी आते हैं तो पूछती हूँ कि तुमने यह कहां की रीति निकाली है? –ऐसा अनर्थ भी कोई करता है।

राधा और बासन्ती दिल में कांप रही थीं कि जालपा कहीं ताड़ न जाय। उनका बस चलता तो शहजादी का मुंह बंद कर देतीं, बार–बार उसे चुप रहने का इशारा कर रही थीं, मगर जालपा को शहजादी का यह व्यंग्य, संवेदना से परिपूर्ण जान पड़ा। सजल नेत्र होकर बोली–क्या करोगी पूछकर बहन, जो होना था सो हो गया!

शहजादी–तुम पूछने को कहती हो, मैं रूलाकर छोड़ूंगी। मेरे चढ़ाव पर कंगन नहीं आया था, उस वक्त मन ऐसा खराब हुआ कि सारे गहनों पर लात मार दूं। जब तक कंगन न बन गए, मैं नींद भर सोई नहीं।

राधा–तो क्या तुम जानती हो, जालपा का चन्द्रहार न बनेगा।

शहजादी–बनेगा तब बनेगा, इस अवसर पर तो नहीं बना। दस–पांच की चीज तो है नहीं, कि जब चाहा बनवा लिया, सैकड़ों का खर्च है, फिर कारीगर तो हमेशा अच्छे नहीं मिलते।

जालपा का भग्न हृदय शहजादी की इन बातों से मानो जी उठा, वह रुंधे कंठ से बोली–यही तो मैं भी सोचती हूँ बहन, जब आज न मिला, तो फिर क्या मिलेगा!

राधा और बासन्ती मन–ही–मन शहजादी को कोस रही थीं, और थप्पड़ दिखा–दिखाकर धमका रही थीं, पर शहजादी को इस वक्त तमाशे का मजा आ रहा था। बोली–नहीं, यह बात नहीं है जल्लीय आग्रह करने से सब कुछ हो सकता है, सास–ससुर को बार–बार याद दिलाती रहना। बहनोईजी से दो–चार दिन रूठे रहने से भी बहुत–कुछ काम निकल सकता है। बस यही समझ लो

कि घरवाले चैन न लेने पाएं, यह बात हरदम उनके ध्यान में रहे। उन्हें मालूम हो जाय कि बिना चन्द्रहार बनवाए कुशल नहीं। तुम जरा भी ढीली पड़ीं और काम बिगड़ा।

राधा ने हंसी को रोकते हुए कहा–इनसे न बने तो तुम्हें बुला लें, क्यों – अब उठोगी कि सारी रात उपदेश ही करती रहोगी!

शहजादी–चलती हूँ, ऐसी क्या भागड़ पड़ी है। हां, खूब याद आई, क्यों जल्ली, तेरी अम्मांजी के पास बड़ा अच्छा चन्द्रहार है। तुझे न देंगी।

जालपा ने एक लंबी सांस लेकर कहा–क्या कहूँ बहन, मुझे तो आशा नहीं है।

शहजादी–एक बार कहकर देखो तो, अब उनके कौन पहनने–ओढ़ने के दिन बैठे हैं।

जालपा–मुझसे तो न कहा जायगा।

शहजादी–मैं कह दूंगी।

जालपा–नहीं–नहीं, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। मैं जरा उनके मातृस्नेह की परीक्षा लेना चाहती हूँ।

बासन्ती ने शहजादी का हाथ पकड़कर कहा–अब उठेगी भी कि यहां सारी रात उपदेश ही देती रहेगी।

शहजादी उठी, पर जालपा रास्ता रोककर खड़ी हो गई और बोली–नहीं, अभी बैठो बहन, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

शहजादी–जब यह दोनों चुड़ैलें बैठने भी दें। मैं तो तुम्हें गुर सिखाती हूँ और यह दोनों मुझ पर झल्लाती हैं। सुन नहीं रही हो, मैं भी विष की गांठ हूँ।

बासन्ती–विष की गांठ तो तू है ही।

शहजादी–तुम भी तो ससुराल से सालभर बाद आई हो, कौन–कौन–सी नई चीजें बनवा लाईं।

बासन्ती–और तुमने तीन साल में क्या बनवा लिया।

शहजादी–मेरी बात छोड़ो, मेरा खसम तो मेरी बात ही नहीं पूछता।

राधा–प्रेम के सामने गहनों का कोई मूल्य नहीं।

शहजादी–तो सूखा प्रेम तुम्हीं को गले।

इतने में मानकी ने आकर कहा–तुम तीनों यहां बैठी क्या कर रही हो, चलो वहां लोग खाना खाने आ रहे हैं।

तीनों युवतियां चली गई। जालपा माता के गले में चन्द्रहार की शोभा देखकर मन-ही-मन सोचने लगी? -गहनों से इनका जी अब तक नहीं भरा।

महाशय दयानाथ जितनी उमंगों से ब्याह करने गए थे, उतना ही हतोत्साह होकर लौटे। दीनदयाल ने खूब दिया, लेकिन वहां से जो कुछ मिला, वह सब नाच-तमाशे, नेगचार में खर्च हो गया। बार-बार अपनी भूल पर पछताते, क्यों दिखावे और तमाशे में इतने रुपये खर्च किए। इसकी जरूरत ही क्या थी, ज्यादा-से- ज्यादा लोग यही तो कहते-महाशय बड़े कृपण हैं। उतना सुन लेने में क्या हानि थी? मैंने गांव वालों को तमाशा दिखाने का ठेका तो नहीं लिया था। यह सब रमा का दुस्साहस है। उसी ने सारे खर्च बढ़ा-बढ़ाकर मेरा दिवाला निकाल दिया। और सब तकाजे तो दस-पांच दिन टल भी सकते थे, पर सर्राफ किसी तरह न मानता था। शादी के सातवें दिन उसे एक हजार रुपये देने का वादा था। सातवें दिन सर्राफ आया, मगर यहां रुपये कहां थे? दयानाथ में लल्लो-चप्पो की आदत न थी, मगर आज उन्होंने उसे चकमा देने की खूब कोशिश की। किस्त बांधकर सब रुपये छः महीने में अदा कर देने का वादा किया। फिर तीन महीने पर आए, मगर सर्राफ भी एक ही घुटा हुआ आदमी था, उसी वक्त टला, जब दयानाथ ने तीसरे दिन बाकी रकम की चीजें लौटा देने का वादा किया और यह भी उसकी सज्जनता ही थी। वह तीसरा दिन भी आ गया, और अब दयानाथ को अपनी लाज रखने का कोई उपाय न सूझता था। कोई चलता हुआ आदमी शायद इतना व्यग्र न होता, हीले-हवाले करके महाजन को महीनों टालता रहता, लेकिन दयानाथ इस मामले में अनाड़ी थे।

जागेश्वरी ने आकर कहा-भोजन कब से बना ठंडा हो रहा है। खाकर तब बैठो।

दयानाथ ने इस तरह गर्दन उठाई, मानो सिर पर सैकड़ों मन का बोझ लदा हुआ है। बोले-तुम लोग जाकर खा लो, मुझे भूख नहीं है।

जागेश्वरी-भूख क्यों नहीं है, रात भी तो कुछ नहीं खाया था! इस तरह दाना-पानी छोड़ देने से महाजन के रुपये थोड़े ही अदा हो जाएंगे।

दयानाथ-मैं सोचता हूँ, उसे आज क्या जवाब दूंगा- मैं तो यह विवाह करके बुरा फंस गया। बहू कुछ गहने लौटा तो देगी।

जागेश्वरी-बहू का हाल तो सुन चुके, फिर भी उससे ऐसी आशा रखते हो उसकी टेक है कि जब तक चन्द्रहार न बन जायगा, कोई गहना ही न पहनूंगी। सारे गहने संदूक में बंद कर रखे हैं। बस, वही एक बिल्लौरी हार गले में डाले

हुए है। बहुएं बहुत देखीं, पर ऐसी बहू न देखी थी। फिर कितना बुरा मालूम होता है कि कल की आई बहू, उससे गहने छीन लिए जाएं।

दयानाथ ने चिढ़कर कहा–तुम तो जले पर नमक छिड़कती हो बुरा मालूम होता है तो लाओ एक हजार निकालकर दे दो, महाजन को दे आऊं, देती हो? बुरा मुझे खुद मालूम होता है, लेकिन उपाय क्या है? गला कैसे छूटेगा?

जागेश्वरी–बेटे का ब्याह किया है कि ठट्ठा है? शादी–ब्याह में सभी कर्ज लेते हैं, तुमने कोई नई बात नहीं की। खाने–पहनने के लिए कौन कर्ज लेता है। धर्मात्मा बनने का कुछ फल मिलना चाहिए या नहीं– तुम्हारे ही दर्जे पर सत्यदेव हैं, पक्का मकान खड़ाकर दिया, जमींदारी खरीद ली, बेटी के ब्याह में कुछ नहीं तो पांच हजार तो खर्च किए ही होंगे।

दयानाथ–जभी दोनों लड़के भी तो चल दिए!

जागेश्वरी–मरना–जीना तो संसार की गति है, लेते हैं, वह भी मरते हैं,नहीं लेते, वह भी मरते हैं। अगर तुम चाहो तो छः महीने में सब रुपये चुका सकते हो'

दयानाथ ने त्योरी चढ़ाकर कहा–जो बात जिंदगी? भर नहीं की, वह अब आखिरी वक्त नहीं कर सकता बहू से साफ–साफ कह दो, उससे पर्दा रखने की जरूरत ही क्या है, और पर्दा रह ही कितने दिन सकता है। आज नहीं तो कल सारा हाल मालूम ही हो जाएगा। बस तीन–चार चीजें लौटा दे, तो काम बन जाय। तुम उससे एक बार कहो तो।

जागेश्वरी झुंझलाकर बोली–उससे तुम्हीं कहो, मुझसे तो न कहा जायगा।

सहसा रमानाथ टेनिस–रैकेट लिये बाहर से आया। सफेद टेनिस शर्ट था, सफेद पतलून, कैनवस का जूता, गोरे रंग और सुंदर मुखाकृति पर इस पहनावे ने रईसों की शान पैदा कर दी थी। रूमाल में बेले के गजरे लिये हुए था। उससे सुगंध उड़ रही थी। माता–पिता की आंखें बचाकर वह जीने पर जाना चाहता था, कि जागेश्वरी ने टोका–इन्हीं के तो सब कांटे बोए हुए हैं, इनसे क्यों नहीं सलाह लेते? (रमा से) तुमने नाच–तमाशे में बारह–तेरह सौ रुपये उडा दिए, बतलाओ सर्राफ को क्या जवाब दिया जाय– बड़ी मुश्किलों से कुछ गहने लौटाने पर राजी हुआ, मगर बहू से गहने मांगे कौन– यह सब तुम्हारी ही करतूत है।

रमानाथ ने इस आक्षेप को अपने ऊपर से हटाते हुए कहा–मैंने क्या खर्च किया– जो कुछ किया बाबूजी ने किया। हां, जो कुछ मुझसे कहा गया, वह मैंने किया।

रमानाथ के कथन में बहुत कुछ सत्य था। यदि दयानाथ की इच्छा न होती तो रमा क्या कर सकता था? जो कुछ हुआ उन्हीं की अनुमति से हुआ। रमानाथ पर इल्जाम रखने से तो कोई समस्या हल न हो सकती थी। बोले–मैं तुम्हें इल्जाम नहीं देता भाई। किया तो मैंने ही, मगर यह बला तो किसी तरह सिर से टालनी चाहिए। सर्राफ का तकाजा है। कल उसका आदमी आवेगा। उसे क्या जवाब दिया जाएगा? मेरी समझ में तो यही एक उपाय है कि उतने रुपये के गहने उसे लौटा दिए जायं। गहने लौटा देने में भी वह झंझट करेगा, लेकिन दस–बीस रुपये के लोभ में लौटाने पर राजी हो जायगा। तुम्हारी क्या सलाह है?

रमानाथ ने शरमाते हुए कहा–मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूँ, मगर मैं इतना कह सकता हूँ कि इस प्रस्ताव को वह खुशी से मंजूर न करेगी। अम्मां तो जानती हैं कि चढ़ावे में चन्द्रहार न जाने से उसे कितना बुरा लगा था। प्रण कर लिया है, जब तक चन्द्रहार न बन जाएगा, कोई गहना न पहनूंगी।

जागेश्वरी ने अपने पक्ष का समर्थन होते देख, खुश होकर कहा–यही तो मैं इनसे कह रही हूँ।

रमानाथ–रोना–धोना मच जायगा और इसके साथ घर का पर्दा भी खुल जायगा।

दयानाथ ने माथा सिकोड़कर कहा–उससे पर्दा रखने की जरूरत ही क्या! अपनी यथार्थ स्थिति को वह जितनी ही जल्दी समझ ले, उतना ही अच्छा।

रमानाथ ने जवानों के स्वभाव के अनुसार जालपा से खूब जीभ उड़ाई थी। खूब बढ़–बढ़कर बातें की थीं। जमींदारी है, उससे कई हजार का नफा है। बैंक में रुपये हैं, उनका सूद आता है। जालपा से अब अगर गहने की बात कही गई, तो रमानाथ को वह पूरा लबाड़िया समझेगी। बोला–पर्दा तो एक दिन खुल ही जायगा, पर इतनी जल्दी खोल देने का नतीजा यही होगा कि वह हमें नीच समझने लगेगी। शायद अपने घरवालों को भी लिख भेजे। चारों तरफ बदनामी होगी।

दयानाथ–हमने तो दीनदयाल से यह कभी न कहा था कि हम लखपती हैं।

रमानाथ–तो आपने यही कब कहा था कि हम उधार गहने लाए हैं और दो–चार दिन में लौटा देंगे! आखिर यह सारा स्वांग अपनी धाक बैठाने के लिए ही किया था या कुछ और?

दयानाथ–तो फिर किसी दूसरे बहाने से मांगना पड़ेगा। बिना मांगे काम नहीं चल सकता कल या तो रुपये देने पड़ेंगे, या गहने लौटाने पड़ेंगे। और कोई राह नहीं।

रमानाथ ने कोई जवाब न दिया। जागेश्वरी बोली–और कौन–सा बहाना किया जायगा– अगर कहा जाय, किसी को मंगनी देना है, तो शायद वह देगी नहीं। देगी भी तो दो–चार दिन में लौटाएंगे कैसे?

दयानाथ को एक उपाय सूझा। बोले–अगर उन गहनों के बदले मुलम्मे के गहने दे दिए जाएं? मगर तुरंत ही उन्हें ज्ञात हो गया कि यह लचर बात है, खुद ही उसका विरोध करते हुए कहा–हां, बाद मुलम्मा उड़ जायगा तो फिर लज्जित होना पड़ेगा। अक्ल कुछ काम नहीं करती। मुझे तो यही सूझता है, यह सारी स्थिति उसे समझा दी जाय। जरा देर के लिए उसे दुख तो जरूर होगा, लेकिन आगे के वास्ते रास्ता साफ हो जाएगा।

संभव था, जैसा दयानाथ का विचार था, कि जालपा रो–धोकर शांत हो जायगी, पर रमा की इसमें किरकिरी होती थी। फिर वह मुंह न दिखा सकेगा। जब वह उससे कहेगी, तुम्हारी जमींदारी क्या हुई– बैंक के रुपये क्या हुए, तो उसे क्या जवाब देगा– विरक्त भाव से बोला–इसमें बेइज्जती के सिवा और कुछ न होगा। आप क्या सर्राफ को दो–चार–छः महीने नहीं टाल सकते? आप देना चाहें, तो इतने दिनों में हजार–बारह सौ रुपये बड़ी आसानी से दे सकते हैं।

दयानाथ ने पूछा–कैसे?

रमानाथ–उसी तरह जैसे आपके और भाई करते हैं!

दयानाथ–वह मुझसे नहीं हो सकता।

तीनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे। दयानाथ ने अपना फैसला सुना दिया। जागेश्वरी और रमा को यह फैसला मंजूर न था। इसलिए अब इस गुत्थी के सुलझाने का भार उन्हीं दोनों पर था। जागेश्वरी ने भी एक तरह से निश्चय कर लिया था। दयानाथ को झख मारकर अपना नियम तोड़ना पड़ेगा। यह कहां की नीति है कि हमारे ऊपर संकट पड़ा हुआ हो और हम अपने नियमों का राग अलापे जायं। रमानाथ बुरी तरह फंसा था। वह खूब जानता था कि पिताजी ने जो काम कभी नहीं किया, वह आज न करेंगे। उन्हें जालपा से गहने मांगने में कोई संकोच न होगा और यही वह न चाहता था। वह पछता रहा था कि मैंने क्यों जालपा से डींगें मारीं। अब अपने मुंह की लाली रखने का सारा भार उसी पर था। जालपा की अनुपम छवि ने पहले ही दिन उस पर मोहिनी डाल दी थी। वह अपने सौभाग्य पर फूला न समाता था। क्या यह घर ऐसी अनन्य सुंदरी के योग्य था? जालपा के पिता पांच रुपये के नौकर थे, पर जालपा ने कभी अपने घर में झाड़ू न लगाई थी। कभी अपनी धोती न छांटी थी। अपना बिछावन न बिछाया था।

यहां तक कि अपनी के धोती की खींच तक न सी थी। दयानाथ पचास रुपये पाते थे, पर यहां केवल चौका-बासन करने के लिए महरी थी। बाकी सारा काम अपने ही हाथों करना पड़ता था। जालपा शहर और देहात का फर्क क्या जाने! शहर में रहने का उसे कभी अवसर ही न पड़ा था। वह कई बार पति और सास से साश्चर्य पूछ चुकी थी, क्या यहां कोई नौकर नहीं है? जालपा के घर दूध-दही-घी की कमी नहीं थी। यहां बच्चों को भी दूध मयस्सर न था। इन सारे अभावों की पूर्ति के लिए रमानाथ के पास मीठी-मीठी बड़ी-बड़ी बातों के सिवा और क्या था। घर का किराया पांच रुपया था, रमानाथ ने पंद्रह बतलाए थे। लड़कों की शिक्षा का खर्च मुश्किल से दस रुपये था, रमानाथ ने चालीस बतलाए थे। उस समय उसे इसकी जरा भी शंका न थी, कि एक दिन सारा भंडा फट जायगा। मिथ्या दूरदर्शी नहीं होता, लेकिन वह दिन इतनी जल्दी आयगा, यह कौन जानता था। अगर उसने ये डींगें न मारी होतीं, तो जागेश्वरी की तरह वह भी सारा भार दयानाथ पर छोड़कर निश्चिन्त हो जाता, लेकिन इस वक्त वह अपने ही बनाए हुए जाल में फंस गया था। कैसे निकले! उसने कितने ही उपाय सोचे, लेकिन कोई ऐसा न था, जो आगे चलकर उसे उलझनों में न डाल देता, दलदल में न फंसा देता। एकाएक उसे एक चाल सूझी। उसका दिल उछल पड़ा, पर इस बात को वह मुंह तक न ला सका, ओह!

कितनी नीचता है! कितना कपट! कितनी निर्दयता! अपनी प्रेयसी के साथ ऐसी धूर्तता! उसके मन ने उसे धिक्कारा, अगर इस वक्त उसे कोई एक हजार रुपया दे देता, तो वह उसका उम्रभर के लिए गुलाम हो जाता।

दयानाथ ने पूछा-कोई बात सूझी? मुझे तो कुछ नहीं सूझता।

कोई उपाय सोचना ही पड़ेगा। आप ही सोचिए, मुझे तो कुछ नहीं सूझता।

क्यों नहीं उससे दो-तीन गहने मांग लेते? तुम चाहो तो ले सकते हो, हमारे लिए मुश्किल है।

मुझे शर्म आती हैं।

तुम विचित्र आदमी हो, न खुद मांगोगे न मुझे मांगने दोगे, तो आखिर यह नाव कैसे चलेगी? मैं एक बार नहीं, हजार बार कह चुका कि मुझसे कोई आशा मत रक्खो। मैं अपने आखिरी दिन जेल में नहीं काट सकता इसमें शर्म की क्या बात है, मेरी समझ में नहीं आता। किसके जीवन में ऐसे कुअवसर नहीं आते? तुम्हीं अपनी मां से पूछो।

जागेश्वरी ने अनुमोदन किया–मुझसे तो नहीं देखा जाता था कि अपना आदमी चिंता में पड़ा रहे, मैं गहने पहने बैठी रहूँ। नहीं तो आज मेरे पास भी गहने न होते? एक–एक करके सब निकल गए। विवाह में पांच हजार से कम का चढ़ावा नहीं गया था, मगर पांच ही साल में सब स्वाहा हो गया। तब से एक छल्ला बनवाना भी नसीब न हुआ।

दयानाथ जोर देकर बोले–शर्म करने का यह अवसर नहीं है। इन्हें मांगना पड़ेगा!

रमानाथ ने झेंपते हुए कहा–मैं मांग तो नहीं सकता, कहिए उठा लाऊं।

यह कहते–कहते लज्जा, क्षोभ और अपनी नीचता के ज्ञान से उसकी आंखें सजल हो गईं।

दयानाथ ने भौंचक्ध होकर कहा–उठा लाओगे, उससे छिपाकर?

रमानाथ ने तीव्र कंठ से कहा–और आप क्या समझ रहे हैं?

दयानाथ ने माथे पर हाथ रख लिया, और एक क्षण के बाद आहत कंठ से बोले–नहीं, मैं ऐसा न करने दूंगा। मैंने छल कभी नहीं किया, और न कभी करूंगा। वह भी अपनी बहू के साथ! छि:–छि:, जो काम सीधे से चल सकता है, उसके लिए यह फरेब– कहीं उसकी निगाह पड़ गई, तो समझते हो, वह तुम्हें दिल में क्या समझेगी? मांग लेना इससे कहीं अच्छा है।

रमानाथ–आपको इससे क्या मतलब। मुझसे चीजें ले लीजिएगा, मगर जब आप जानते थे, यह नौबत आएगी, तो इतने जेवर ले जाने की जरूरत ही क्या थी? व्यर्थ की विपत्ति मोल ली। इससे कई लाख गुना अच्छा था कि आसानी से जितना ले जा सकते, उतना ही ले जाते। उस भोजन से क्या लाभ कि पेट में पीड़ा होने लगे? मैं तो समझ रहा था कि आपने कोई मार्ग निकाल लिया होगा। मुझे क्या मालूम था कि आप मेरे सिर यह मुसीबतों की टोकरी पटक देंगे। वरना मैं उन चीजों को कभी न ले जाने देता।

दयानाथ कुछ लज्जित होकर बोले–इतने पर भी चन्द्रहार न होने से वहां हाय–तोबा मच गई।

रमानाथ–उस हाय–तोबा से हमारी क्या हानि हो सकती थी। जब इतना करने पर भी हाय–तोबा मच गई, तो मतलब भी तो न पूरा हुआ। उधर बदनामी हुई, इधर यह आफत सिर पर आई। मैं यह नहीं दिखाना चाहता कि हम इतने फटेहाल हैं। चोरी हो जाने पर तो सब्र करना ही पड़ेगा।

दयानाथ चुप हो गए। उस आवेश में रमा ने उन्हें खूब खरी-खरी सुनाई और वह चुपचाप सुनते रहे। आखिर जब न सुना गया, तो उठकर पुस्तकालय चले गए। यह उनका नित्य का नियम था। जब तक दो-चार पत्र-पत्रिकाएं न पढ़लें, उन्हें खाना न हजम होता था। उसी सुरक्षित गढ़ी में पहुँचकर घर की चिंताओं और बाधाओं से उनकी जान बचती थी। रमा भी वहां से उठा, पर जालपा के पास न जाकर अपने कमरे में गया। उसका कोई कमरा अलग तो था नहीं, एक ही मर्दाना कमरा था, इसी में दयानाथ अपने दोस्तों से गप-शप करते, दोनों लड़के पढ़ते और रमा मित्रों के साथ शतरंज खेलता। रमा कमरे में पहुँचा, तो दोनों लड़के ताश खेल रहे थे। गोपी का तेरहवां साल था, विश्वम्भर का नवां। दोनों रमा से थरथर कांपते थे। रमा खुद खूब ताश और शतरंज खेलता, पर भाइयों को खेलते देखकर हाथ में खुजली होने लगती थी। खुद चाहे दिनभर सैर - सपाटे किया करे, मगर क्या मजाल कि भाई कहीं घूमने निकल जायं। दयानाथ खुद लड़कों को कभी न मारते थे। अवसर मिलता, तो उनके साथ खेलते थे। उन्हें कनकौवे उड़ाते देखकर उनकी बाल-प्रकृति सजग हो जाती थी। दो-चार पेंच लड़ा देते। बच्चों के साथ कभी-कभी गुल्ली-डंडा भी खेलते थे। इसलिए लड़के जितना रमा से डरते, उतना ही पिता से प्रेम करते थे।

रमा को देखते ही लड़कों ने ताश को टाट के नीचे छिपा दिया और पढ़ने लगे। सिर झुकाए चपत की प्रतीक्षा कर रहे थे, पर रमानाथ ने चपत नहीं लगाई, मोढ़े पर बैठकर गोपीनाथ से बोला-तुमने भंग की दुकान देखी है न, नुक्कड़ पर?

गोपीनाथ प्रसन्न होकर बोला-हां, देखी क्यों नहीं। जाकर चार पैसे का माजून ले लो, दौड़े हुए आना। हां, हलवाई की दुकान से आधा सेर मिठाई भी लेते आना। यह रुपया लो।

कोई पंद्रह मिनट में रमा ये दोनों चीजें ले, जालपा के कमरे की ओर चला। रात के दस बज गए थे। जालपा खुली हुई छत पर लेटी हुई थी। जेठ की सुनहरी चांदनी में सामने फैले हुए नगर के कलश, गुंबद और वृक्ष स्वप्न-चित्रों से लगते थे। जालपा की आंखें चंद्रमा की ओर लगी हुई थीं। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मैं चंद्रमा की ओर उड़ी जा रही हूँ। उसे अपनी नाक में खुश्की, आंखों में जलन और सिर में चक्कर मालूम हो रहा था। कोई बात ध्यान में आते ही भूल जाती, और बहुत याद करने पर भी याद न आती थी। एक बार घर की याद आ गई, रोने लगी। एक ही क्षण में सहेलियों की याद आ गई, हंसने लगी। सहसा रमानाथ हाथ में एक पोटली लिये, मुस्कराता हुआ आया और चारपाई पर बैठ गया।

जालपा ने उठकर पूछा–पोटली में क्या है?

रमानाथ–बूझ जाओ तो जानूं।

जालपा–हंसी का गोलगप्पा है! (यह कहकर हंसने लगी।)

रमानाथ–मलतब?

जालपा–नींद की गठरी होगी!

रमानाथ–मलतब?

जालपा–तो प्रेम की पिटारी होगी!

रमानाथ– ठीक, आज मैं तुम्हें फूलों की देवी बनाऊंगा।

जालपा खिल उठी। रमा ने बड़े अनुराग से उसे फूलों के गहने पहनाने शुरू किए, फूलों के शीतल कोमल स्पर्श से जालपा के कोमल शरीर में गुदगुदी–सी होने लगी। उन्हीं फूलों की भांति उसका एक–एक रोम प्रफुल्लित हो गया।

रमा ने मुस्कराकर कहा–कुछ उपहार?

जालपा ने कुछ उत्तर न दिया। इस वेश में पति की ओर ताकते हुए भी उसे संकोच हुआ। उसकी बड़ी इच्छा हुई कि जरा आईने में अपनी छवि देखे। सामने कमरे में लैंप जल रहा था, वह उठकर कमरे में गई और आईने के सामने खड़ी हो गई। नशे की तरंग में उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैं सचमुच फूलों की देवी हूँ। उसने पानदान उठा लिया और बाहर आकर पान बनाने लगी। रमा को इस समय अपने कपट–व्यवहार पर बड़ी ग्लानि हो रही थी। जालपा ने कमरे से लौटकर प्रेमोल्लसित नजरों से उसकी ओर देखा, तो उसने मुंह उधर कर लिया। उस सरल विश्वास से भरी हुई आंखों के सामने वह ताक न सका। उसने सोचा–मैं कितना बड़ा कायर हूँ। क्या मैं बाबूजी को साफ–साफ जवाब न दे सकता था? मैंने हामी ही क्यों भरी– क्या जालपा से घर की दशा साफ–साफ कह देना मेरा कर्त्तव्य न था – उसकी आंखें भर आई। जाकर मुंडेर के पास खडा हो गया। प्रणय के उस निर्मल प्रकाश में उसका मनोविकार किसी भंयकर जंतु की भांति घूरता हुआ जान पड़ता था। उसे अपने ऊपर इतनी घृणा हुई कि एक बार जी में आया, सारा कपट–व्यवहार खोल दूं, लेकिन संभल गया। कितना भयंकर परिणाम होगा। जालपा की नजरों से फिर जाने की कल्पना ही उसके लिए असह्य थी।

जालपा ने प्रेम–सरस नजरों से देखकर कहा – मेरे दादाजी तुम्हें देखकर गए और अम्मांजी से तुम्हारा बखान करने लगे, तो मैं सोचती थी कि तुम कैसे होगे। मेरे मन में तरह–तरह के चित्र आते थे।

रमानाथ ने एक लंबी सांस खींची। कुछ जवाब न दिया।

जालपा ने फिर कहा – मेरी सखियां तुम्हें देखकर मुग्ध हो गईं। शहजादी तो खिड़की के सामने से हटती ही न थी। तुमसे बातें करने की उसकी बड़ी इच्छा थी। जब तुम अंदर गए थे तो उसी ने तुम्हें पान के बीड़े दिए थे, याद है?

रमा ने कोई जवाब न दिया।

जालपा–अजी, वही जो रंग–रूप में सबसे अच्छी थी, जिसके गाल पर एक तिल था, तुमने उसकी ओर बड़े प्रेम से देखा था, बेचारी लाज के मारे गड़ गई थी। मुझसे कहने लगी, जीजा तो बड़े रसिक जान पड़ते हैं। सखियों ने उसे खूब चिढ़ाया, बेचारी रूआंसी हो गई। याद है?

रमा ने मानो नदी में डूबते हुए कहा–मुझे तो याद नहीं आता।

जालपा–अच्छा, अबकी चलोगे तो दिखा दूंगी। आज तुम बाजार की तरफ गए थे कि नहीं?

रमा ने सिर झुकाकर कहा–आज तो फुरसत नहीं मिली।

जालपा–जाओ, मैं तुमसे न बोलूंगी! रोज हीले–हवाले करते हो अच्छा, कल ला दोगे न? '

रमानाथ का कलेजा मसोस उठा। यह चन्द्रहार के लिए इतनी विकल हो रही है। इसे क्या मालूम कि दुर्भाग्य इसका सर्वस्व लूटने का सामान कर रहा है। जिस सरल बालिका पर उसे अपने प्राणों को न्योछावर करना चाहिए था, उसी का सर्वस्व अपहरण करने पर वह तुला हुआ है! वह इतना व्यग्र हुआ,कि जी में आया, कोठे से कूदकर प्राणों का अंत कर दे।

आधी रात बीत चुकी थी। चन्द्रमा चोर की भांति एक वृक्ष की आड़ से झांक रहा था। जालपा पति के गले में हाथ डाले हुए निद्रा में मग्न थी। रमा मन में विकट संकल्प करके धीरे से उठा, पर निद्रा की गोद में सोए हुए पुष्प प्रदीप ने उसे अस्थिर कर दिया। वह एक क्षण खड़ा मुग्ध नजरों से जालपा के निद्रा–विहसित मुख की ओर देखता रहा। कमरे में जाने का साहस न हुआ। फिर लेट गया।

जालपा ने चौंककर पूछा–कहां जाते हो, क्या सवेरा हो गया?

रमानाथ–अभी तो बड़ी रात है।

जालपा–तो तुम बैठे क्यों हो?

रमानाथ–कुछ नहीं, जरा पानी पीने उठा था।

जालपा ने प्रेमातुर होकर रमा के गले में बांहें डाल दीं और उसे सुलाकर कहा–तुम इस तरह मुझ पर टोना करोगे, तो मैं भाग जाऊंगी। न जाने किस तरह ताकते हो, क्या करते हो, क्या मंत्र पढ़ते हो कि मेरा मन चंचल हो जाता है। बासन्ती सच कहती थी, पुरूषों की आंख में टोना होता है।

रमा ने फटे हुए स्वर में कहा–टोना नहीं कर रहा हूँ, आंखों की प्यास बुझा रहा हूँ।

दोनों फिर सोए, एक उल्लास में डूबी हुई, दूसरा चिंता में मग्न।

तीन घंटे और गुजर गए। द्वादशी के चांद ने अपना विश्व–दीपक बुझा दिया। प्रभात की शीतल–समीर प्रकृति को मद के प्याले पिलाती फिरती थी। आधी रात तक जागने वाला बाजार भी सो गया। केवल रमा अभी तक जाग रहा था। मन में भांति–भांति के तर्क–वितर्क उठने के कारण वह बार–बार उठता था और फिर लेट जाता था। आखिर जब चार बजने की आवाज कान में आई, तो घबराकर उठ बैठा और कमरे में जा पहुँचा। गहनों का संदूकचा आलमारी में रक्खा हुआ था, रमा ने उसे उठा लिया, और थरथर कांपता हुआ नीचे उतर गया। इस घबराहट में उसे इतना अवकाश न मिला कि वह कुछ गहने छांटकर निकाल लेता। दयानाथ नीचे बरामदे में सो रहे थे। रमा ने उन्हें धीरे–से जगाया, उन्होंने हकबकाकर पूछा –कौन

रमा ने होंठ पर उंगली रखकर कहा–मैं हूँ। यह संदूकची लाया हूँ। रख लीजिए।

दयानाथ सावधन होकर बैठ गए। अभी तक केवल उनकी आंखें जागी थीं, अब चेतना भी जाग्रत हो गई। रमा ने जिस वक्त उनसे गहने उठा लाने की बात कही थी, उन्होंने समझा था कि यह आवेश में ऐसा कह रहा है। उन्हें इसका विश्वास न आया था कि रमा जो कुछ कह रहा है, उसे भी पूरा कर दिखाएगा। इन कमीनी चालों से वह अलग ही रहना चाहते थे। ऐसे कुत्सित कार्य में पुत्र से साठ–गांठ करना उनकी अंतरात्मा को किसी तरह स्वीकार न था।

पूछा–इसे क्यों उठा लाए?

रमा ने धृष्टता से कहा–आप ही का तो हुक्म था।

दयानाथ–झूठ कहते हो!

रमानाथ–तो क्या फिर रख आऊं?

रमा के इस प्रश्न ने दयानाथ को घोर संकट में डाल दिया। झेंपते हुए बोले–अब क्या रख आओगे, कहीं देख ले, तो गजब ही हो जाए। वही काम

करोगे, जिसमें जग-हंसाई हो खड़े क्या हो, संदूकची मेरे बड़े संदूक में रख आओ और जाकर लेट रहो कहीं जाग पड़े तो बस! बरामदे के पीछे दयानाथ का कमरा था। उसमें एक देवदार का पुराना संदूक रखा था। रमा ने संदूकची उसके अंदर रख दी और बड़ी फुर्ती से ऊपर चला गया। छत पर पहुँचकर उसने आहट ली, जालपा पिछले पहर की सुखद निद्रा में मग्न थी।

रमा ज्योंही चारपाई पर बैठा, जालपा चौंक पड़ी और उससे चिमट गई।

रमा ने पूछा-क्या है, तुम चौंक क्यों पड़ीं?

जालपा ने इधर-उधर प्रसन्न नजरों से ताककर कहा-कुछ नहीं, एक स्वप्न देख रही थी। तुम बैठे क्यों हो, कितनी रात है अभी?

रमा ने लेटते हुए कहा-सवेरा हो रहा है, क्या स्वप्न देखती थीं?

जालपा-जैसे कोई चोर मेरे गहनों की संदूकची उठाए लिये जाता हो।

रमा का हृदय इतने जोर से धक-धक करने लगा, मानो उस पर हथौड़े पड़ रहे हैं। खून सर्द हो गया। परंतु संदेह हुआ, कहीं इसने मुझे देख तो नहीं लिया। वह जोर से चिल्ला पड़ा-चोर! चोर! नीचे बरामदे में दयानाथ भी चिल्ला उठे-चोर! चोर! जालपा घबड़ाकर उठी। दौड़ी हुई कमरे में गई, झटके से आलमारी खोली। संदूकची वहां न थी? मूर्छित होकर फिर पड़ी।

सवेरा होते ही दयानाथ गहने लेकर सर्राफ के पास पहुँचे और हिसाब होने लगा। सर्राफ के पंद्रह सौ रु. आते थे, मगर वह केवल पंद्रह सौ रु. के गहने लेकरसंतुष्ट न हुआ। बिके हुए गहनों को वह बक्रे पर ही ले सकता था। बिकी हुई चीज कौन वापस लेता है। रोकड़ पर दिए होते, तो दूसरी बात थी। इन चीजों का तो सौदा हो चुका था। उसने कुछ ऐसी व्यापारिक सिद्धान्त की बातें की, दयानाथ को कुछ ऐसा शिकंजे में कसा कि बेचारे को हां-हां करने के सिवा और कुछ न सूझा। दफ्तर का बाबू चतुर दुकानदार से क्या पेश पाता - पंद्रह सौ रु. में पच्चीस सौ रु. के गहने भी चले गए, ऊपर से पचास रु. और बाकी रह गए। इस बात पर पिता-पुत्र में कई दिन खूब वाद-विवाद हुआ। दोनों एक-दूसरे को दोषी ठहराते रहे। कई दिन आपस में बोलचाल बंद रही, मगर इस चोरी का हाल गुप्त रखा गया। पुलिस को खबर हो जाती, तो भंडा फूट जाने का भय था। जालपा से यही कहा गया कि माल तो मिलेगा नहीं, व्यर्थ का झंझट भले ही होगा। जालपा ने भी सोचा, जब माल ही न मिलेगा, तो रपट व्यर्थ क्यों की जाय।

जालपा को गहनों से जितना प्रेम था, उतना कदाचित संसार की और किसी वस्तु से न था, और उसमें आश्चर्य की कौन-सी बात थी। जब वह तीन वर्ष

की अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाए गए थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती, तो गहनों की ही चर्चा करती–तेरा दूल्हा तेरे लिए बड़े सुंदर गहने लाएगा। ठुमक–ठुमककर चलेगी। जालपा पूछती–चांदी के होंगे कि सोने के, दादीजी?

दादी कहती–सोने के होंगे बेटी, चांदी के क्यों लाएगा– चांदी के लाए तो तुम उठाकर उसके मुंह पर पटक देना।

मानकी छेड़कर कहती–चांदी के तो लाएगा ही। सोने के उसे कहां मिले जाते हैं!

जालपा रोने लगती, इस बूढ़ी दादी, मानकी, घर की महरियां, पड़ोसिनें और दीनदयाल–सब हंसते। उन लोगों के लिए यह विनोद का अशेष भंडार था। बालिका जब जरा और बड़ी हुई, तो गुडियों के ब्याह करने लगी। लडके की ओर से चढ़ावे जाते, दुलहिन को गहने पहनाती, डोली में बैठाकर विदा करती, कभी–कभी दुलहिन गुड़िया अपने दूल्हे से गहनों के लिए मांन करती, गुड्डा बेचारा कहीं–न–कहीं से गहने लाकर स्त्री को प्रसन्न करता था। उन्हीं दिनों बिसाती ने उसे वह चन्द्रहार दिया, जो अब तक उसके पास सुरक्षित था। जरा और बड़ी हुई तो बड़ी–बूढ़ियों में बैठकर गहनों की बातें सुनने लगी। महिलाओं के उस छोटे–से संसार में इसके सिवा और कोई चर्चा ही न थी। किसने कौन–कौन गहने बनवाए, कितने दाम लगे, ठोस हैं या पोले, जड़ाऊ हैं या सादे, किस लडकी के विवाह में कितने गहने आए? इन्हीं महत्त्वपूर्ण विषयों पर नित्य आलोचना–प्रत्यालोचना, टीका–टिप्पणी होती रहती थी। कोई दूसरा विषय इतना रोचक, इतना ग्राह्य हो ही नहीं सकता था। इस आभूषण–मंडित संसार में पली हुई जालपा का यह आभूषण–प्रेम स्वाभाविक ही था।

महीने–भर से ऊपर हो गया। उसकी दशा ज्यों–की–त्यों है। न कुछ खाती–पीती हैं, न किसी से हंसती–बोलती हैं। खाट पर पड़ी हुई शून्य नजरों से शून्याकाश की ओर ताकती रहती हैं। सारा घर समझाकर हार गया, पड़ोसिनें समझाकर हार गई, दीनदयाल आकर समझा गए, पर जालपा ने रोग– शय्या न छोड़ी। उसे अब घर में किसी पर विश्वास नहीं है, यहां तक कि रमा से भी उदासीन रहती हैं। वह समझती हैं, सारा घर मेरी उपेक्षा कर रहा है। सबके– सब मेरे प्राण के ग्राहक हो रहे हैं। जब इनके पास इतना धन है, तो फिर मेरे गहने क्यों नहीं बनवाते? जिससे हम सबसे अधिक स्नेह रखते हैं, उसी पर सबसे अधिक रोष भी करते हैं। जालपा को सबसे अधिक क्रोध रमानाथ पर था। अगर

यह अपने माता-पिता से जोर देकर कहते, तो कोई इनकी बात न टाल सकता, पर यह कुछ कहें भी- इनके मुंह में तो दही जमा हुआ है। मुझसे प्रेम होता, तो यों निश्चिंत न बैठे रहते। जब तक सारी चीजें न बनवा लेते, रात को नींद न आती। मुंह देखे की मुहब्बत है, मां-बाप से कैसे कहें, जाएंगे तो अपनी ही ओर, मैं कौन हूँ! वह रमा से केवल खिंची ही न रहती थी, वह कभी कुछ पूछता तो दो-चार जली-कटी सुना देती। बेचारा अपना-सा मुंह लेकर रह जाता! गरीब अपनी ही लगाई हुई आग में जला जाता था। अगर वह जानता कि उन डींगों का यह फल होगा, तो वह जबान पर मुहर लगा लेता। चिंता और ग्लानि उसके हृदय को कुचले डालती थी। कहां सुबह से शाम तक हंसी-कहकहे, सैर - सपाटे में कटते थे, कहां अब नौकरी की तलाश में ठोकरें खाता-फिरता था। सारी मस्ती गायब हो गई। बार-बार अपने पिता पर क्रोध आता, यह चाहते तो दो-चार महीने में सब रुपये अदा हो जाते, मगर इन्हें क्या फिक्र! मैं चाहे मर जाऊं पर यह अपनी टेक न छोड़ेंगे। उसके प्रेम से भरे हुए, निष्कपट हृदय में आग-सी सुलगती रहती थी। जालपा का मुरझाया हुआ मुख देखकर उसके मुंह से ठंडी सांस निकल जाती थी। वह सुखद प्रेम-स्वप्न इतनी जल्द भंग हो गया, क्या वे दिन फिर कभी आएंगे- तीन हजार के गहने कैसे बनेंगे- अगर नौकर भी हुआ, तो ऐसा कौन-सा बड़ा ओहदा मिल जाएगा- तीन हजार तो शायद तीन जन्म में भी न जमा हों। वह कोई ऐसा उपाय सोच निकालना चाहता था, जिसमें वह जल्द-से- जल्द अतुल संपत्ति का स्वामी हो जाय। कहीं उसके नाम कोई लाटरी निकल आती! फिर तो वह जालपा को आभूषणों से मढ़ देता। सबसे पहले चन्द्रहार बनवाता। उसमें हीरे जड़े होते। अगर इस वक्त उसे जाली नोट बनाना आ जाता तो अवश्य बनाकर चला देता। एक दिन वह शाम तक नौकरी की तलाश में मारा-मारा फिरता रहा।

शतरंज की बदौलत उसका कितने ही अच्छे-अच्छे आदमियों से परिचय था, लेकिन वह संकोच और डर के कारण किसी से अपनी स्थिति प्रकट न कर सकता था। यह भी जानता था कि यह मान-सम्मान उसी वक्त तक है, जब तक किसी के समाने मदद के लिए हाथ नहीं फैलाता। यह आन टूटी, फिर कोई बात भी न पूछेगा। कोई ऐसा भलामानुष न दीखता था, जो कुछ बिना कहे ही जान जाए, और उसे कोई अच्छी-सी जगह दिला दे। आज उसका चित्त बहुत खिन्न था। मित्रों पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि एक-एक को फटकारे और आएं तो द्वार से दुत्कार दे। अब किसी ने शतरंज खेलने को बुलाया, तो ऐसी फटकार

सुनाऊंगा कि बचा याद करें, मगर वह जरा गौर करता तो उसे मालूम हो जाता कि इस विषय में मित्रों का उतना दोष न था, जितना खुद उसका। कोई ऐसा मित्र न था, जिससे उसने बढ़-बढ़कर बातें न की हों। यह उसकी आदत थी। घर की असली दशा को वह सदैव बदनामी की तरह छिपाता रहा। और यह उसी का फल था कि इतने मित्रों के होते हुए भी वह बेकार था। वह किसी से अपनी मनोव्यथा न कह सकता था और मनोव्यथा सांस की भांति अंदर घुटकर असह्य हो जाती हैं। घर में आकर मुंह लटकाए हुए बैठ गया।

जागेश्वरी ने पानी लाकर रख दिया और पूछा-आज तुम दिनभर कहां रहे? लो हाथ- मुंह धो डालो। रमा ने लोटा उठाया ही था कि जालपा ने आकर उग्र भाव से कहा-मुझे मेरे घर पहुँचा दो, इसी वक्त!

रमा ने लोटा रख दिया और उसकी ओर इस तरह ताकने लगा, मानो उसकी बात समझ में न आई हो।

जागेश्वरी बोली-भला इस तरह कहीं बहू-बेटियां विदा होती हैं, कैसी बात कहती हो, बहू?

जालपा-मैं उन बहू-बेटियों में नहीं हूँ। मेरा जिस वक्त जी चाहेगा, जाऊंगी, जिस वक्त जी चाहेगा, आऊंगी। मुझे किसी का डर नहीं है। जब यहां कोई मेरी बात नहीं पूछता, तो मैं भी किसी को अपना नहीं समझती। सारे दिन अनाथों की तरह पड़ी रहती हूँ। कोई झांकता तक नहीं। मैं चिड़िया नहीं हूँ, जिसका पिंजड़ा दाना-पानी रखकर बंद कर दिया जाय। मैं भी आदमी हूँ। अब इस घर में मैं क्षण-भर न रुकूंगी। अगर कोई मुझे भेजने न जायगा, तो अकेली चली जाउंगी। राह में कोई भेड़िया नहीं बैठा है, जो मुझे उठा ले जाएगा और उठा भी ले जाए, तो क्या गम। यहां कौन-सा सुख भोग रही हूँ।

रमा ने सावधन होकर कहा-आखिर कुछ मालूम भी तो हो, क्या बात हुई?

जालपा-बात कुछ नहीं हुई, अपना जी है। यहां नहीं रहना चाहती।

रमानाथ-भला इस तरह जाओगी तो तुम्हारे घरवाले क्या कहेंगे, कुछ यह भी तो सोचो!

जालपा-यह सब कुछ सोच चुकी हूँ, और ज्यादा नहीं सोचना चाहती। मैं जाकर अपने कपड़े बांधती हूँ और इसी गाड़ी से जाऊंगी।

यह कहकर जालपा ऊपर चली गई। रमा भी पीछे-पीछे यह सोचता हुआ चला, इसे कैसे शांत करूं। जालपा अपने कमरे में जाकर बिस्तर लपेटने लगी कि रमा ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला-तुम्हें मेरी कसम जो इस वक्त जाने का नाम लो!

जालपा ने त्योरी चढ़ाकर कहा–तुम्हारी कसम की हमें कुछ परवा नहीं है।

उसने अपना हाथ छुड़ा लिया और फिर बिछावन लपेटने लगी। रमा खिसियाना–सा होकर एक किनारे खड़ा हो गया। जालपा ने बिस्तरबंद से बिस्तरे को बांधा और फिर अपने संदूक को साफ करने लगी। मगर अब उसमें वह पहले–सी तत्परता न थी, बार–बार संदूक बंद करती और खोलती।

वर्षा बंद हो चुकी थी, केवल छत पर रुका हुआ पानी टपक रहा था। आखिर वह उसी बिस्तर के बंडल पर बैठ गई और बोली–तुमने मुझे कसम क्यों दिलाई? रमा के हृदय में आशा की गुदगुदी हुई। बोला–इसके सिवा मेरे पास तुम्हें रोकने का और क्या उपाय था?

जालपा–क्या तुम चाहते हो कि मैं यहीं घुट–घुटकर मर जाऊं?

रमानाथ–तुम ऐसे मनहूस शब्द क्यों मुंह से निकालती हो? मैं तो चलने को तैयार हूँ, न मानोगी तो पहुँचाना ही पड़ेगा। जाओ, मेरा ईश्वर मालिक है, मगर कम–से–कम बाबूजी और अम्मां से पूछ लो।

बुझती हुई आग में तेल पड़ गया। जालपा तड़पकर बोली–वह मेरे कौन होते हैं,जो उनसे पूछूँ?

रमानाथ–कोई नहीं होते?

जालपा–कोई नहीं! अगर कोई होते, तो मुझे यों न छोड़ देते। रुपये रखते हुए कोई अपने प्रियजनों का कष्ट नहीं देख सकता ये लोग क्या मेरे आंसू न पोंछ सकते थे? मैं दिन–के दिन यहां पड़ी रहती हूँ, कोई झूठों भी पूछता है? मुहल्ले की स्त्रियां मिलने आती हैं, कैसे मिलूं? यह सूरत तो मुझसे नहीं दिखाई जाती। न कहीं आना न जाना, न किसी से बात न चीत, ऐसे कोई कितने दिन रह सकता है? मुझे इन लोगों से अब कोई आशा नहीं रही। आखिर दो लड़के और भी तो हैं, उनके लिए भी कुछ जोड़ेंगे कि तुम्हीं को दे दें!

रमा को बड़ी–बड़ी बातें करने का फिर अवसर मिला। वह खुश था कि इतने दिनों के बाद आज उसे प्रसन्न करने का मौका तो मिला, बोला–प्रिये, तुम्हारा ख्याल बहुत ठीक है। जरूर यही बात है। नहीं तो ढाई–तीन हजार उनके लिए क्या बड़ी बात थी? पचासों हजार बैंक में जमा हैं, दफ्तर तो केवल दिल बहलाने जाते हैं।

जालपा–मगर हैं मक्खीचूस पल्ले सिरे के!

रमानाथ–मक्खीचूस न होते, तो इतनी संपत्ति कहां से आती!

जालपा–मुझे तो किसी की परवा नहीं है जी, हमारे घर किस बात की कमी है! दाल–रोटी वहां भी मिल जायगी। दो–चार सखी–सहेलियां हैं, खेत–खलिहान हैं, बाग–बगीचे हैं, जी बहलता रहेगा।

रमानाथ–और मेरी क्या दशा होगी, जानती हो? घुल–घुलकर मर जाऊंगा। जब से चोरी हुई, मेरे दिल पर जैसी गुजरती हैं, वह दिल ही जानता है। अम्मां और बाबूजी से एक बार नहीं, लाखों बार कहा, जोर देकर कहा कि दो–चार चीजें तो बनवा ही दीजिए, पर किसी के कान पर जूं तक न रेंगी। न जाने क्यों मुझसे आंखें उधर कर लीं।

जालपा–जब तुम्हारी नौकरी कहीं लग जाय, तो मुझे बुला लेना।

रमानाथ–तलाश कर रहा हूँ। बहुत जल्द मिलने वाली है। हजारों बड़े–बड़े आदमियों से मुलाकात है, नौकरी मिलते क्या देर लगती हैं, हां, जरा अच्छी जगह चाहता हूँ।

जालपा–मैं इन लोगों का रूख समझती हूँ। मैं भी यहां अब दावे के साथ रहूँगी। क्यों, किसी से नौकरी के लिए कहते नहीं हो?

रमानाथ–शर्म आती हैं किसी से कहते हुए।

जालपा–इसमें शर्म की कौन–सी बात है – कहते शर्म आती हो, तो खत लिख दो।

रमा उछल पड़ा, कितना सरल उपाय था और अभी तक यह सीधी–सी बात उसे न सूझी थी। बोला–हां, यह तुमने बहुत अच्छी तरकीब बतलाई, कल जरूर लिखूंगा।

जालपा–मुझे पहुँचाकर आना तो लिखना। कल ही थोड़े लौट आओगे।

रमानाथ–तो क्या तुम सचमुच जाओगी? तब मुझे नौकरी मिल चुकी और मैं खत लिख चुका! इस वियोग के दु:ख में बैठकर रोऊंगा कि नौकरी ढूंढूगा। नहीं, इस वक्त जाने का विचार छोड़ो। नहीं, सच कहता हूँ, मैं कहीं भाग जाऊंगा। मकान का हाल देख चुका। तुम्हारे सिवा और कौन बैठा हुआ है, जिसके लिए यहां पड़ा–सडा करूं। हटो तो जरा मैं बिस्तर खोल दूं।

जालपा ने बिस्तर पर से जरा खिसककर कहा–मैं बहुत जल्द चली आऊंगी। तुम गए और मैं आई।

रमा ने बिस्तर खोलते हुए कहा–जी नहीं, माफ कीजिए, इस धोखे में नहीं आना। तुम्हें क्या, तुम तो सहेलियों के साथ विहार करोगी, मेरी खबर तक न लोगी, और यहां मेरी जान पर बन आवेगी। इस घर में फिर कैसे कदम रक्खा जायगा।

जालपा ने एहसान जताते हुए कहा–आपने मेरा बंधा–बंधाया बिस्तर खोल दिया, नहीं तो आज कितने आनंद से घर पहुँच जाती। शहजादी सच कहती थी, मर्द बड़े टोनहे होते हैं। मैंने आज पक्का इरादा कर लिया था कि चाहे ब्रह्मा भी उतर आएं, पर मैं न मानूंगी। पर तुमने दो ही मिनट में मेरे सारे मनसूबे चौपट कर दिए। कल खत लिखना जरूर। बिना कुछ पैदा किए अब निर्वाह नहीं है।

रमानाथ–कल नहीं, मैं इसी वक्त जाकर दो–तीन चिट्ठियां लिखता हूँ।

जालपा–पान तो खाते जाओ।

रमानाथ ने पान खाया और मर्दाने कमरे में आकर खत लिखने बैठे। मगर फिर कुछ सोचकर उठ खड़े हुए और एक तरफ को चल दिए। स्त्री का सप्रेम आग्रह पुरूष से क्या नहीं करा सकता।

रमा के परिचितों में एक रमेश बाबू म्यूनिसिपल बोर्ड में हेड क्लर्क थे। उम्र तो चालीस के ऊपर थी, पर थे बड़े रसिक। शतरंज खेलने बैठ जाते, तो सवेरा कर देते। दफ्तर भी भूल जाते। न आगे नाथ न पीछे पगहा। जवानी में स्त्री मर गई थी, दूसरा विवाह नहीं किया। उस एकांत जीवन में सिवा विनोद के और क्या अवलंब था। चाहते तो हजारों के वारे–न्यारे करते, पर रिश्वत की कौड़ी भी हराम समझते थे। रमा से बड़ा स्नेह रखते थे। और कौन ऐसा निठल्ला था, जो रात–रात भर उनसे शतरंज खेलता। आज कई दिन से बेचारे बहुत व्याकुल हो रहे थे। शतरंज की एक बाजी भी न हुई। अखबार कहां तक पढ़ते। रमा इधर दो–एक बार आया अवश्य, पर बिसात पर न बैठा रमेश बाबू ने मुहरे बिछा दिए। उसको पकड़कर बैठाया, पर वह बैठा नहीं। वह क्यों शतरंज खेलने लगा। बहू आई है, उसका मुंह देखेगा, उससे प्रेमालाप करेगा कि इस बूढ़े के साथ शतरंज खेलेगा! कई बार जी में आया, उसे बुलवाएं, पर यह सोचकर कि वह क्यों आने लगा, रह गए। कहां जायं– सिनेमा ही देख आवें– किसी तरह समय तो कटे। सिनेमा से उन्हें बहुत प्रेम न था, पर इस वक्त उन्हें सिनेमा के सिवा और कुछ न सूझा। कपड़े पहने और जाना ही चाहते थे कि रमा ने कमरे में कदम रखा। रमेश उसे देखते ही गेंद की तरह लुढ़ककर द्वार पर जा पहुँचे और उसका हाथ पकड़कर बोले–आइए, आइए, बाबू रमानाथ साहब बहादुर! तुम तो इस बुड्ढे को बिलकुल भूल ही गए। हां भाई, अब क्यों आओगे? प्रेमिका की रसीली बातों का आनंद यहां कहां? चोरी का कुछ पता चला?

रमानाथ–कुछ भी नहीं।

रमेश–बहुत अच्छा हुआ, थाने में रपट नहीं लिखाई, नहीं सौ–दो सौ के मत्थे और जाते। बहू को तो बड़ा दु:ख हुआ होगा?

रमानाथ–कुछ पूछिए मत, तभी से दाना–पानी छोड़ रक्खा है? मैं तो तंग आ गया। जी में आता है, कहीं भाग जाऊं। बाबूजी सुनते नहीं।

रमेश–बाबूजी के पास क्या काई का खजाना रक्खा हुआ है? अभी चार–पांच हजार खर्च किए हैं, फिर कहां से लाकर गहने बनवा दें? दस–बीस हजार रुपये होंगे, तो अभी दो बच्चे भी तो सामने हैं और नौकरी का भरोसा ही क्या पचास रु. होता ही क्या है?

रमानाथ–मैं तो मुसीबत में फंस गया। अब मालूम होता है, कहीं नौकरी करनी पड़ेगी। चैन से खाते और मौज उडाते थे, नहीं तो बैठे–बैठाए इस मायाजाल में फंसे। अब बतलाइए, है कहीं नौकरी–चाकरी का सहारा?

रमेश ने ताक पर से मुहरे और बिसात उतारते हुए कहा–आओ एक बाजी हो जाए, फिर इस मामले को सोचें, इसे जितना आसान समझ रहे हो, उतना आसान नहीं है। अच्छे–अच्छे धक्के खा रहे हैं।

रमानाथ–मेरा तो इस वक्त खेलने को जी नहीं चाहता। जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय, मेरे होश ठिकाने नहीं होंगे।

रमेश बाबू ने शतरंज के मुहरे बिछाते हुए कहा–आओ बैठो। एक बार तो खेल लो, फिर सोचें, क्या हो सकता है।

रमानाथ–जरा भी जी नहीं चाहता, मैं जानता कि सिर मुड़ाते ही ओले पड़ेंगे, तो मैं विवाह के नजदीक ही न जाता!

रमेश–अजी, दो–चार चालें चलो तो आप–ही–आप जी लग जायगा। जरा अक्ल की गांठ तो खुले।

बाजी शुरू हुई। कई मामूली चालों के बाद रमेश बाबू ने रमा का रुख पीट लिया।

रमानाथ–ओह, क्या गलती हुई!

रमेश बाबू की आंखों में नशे की–सी लाली छाने लगी। शतरंज उनके लिए शराब से कम मादक न था। बोले–बोहनी तो अच्छी हुई! तुम्हारे लिए मैं एक जगह सोच रहा हूँ। मगर वेतन बहुत कम है, केवल तीस रुपये। वह रंगी दाढ़ी वाले खां साहब नहीं हैं, उनसे काम नहीं होता। कई बार बचा चुका हूँ। सोचता था, जब तक किसी तरह काम चले, बने रहें। बाल–बच्चे वाले आदमी हैं। वह तो कई बार कह चुके हैं, मुझे छुट्टी दीजिए। तुम्हारे लायक तो वह जगह नहीं

है, चाहो तो कर लो। यह कहते-कहते रमा का फीला मार लिया। रमा ने फीले को फिर उठाने की चेष्टा करके कहा-आप मुझे बातों में लगाकर मेरे मुहरे उड़ाते जाते हैं, इसकी सनद नहीं, लाओ मेरा फीला।

रमेश-देखो भाई, बेईमानी मत करो। मैंने तुम्हारा फीला जबरदस्ती तो नहीं उठाया। हां, तो तुम्हें वह जगह मंजूर है?

रमानाथ-वेतन तो तीस है।

रमेश-हां, वेतन तो कम है, मगर शायद आगे चलकर बढ़ जाय। मेरी तो राय है, कर लो।

रमानाथ-अच्छी बात है, आपकी सलाह है तो कर लूंगा।

रमेश-जगह आमदनी की है। मियां ने तो उसी जगह पर रहते हुए लड़कों को एम.ए., एल.एल. बी. करा लिया। दो कॉलेज में पढ़ते हैं। लड़कियों की शादियां अच्छे घरों में कीं। हां, जरा समझ-बूझकर काम करने की जरूरत है।

रमानाथ-आमदनी की मुझे परवा नहीं, रिश्वत कोई अच्छी चीज तो है नहीं।

रमेश-बहुत खराब, मगर बाल-बच्चों वाले आदमी क्या करें। तीस रूपयों में गुजर नहीं हो सकती। मैं अकेला आदमी हूँ। मेरे लिए डेढ़ सौ काफी हैं। कुछ बचा भी लेता हूँ, लेकिन जिस घर में बहुत से आदमी हों, लड़कों की पढ़ाई हो, लड़कियों की शादियां हों, वह आदमी क्या कर सकता है। जब तक छोटे-छोटे आदमियों का वेतन इतना न हो जाएगा कि वह भलमनसी के साथ निर्वाह कर सकें, तब तक रिश्वत बंद न होगी। यही रोटी-दाल, घी-दूध तो वह भी खाते हैं। फिर एक को तीस रुपये और दूसरे को तीन सौ रुपये क्यों देते हो? रमा का फर्जी पिट गया, रमेश बाबू ने बड़े जोर से कहकहा मारा।

रमा ने रोष के साथ कहा-अगर आप चुपचाप खेलते हैं तो खेलिए, नहीं मैं जाता हूँ। मुझे बातों में लगाकर सारे मुहरे उड़ा लिए!

रमेश-अच्छा साहब, अब बोलूं तो जबान पकड़ लीजिए। यह लीजिए, शह! तो तुम कल अर्जी दे दो। उम्मीद तो है, तुम्हें यह जगह मिल जाएगी, मगर जिस दिन जगह मिले, मेरे साथ रात-भर खेलना होगा।

रमानाथ-आप तो दो ही मातों में रोने लगते हैं।

रमेश-अजी वह दिन गए, जब आप मुझे मात दिया करते थे। आजकल चन्द्रमा बलवान हैं। इधर मैंने एक मंत्र सिद्ध किया है। क्या मजाल कि कोई मात दे सके। फिर शह!

रमानाथ–जी तो चाहता है, दूसरी बाजी मात देकर जाऊं, मगर देर होगी।

रमेश–देर क्या होगी। अभी तो नौ बजे हैं। खेल लो, दिल का अरमान निकल जाय। यह शह और मात!

रमानाथ–अच्छा कल की रही। कल ललकार कर पांच मातें न दी हों तो कहिएगा।

रमेश–अजी जाओ भी, तुम मुझे क्या मात दोगे! हिम्मत हो, तो अभी सही!

रमानाथ–अच्छा आइए, आप भी क्या कहेंगे, मगर मैं पांच बाजियों से कम न खेलूंगा!

रमेश–पांच नहीं, तुम दस खेलो जी। रात तो अपनी है। तो चलो फिर खाना खा लें। तब निश्चिन्त होकर बैठें। तुम्हारे घर कहलाए देता हूँ कि आज यहीं सोएंगे, इंतजार न करें।

दोनों ने भोजन किया और फिर शतरंज पर बैठे। पहली बाजी में ग्यारह बज गए। रमेश बाबू की जीत रही। दूसरी बाजी भी उन्हीं के हाथ रही। तीसरी बाजी खत्म हुई तो दो बज गए।

रमानाथ–अब तो मुझे नींद आ रही है।

रमेश–तो मुंह धो डालो, बरग रक्खी हुई है। मैं पांच बाजियां खेले बगैर सोने न दूंगा।

रमेश बाबू को यह विश्वास हो रहा था कि आज मेरा सितारा बुलंद है। नहीं तो रमा को लगातार तीन मात देना आसान न था। वह समझ गए थे, इस वक्त चाहे जितनी बाजियां खेलूं, जीत मेरी ही होगी मगर जब चौथी बाजी हार गए, तो यह विश्वास जाता रहा। उलटे यह भय हुआ कि कहीं लगातार हारता न जाऊं। बोले–अब तो सोना चाहिए।

रमानाथ–क्यों, पांच बाजियां पूरी न कर लीजिए?

रमेश–कल दफ्तर भी तो जाना है।

रमा ने अधिक आग्रह न किया। दोनों सोए।

रमा यों ही आठ बजे से पहले न उठता था, फिर आज तो तीन बजे सोया था। आज तो उसे दस बजे तक सोने का अधिकार था। रमेश नियमानुसार पांच बजे उठ बैठे, स्नान किया, संध्या की, घूमने गए और आठ बजे लौटे, मगर रमा तब तक सोता ही रहा। आखिर जब साढ़े नौ बज गए तो उन्होंने उसे जगाया।

रमा ने बिभड़कर कहा–नाहक जगा दिया, कैसी मजे की नींद आ रही थी।

रमेश–अजी वह अर्जी देना है कि नहीं तुमको?

रमानाथ–आप दे दीजिएगा।

रमेश–और जो कहीं साहब ने बुलाया, तो मैं ही चला जाऊंगा?

रमानाथ–ऊंह, जो चाहे कीजिएगा, मैं तो सोता हूँ।

रमा फिर लेट गया और रमेश ने भोजन किया, कपड़े पहने और दफ्तर चलने को तैयार हुए। उसी वक्त रमानाथ हड़बड़ाकर उठा और आंखें मलता हुआ बोला–मैं भी चलूंगा।

रमेश–अरे मुंह–हाथ तो धो ले, भले आदमी!

रमानाथ–आप तो चले जा रहे हैं।

रमेश–नहीं, अभी पंद्रह–बीस मिनट तक रुक सकता हूँ, तैयार हो जाओ।

रमानाथ–मैं तैयार हूँ। वहां से लौटकर घर भोजन करूंगा।

रमेश–कहता तो हूँ, अभी आधा घंटे तक रुका हुआ हूँ।

रमा ने एक मिनट में मुंह धोया, पांच मिनट में भोजन किया और चटपट रमेश के साथ दफ्तर चला।

रास्ते में रमेश ने मुस्कराकर कहा–घर क्या बहाना करोगे, कुछ सोच रक्खा है?

रमानाथ–कह दूंगा, रमेश बाबू ने आने नहीं दिया।

रमेश–मुझे गालियां दिलाओगे और क्या फिर कभी न आने पाओगे।

रमानाथ–ऐसा स्त्री–भक्त नहीं हूँ। हां, यह तो बताइए, मुझे अर्जी लेकर तो साहब के पास न जाना पड़ेगा?

रमेश–और क्या तुम समझते हो, घर बैठे जगह मिल जायगी? महीनों दौड़ना पड़ेगा, महीनों! बीसियों सिफारिशें लानी पड़ेंगी। सुबह–शाम हाजिरी देनी पड़ेगी। क्या नौकरी मिलना आसान है?

रमानाथ–तो मैं ऐसी नौकरी से बाज आया। मुझे तो अर्जी लेकर जाते ही शर्म आती हैं। खुशामदें कौन करेगा– पहले मुझे क्लर्कों पर बड़ी हंसी आती थी, मगर वही बला मेरे सिर पड़ी। साहब डांट–वांट तो न बताएंगे?

रमेश–बुरी तरह डांटता है, लोग उसके सामने जाते हुए कांपते हैं।

रमानाथ–तो फिर मैं घर जाता हूँ। यह सब मुझसे न बरदाश्त होगा।

रमेश–पहले सब ऐसे ही घबराते हैं, मगर सहते–सहते आदत पड़ जाती हैं। तुम्हारा दिल धड़क रहा होगा कि न जाने कैसी बीतेगी। जब मैं नौकर हुआ, तो तुम्हारी ही उम्र मेरी भी थी, और शादी हुए तीन ही महीने हुए थे। जिस दिन

मेरी पेशी होने वाली थी, ऐसा घबराया हुआ था मानो फांसी पाने जा रहा हूँ यमगर तुम्हें डरने का कोई कारण नहीं है। मैं सब ठीक कर दूंगा।

रमानाथ–आपको तो बीस–बाईस साल नौकरी करते हो गए होंगे!

रमेश–पूरे पच्चीस हो गए, साहब! बीस बरस तो स्त्री का देहांत हुए हो गए। दस रुपये पर नौकर हुआ था!

रमानाथ–आपने दूसरी शादी क्यों नहीं की– तब तो आपकी उम्र पच्चीस से ज्यादा न रही होगी।

रमेश ने हंसकर कहा–बरफी खाने के बाद गुड़ खाने को किसका जी चाहता है? महल का सुख भोगने के बाद झोंपड़ा किसे अच्छा लगता है? प्रेम आत्मा को तृप्त कर देता है। तुम तो मुझे जानते हो, अब तो बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मैं तुमसे सच कहता हूँ, इस विधुर–जीवन में मैंने किसी स्त्री की ओर आंख तक नहीं उठाई। कितनी ही सुंदरियां देखीं, कई बार लोगों ने विवाह के लिए घेरा भी, लेकिन कभी इच्छा ही न हुई। उस प्रेम की मधुर स्मृतियों में मेरे लिए प्रेम का सजीव आनंद भरा हुआ है। यों बातें करते हुए, दोनों आदमी दफ्तर पहुँच गए।

10

रमा दफ्तर से घर पहुँचा, तो चार बज रहे थे। वह दफ्तर ही में था कि आसमान पर बादल घिर आए। पानी आया ही चाहता था, पर रमा को घर पहुँचने की इतनी बेचैनी हो रही थी कि उससे रुका न गया। हाते के बाहर भी न निकलने पाया था कि जोर की वर्षा होने लगी। आषाढ़ का पहला पानी था, एक ही क्षण में वह लथपथ हो गया। फिर भी वह कहीं रुका नहीं। नौकरी मिल जाने का शुभ समाचार सुनाने का आनंद इस दौंगड़े की क्या परवाह कर सकता था? वेतन तो केवल तीस ही रुपये थे, पर जगह आमदनी की थी। उसने मन–ही–मन हिसाब लगा लिया था कि कितना मासिक बचत हो जाने से वह जालपा के लिए चन्द्रहार बनवा सकेगा। अगर पचास–साठ रुपये महीने भी बच जायं, तो पांच साल में जालपा गहनों से लद जाएगी। कौन–सा आभूषण कितने का होगा, इसका भी उसने अनुमान कर लिया था। घर पहुँचकर उसने कपड़े भी न उतारे, लथपथ जालपा के कमरे में पहुँच गया।

जालपा उसे देखते ही बोली–यह भीग कहां गए, रात कहां गायब थे?

रमानाथ–इसी नौकरी की फिक्र में पड़ा हुआ हूँ। इस वक्त दफ्तर से चला आता हूँ। म्युनिसिपैलिटी के दफ्तरमें मुझे एक जगह मिल गई।

जालपा ने उछलकर पूछा–सच! कितने की जगह है?

रमा को ठीक–ठीक बतलाने में संकोच हुआ। तीस की नौकरी बताना अपमान की बात थी। स्त्री के नजरों में तुच्छ बनना कौन चाहता है। बोला–अभी तो चालीस मिलेंगे, पर जल्द तरक्की होगी। जगह आमदनी की है।

जालपा ने उसके लिए किसी बड़े पद की कल्पना कर रक्खी थी। बोली–चालीस में क्या होगा? भला साठ–सभार तो होते!

रमानाथ–मिल तो सकती थी सौ रुपये की भी, पर यहां रौब है, और आराम है। पचास–साठ रुपये ऊपर से मिल जाएंगे।

जालपा–तो तुम घूस लोगे, गरीबों का गला काटोगे?

रमा ने हंसकर कहा–नहीं प्रिये, वह जगह ऐसी नहीं कि गरीबों का गला काटना पड़े। बड़े–बड़े महाजनों से रकमें मिलेंगी और वह खुशी से गले लगायेंगे।

मैं जिसे चाहूँ दिनभर दफ्तर में खडा रक्खूं, महाजनों का एक–एक मिनट एक–एक अशरफी के बराबर है। जल्द–से–जल्द अपना काम कराने के लिए वे खुशामद भी करेंगे, पैसे भी देंगे।

जालपा संतुष्ट हो गई, बोली–हां, तब ठीक है। गरीबों का काम यों ही कर देना।

रमानाथ–वह तो करूंगा ही।

जालपा–अभी अम्मांजी से तो नहीं कहा? जाकर कह आओ। मुझे तो सबसे बड़ी खुशी यही है कि अब मालूम होगा कि यहां मेरा भी कोई अधिकार है।

रमानाथ–हां, जाता हूँ, मगर उनसे तो मैं बीस ही बतलाऊंगा।

जालपा ने उल्लसित होकर कहा–हां जी, बल्कि पंद्रह ही कहना, ऊपर की आमदनी की तो चर्चा ही करना व्यर्थ है। भीतर का हिसाब वे ले सकते हैं। मैं सबसे पहले चन्द्रहार बनवाऊंगी।

इतने में डाकिए ने पुकारा। रमा ने दरवाजे पर जाकर देखा, तो उसके नाम एक पार्सल आया था। महाशय दीनदयाल ने भेजा था। लेकर खुश–खुश घर में आए और जालपा के हाथों में रखकर बोले–तुम्हारे घर से आया है, देखो इसमें क्या है?

रमा ने चटपट कैंची निकाली और पार्सल खोलाब उसमें देवदार की एक डिबिया निकली। उसमें एक चन्द्रहार रक्खा हुआ था। रमा ने उसे निकालकर देखा और हंसकर बोला–ईश्वर ने तुम्हारी सुन ली, चीज तो बहुत अच्छी मालूम होती हैं।

जालपा ने कुंठित स्वर में कहा–अम्मांजी को यह क्या सूझी, यह तो उन्हीं का हार है। मैं तो इसे न लूंगी। अभी डाक का वक्त हो तो लौटा दो।

रमा ने विस्मित होकर कहा–लौटाने की क्या जरूरत है, वह नाराज न होंगी?

जालपा ने नाक सिकोड़कर कहा–मेरी बला से, रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी। मैं उनकी दया के बिना भी जीती रह सकती हूँ। आज इतने दिनों के बाद उन्हें मुझ पर दया आई है। उस वक्त दया न आई थी, जब मैं उनके घर से विदा हुई थी। उनके गहने उन्हें मुबारक हों। मैं किसी का एहसान नहीं लेना चाहती। अभी उनके ओढ़ने–पहनने के दिन हैं। मैं क्यों बाधक बनूं। तुम कुशल से रहोगे, तो मुझे बहुत गहने मिल जाएंगे। मैं अम्मांजी को यह दिखाना चाहती हूँ कि जालपा तुम्हारे गहनों की भूखी नहीं है।

रमा ने संतोष देते हुए कहा–मेरी समझ में तो तुम्हें हार रख लेना चाहिए। सोचो, उन्हें कितना दु:ख होगा। विदाई के समय यदि न दिया तो, तो अच्छा ही किया। नहीं तो और गहनों के साथ यह भी चला जाता।

जालपा–मैं इसे लूंगी नहीं, यह निश्चय है।

रमानाथ–आखिर क्यों?

जालपा–मेरी इच्छा!

रमानाथ–इस इच्छा का कोई कारण भी तो होगा?

जालपा रूंधे हुए स्वर में बोली–कारण यही है कि अम्मांजी इसे खुशी से नहीं दे रही हैं, बहुत संभव है कि इसे भेजते समय वह रोई भी हों और इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि इसे वापस पाकर उन्हें सच्चा आनंद होगा। देने वाले का हृदय देखना चाहिए। प्रेम से यदि वह मुझे एक छल्ला भी दे दें, तो मैं दोनों हाथों से ले लूं। जब दिल पर जब्र करके दुनिया की लाज से या किसी के धिक्कारने से दिया, तो क्या दिया। दान भिखारिनियों को दिया जाता है। मैं किसी का दान न लूंगी, चाहे वह माता ही क्यों न हों।

माता के प्रति जालपा का यह द्वेष देखकर रमा और कुछ न कह सका। द्वेष तर्क और प्रमाण नहीं सुनता। रमा ने हार ले लिया और चारपाई से उठता हुआ बोला–जरा अम्मां और बाबू जी को तो दिखा दूं। कम–से–कम उनसे पूछ तो लेना ही चाहिए। जालपा ने हार उसके हाथ से छीन लिया और बोली–वे लोग मेरे कौन होते हैं, जो मैं उनसे पूछूं – केवल एक घर में रहने का नाता है। जब वह मुझे कुछ नहीं समझते, तो मैं भी उन्हें कुछ नहीं समझती।

यह कहते हुए उसने हार को उसी डिब्बे में रख दिया, और उस पर कपड़ा लपेटकर सीने लगी। रमा ने एक बार डरते-डरते फिर कहा-ऐसी जल्दी क्या है, दस-पांच दिन में लौटा देना। उन लोगों की भी खातिर हो जाएगी। इस पर जालपा ने कठोर नजरों से देखकर कहा-जब तक मैं इसे लौटान दूंगी, मेरे दिल को चैन न आएगा। मेरे हृदय में कांटा-सा खटकता रहेगा। अभी पार्सल तैयार हुआ जाता है, हाल ही लौटा दो। एक क्षण में पार्सल तैयार हो गया और रमा उसे लिये हुए चिंतित भाव से नीचे चला।

5

आहुति

आनन्द ने गद्देदार कुर्सी पर बैठकर सिगार जलाते हुए कहा–आज विशम्भर ने कैसी हिमाकत की! इम्तहान करीब है और आप आज वालण्टियर बन बैठे। कहीं पकड़ गये, तो इम्तहान से हाथ धोएँगे। मेरा तो खयाल है कि वजीफा भी बन्द हो जाएगा।

सामने दूसरे बेंच पर रूपमणि बैठी एक अखबार पढ़ रही थी। उसकी आँखें अखबार की तरफ थीं, पर कान आनन्द की तरफ लगे हुए थे। बोली–यह तो बुरा हुआ। तुमने समझाया नहीं? आनन्द ने मुँह बनाकर कहा–जब कोई अपने को दूसरा गाँधी समझने लगे, तो उसे समझाना मुश्किल हो जाता है। वह उलटे मुझे समझाने लगता है।

रूपमणि ने अखबार को समेटकर बालों को सँभालते हुए कहा–तुमने मुझे भी नहीं बताया, शायद मैं उसे रोक सकती।

आनन्द ने कुछ चिढ़कर कहा–तो अभी क्या हुआ, अभी तो शायद काँग्रेस आफिस ही में हो। जाकर रोक लो।

आनन्द और विशम्भर दोनों ही यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे। आनन्द के हिस्से में लक्ष्मी भी पड़ी थी, सरस्वती भी, विशम्भर फूटी तकदीर लेकर आया था। प्रोफेसरों ने दया करके एक छोटा-सा वजीफा दे दिया था। बस, यही उसकी जीविका थी। रूपमणि भी साल भर पहले उन्हीं के समकक्ष थी, पर इस साल उसने कालेज छोड़ दिया था। स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। दोनों युवक

कभी-कभी उससे मिलने आते रहते थे। आनन्द आता था। उसका हृदय लेने के लिए, विशम्भर आता था यों ही। जी पढ़ने में न लगता या घबड़ाता, तो उसके पास आ बैठता था। शायद उससे अपनी विपत्ति-कथा कहकर उसका चित्त कुछ शान्त हो जाता था। आनन्द के सामने कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। आनन्द के पास उसके लिए सहानुभूति का एक शब्द भी न था। वह उसे फटकारता था, जलील करता था और बेवकूफ बनाता था। विशम्भर में उससे बहस करने की सामर्थ्य न थी। सूर्य के सामने दीपक की हस्ती ही क्या? आनन्द का उस पर मानसिक आधिपत्य था। जीवन में पहली बार उसने उस आधिपत्य को अस्वीकार किया था। और उसी की शिकायत लेकर आनन्द रूपमणि के पास आया था। महीनों विशम्भर ने आनन्द के तर्क पर अपने भीतर के आग्रह को ढाला, पर तर्क से परास्त होकर भी उसका हृदय विद्रोह करता रहा। बेशक उसका यह साल खराब हो जाएगा। सम्भव है, छात्र-जीवन ही का अन्त हो जाए, फिर इस 14-15 वर्षों की मेहनत पर पानी फिर जाएगा न खुदा ही मिलेगा, न सनम का विसाल ही नसीब होगा। आग में कूदने से क्या फायदा। यूनिवर्सिटी में रहकर भी तो बहुत कुछ देश का काम किया जा सकता है। आनन्द महीने में कुछ-न-कुछ चन्दा जमा करा देता है, दूसरे छात्रों से स्वदेशी की प्रतिज्ञा करा ही लेता है। विशम्भर को भी आनन्द ने यही सलाह दी। इस तर्क ने उसकी बुद्धि को तो जीत लिया, पर उसके मन को न जीत सका। आज जब आनन्द कालेज गया तो विशम्भर ने स्वराज्य-भवन की राह ली। आनन्द कालेज से लौटा तो उसे अपनी मेज पर विशम्भर का पत्र मिला। लिखा था-

प्रिय आनन्द,

मैं जानता हूँ कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह मेरे लिए हितकर नहीं है, पर न जाने कौन-सी शक्ति मुझे खींचे लिये जा रही है। मैं जाना नहीं चाहता, पर जाता हूँ, उसी तरह जैसे आदमी मरना नहीं चाहता, पर मरता है, रोना नहीं चाहता, पर रोता है। जब सभी लोग, जिन पर हमारी भक्ति है, ओखली में अपना सिर डाल चुके थे, तो मेरे लिए भी अब कोई दूसरा मार्ग नहीं है। मैं अब और अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकता। यह इज्जत का सवाल है, और इज्जत किसी तरह का समझौता (compromise) नहीं कर सकती।

तुम्हारा-'विशम्भर'

खत पढकर आनन्द के जी में आया, कि विशम्भर को समझाकर लौटा लाये, पर उसकी हिमाकत पर गुस्सा आया और उसी तैश में वह रूपमणि के

पास जा पहुँचा। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती–जाकर उसे लौटा लाओ, तो शायद वह चला जाता, पर उसका यह कहना कि मैं उसे रोक लेती, उसके लिए असह्य था। उसके जवाब में रोष था, रुखाई थी।

रूपमणि ने गर्व से उसकी ओर देखा और बोली–अच्छी बात है, मैं जाती हूँ।

एक क्षण के बाद उसने डरते–डरते पूछा–तुम क्यों नहीं चलते?

फिर वही गलती। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती तो आनन्द जरूर उसके साथ चला जाता, पर उसके प्रश्न में पहले ही यह भाव छिपा था, कि आनन्द जाना नहीं चाहता। अभिमानी आनन्द इस तरह नहीं जा सकता। उसने उदासीन भाव से कहा–मेरा जाना व्यर्थ है। तुम्हारी बातों का ज्यादा असर होगा। मेरी मेज पर यह खत छोड़ गया था। जब वह आत्मा और कर्त्तव्य और आदर्श की बड़ी–बड़ी बातें सोच रहा है और अपने को भी कोई ऊँचे दरजे का आदमी समझ रहा है, तो मेरा उस पर कोई असर न होगा।

उसने जेब से पत्र निकालकर रूपमणि के सामने रख दिया। इन शब्दों में जो संकेत और व्यंग्य था, उसने एक क्षण तक रूपमणि को उसकी तरफ देखने न दिया। आनन्द के इस निर्दय प्रहार ने उसे आहत–सा कर दिया था, पर एक ही क्षण में विद्रोह की एक चिनगारी–सी उसके अन्दर जा घुसी। उसने स्वच्छन्द भाव से पत्र को लेकर पढ़ा। पढ़ा सिर्फ आनन्द के प्रहार का जवाब देने के लिए, पर पढ़ते–पढ़ते उसका चेहरा तेज से कठोर हो गया, गरदन तन गयी, आँखों में उत्सर्ग की लाली आ गयी।

उसने मेज पर पत्र रखकर कहा–नहीं, अब मेरा जाना भी व्यर्थ है।

आनन्द ने अपनी विजय पर फूलकर कहा–मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया, इस वक्त उसके सिर पर भूत सवार है, उस पर किसी के समझाने का असर न होगा। जब साल भर जेल में चक्की पीस लेंगे और वहाँ तपेदिक लेकर निकलेंगे, या पुलिस के डण्डों से सिर और हाथ–पाँव तुड़वा लेंगे, तो बुद्धि ठिकाने आवेगी। अभी तो जयजयकार और तालियों के स्वप्न देख रहे होंगे।

रूपमणि सामने आकाश की ओर देख रही थी। नीले आकाश में एक छायाचित्र–सा नजर आ रहा था–दुर्बल, सूखा हुआ नग्न शरीर, घुटनों तक धोती, चिकना सिर, पोपला मुँह, तप, त्याग और सत्य की सजीव मूर्ति।

आनन्द ने फिर कहा–अगर मुझे मालूम हो, कि मेरे रक्त से देश का उद्धार हो जाएगा, तो मैं आज उसे देने को तैयार हूँ, लेकिन मेरे जैसे सौ–पचास आदमी

निकल ही आएँ, तो क्या होगा? प्राण देने के सिवा और तो कोई प्रत्यक्ष फल नहीं दीखता।

रूपमणि अब भी वही छायाचित्र देख रही थी। वही छाया मुस्करा रही थी, सरल मनोहर मुस्कान, जिसने विश्व को जीत लिया है।

आनन्द फिर बोला–जिन महाशयों को परीक्षा का भूत सताया करता है, उन्हें देश का उद्धार करने की सूझती हैं। पूछिए, आप अपना उद्धार तो कर ही नहीं सकते, देश का क्या उद्धार कीजिएगा? इधर फेल होने से उधर के डण्डे फिर भी हलके हैं।

रूपमणि की आँखें आकाश की ओर थीं। छायाचित्र कठोर हो गया था।

आनन्द ने जैसे चौंककर कहा–हाँ, आज बड़ी मजेदार फिल्म है। चलती हो? पहले शो में लौट आएँ।

रूपमणि ने जैसे आकाश से नीचे उतरकर कहा–नहीं, मेरा जी नहीं चाहता।

आनन्द ने धीरे से उसका हाथ पकडकर कहा–तबीयत तो अच्छी है? रूपमणि ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा न की। बोली–हाँ, तबीयत में हुआ क्या है?

'तो चलती क्यों नहीं? '

'आज जी नहीं चाहता।'

'तो फिर मैं भी न जाऊँगा।'

'बहुत ही उत्तम, टिकट के रुपये काँग्रेस को दे दो।'

'यह तो टेढ़ी शर्त है, लेकिन मंजूर!'

'कल रसीद मुझे दिखा देना।'

'तुम्हें मुझ पर इतना विश्वास नहीं?'

आनन्द होस्टल चला। जरा देर बाद रूपमणि स्वराज्य–भवन की ओर चली।

2

रूपमणि स्वराज्य–भवन पहुँची, तो स्वयंसेवकों का एक दल विलायती कपड़े के गोदामों को पिकेट करने जा रहा था। विशम्भर दल में न था।

दूसरा दल शराब की दूकानों पर जाने को तैयार खड़ा था। विशम्भर इसमें भी न था।

रूपमणि ने मन्त्री के पास आकर कहा–आप बता सकते हैं, विशम्भर नाथ कहाँ हैं?

मन्त्री ने पूछा–वही, जो आज भरती हुए हैं?

'जी हाँ, वही।'

'बड़ा दिलेर आदमी है। देहातों को तैयार करने का काम लिया है। स्टेशन पहुँच गया होगा। सात बजे की गाड़ी से जा रहा है।'

'तो अभी स्टेशन पर होंगे।'

मन्त्री ने घड़ी पर नजर डालकर जवाब दिया–हाँ, अभी तो शायद स्टेशन पर मिल जाएँ।

रूपमणि ने बाहर निकलकर साइकिल तेज की। स्टेशन पर पहुँची, तो देखा, विशम्भर प्लेटफार्म पर खड़ा है।

रूपमणि को देखते ही लपककर उसके पास आया और बोला–तुम यहाँ कैसे आयी। आज आनन्द से तुम्हारी मुलाकात हुई थी?

रूपमणि ने उसे सिर से पाँव तक देखकर कहा–यह तुमने क्या सूरत बना रखी है? क्या पाँव में जूता पहनना भी देशद्रोह है?

विशम्भर ने डरते-डरते पूछा–आनन्द बाबू ने तुमसे कुछ कहा नहीं?

रूपमणि ने स्वर को कठोर बनाकर कहा–जी हाँ, कहा। तुम्हें यह क्या सूझी? दो साल से कम के लिए न जाओगे!

विशम्भर का मुँह गिर गया। बोला–जब यह जानती हो, तो क्या तुम्हारे पास मेरी हिम्मत बाँधने के लिए दो शब्द नहीं हैं?

रूपमणि का हृदय मसोस उठा, मगर बाहरी उपेक्षा को न त्याग सकी। बोली–तुम मुझे दुश्मन समझते हो, या दोस्त।

विशम्भर ने आँखों में आँसू भरकर कहा–तुम ऐसा प्रश्न क्यों करती हो रूपमणि? इसका जवाब मेरे मुँह से न सुनकर भी क्या तुम नहीं समझ सकतीं?

रूपमणि–तो मैं कहती हूँ, तुम मत जाओ।

विशम्भर–यह दोस्त की सलाह नहीं है रूपमणि! मुझे विश्वास है, तुम हृदय से यह नहीं कह रही हो। मेरे प्राणों का क्या मूल्य है, जरा यह सोचो। एम. ए. होकर भी सौ रुपये की नौकरी। बहुत बढ़ा तो तीन-चार सौ तक जाऊँगा। इसके बदले यहाँ क्या मिलेगा, जानती हो? सम्पूर्ण देश का स्वराज्य। इतने महान् उद्दश्ये हेतु मर जाना भी उस जिन्दगी से कहीं बढकर है। अब जाओ, गाड़ी आ रही है। आनन्द बाबू से कहना, मुझसे नाराज न हों।

रूपमणि ने आज तक इस मन्दबुद्धि युवक पर दया की थी। इस समय उसकी श्रद्धा का पात्र बन गया। त्याग में हृदय को खींचने की जो शक्ति है, उसने रूपमणि को इतने वेग से खींचा कि परिस्थितियों का अन्तर मिट-सा गया। विशम्भर में जितने दोष थे, वे सभी अलंकार बन-बनकर चमक उठे। उसके हृदय की विशालता में वह किसी पक्षी की भाँति उड़-उडकर आश्रय खोजने लगी।

रूपमणि ने उसकी ओर आतुर नेत्रों से देखकर कहा–मुझे भी अपने साथ लेते चलो।

विशम्भर पर जैसे घड़ों का नशा चढ़ गया।

'तुमको? आनन्द बाबू मुझे जिन्दा न छोड़ेंगे!'

'मैं आनन्द के हाथों बिकी नहीं हूँ!'

'आनन्द तो तुम्हारे हाथों बिके हुए हैं? '

रूपमणि ने विद्रोह भरी आँखों से उसकी ओर देखा, पर कुछ बोली नहीं। परिस्थितियाँ उसे इस समय बाधाओं–सी मालूम हो रही थीं। वह भी विशम्भर की भाँति स्वछन्द क्यों न हुई? सम्पन्न माँ–बाप की अकेली लड़की, भोग–विलास में पली हुई, इस समय अपने को कैदी समझ रही थी। उसकी आत्मा उन बन्धनों को तोड़ डालने के लिए जोर लगाने लगी।

गाड़ी आ गयी। मुसाफिर चढ़ने–उतरने लगे। रूपमणि ने सजल नेत्रों से कहा–तुम मुझे नहीं ले चलोगे?

विशम्भर ने दृढ़ता से कहा–नहीं।

'क्यों? '

'मैं इसका जवाब नहीं देना चाहता!'

'क्या तुम समझते हो, मैं इतनी विलासासक्त हूँ कि मैं देहात में रह नहीं सकती? '

विशम्भर लज्जित हो गया। यह भी एक बड़ा कारण था, पर उसने इनकार किया–नहीं, यह बात नहीं।

'फिर क्या बात है? क्या यह भय है, पिताजी मुझे त्याग देंगे? '

'अगर यह भय हो तो क्या वह विचार करने योग्य नहीं? '

'मैं उनकी तृण बराबर परवा नहीं करती।'

विशम्भर ने देखा, रूपमणि के चाँद–से मुख पर गर्वमय संकल्प का आभास था। वह उस संकल्प के सामने जैसे काँप उठा। बोला–मेरी यह याचना स्वीकर करो, रूपमणि, मैं तुमसे विनती करता हूँ।

रूपमणि सोचती रही।

विशम्भर ने फिर कहा–मेरी खातिर तुम्हें यह विचार छोडना पड़ेगा।

रूपमणि ने सिर झुकाकर कहा–अगर तुम्हारा यह आदेश है, तो मैं मानूँगी विशम्भर! तुम दिल से समझते हो, मैं क्षणिक आवेश में आकर इस समय अपने भविष्य को गारत करने जा रही हूँ। मैं तुम्हें दिखा दूँगी, यह मेरा क्षणिक आवेश

नहीं है, दृढ़ संकल्प है। जाओ, मगर मेरी इतनी बात मानना कि कानून के पंजे में उसी वक्त आना, जब आत्माभिमान या सिद्धान्त पर चोट लगती हो। मैं ईश्वर से तुम्हारे लिए प्रार्थना करती रहूँगी।

गाड़ी ने सीटी दी। विशम्भर अन्दर जा बैठा। गाड़ी चली, रूपमणि मानो विश्व की सम्पत्ति अंचल में लिये खड़ी रही।

3

रूपमणि के पास विशम्भर का एक पुराना रद्दी-सा फोटो आल्मारी के एक कोने में पड़ा हुआ था। आज स्टेशन से आकर उसने उसे निकाला और उसे एक मखमली फ्रेम में लगाकर मेज पर रख दिया। आनन्द का फोटो वहाँ से हटा दिया गया।

विशम्भर ने छुट्टियों में उसे दो-चार पत्र लिखे थे। रूपमणि ने उन्हें पढकर एक किनारे डाल दिये थे। आज उसने उन पत्रों को निकाला और उन्हें दोबारा पढ़ा। उन पत्रों में आज कितना रस था। वह बड़ी हिफाजत से राइटिंग-बाक्स में बन्द कर दिये गये।

दूसरे दिन समाचारपत्र आया तो रूपमणि उस पर टूट पड़ी। विशम्भर का नाम देखकर वह गर्व से फूल उठी।

दिन में एक बार स्वराज्य-भवन जाना उनका नियम हो गया। जलसों में भी बराबर शरीक होती, विलास की चीजें एक-एक करके सब फेंक दी गयीं। रेशमी साड़ियों की जगह गाढ़े की साड़ियाँ आयीं। चरखा भी आया। वह घण्टों बैठी सूत काता करती। उसका सूत दिन-दिन बारीक होता जाता था। इसी सूत से वह विशम्भर के कुरते बनवाएगी।

इन दिनों परीक्षा की तैयारियाँ थीं। आनन्द को सिर उठाने की फुरसत न मिलती। दो-एक बार वह रूपमणि के पास आया, पर ज्यादा देर बैठा नहीं शायद रूपमणि की शिथिलता ने उसे ज्यादा बैठने ही न दिया।

एक महीना बीत गया।

एक दिन शाम आनन्द आया। रूपमणि स्वराज्य-भवन जाने को तैयार थी। आनन्द ने भवें सिकोड़कर कहा-तुमसे तो अब बातें भी मुश्किल हैं।

रूपमणि ने कुर्सी पर बैठकर कहा-तुम्हें भी तो किताबों से छुट्टी नहीं मिलती। आज की कुछ ताजी खबर नहीं मिली। स्वराज्य-भवन में रोज-रोज का हाल मालूम हो जाता है।

आनन्द ने दार्शनिक उदासीनता से कहा–विशम्भर ने तो सुना, देहातों में खूब शोरगुल मचा रखा है, जो काम उसके लायक था, वह मिल गया। यहाँ उसकी जबान बन्द रहती थी। वहाँ देहातियों में खूब गरजता होगा, मगर आदमी दिलेर है।

रूपमणि ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जो कह रही थीं, तुम्हारे लिए यह चर्चा अनधिकार चेष्टा है, और बोली–आदमी में अगर यह गुण है तो फिर उसके सारे अवगुण मिट जाते हैं। तुम्हें काँग्रेस बुलेटिन पढ़ने की क्यों फुरसत मिलती होगी। विशम्भर ने देहातों में ऐसी जागृति फैला दी है कि विलायती का एक सूत भी नहीं बिकने पाता और न नशे की दूकानों पर कोई जाता है। और मजा यह है कि पिकेटिंग करने की जरूरत नहीं पड़ती। अब तो पंचायतें खोल रहे हैं।

आनन्द ने उपेक्षा भाव से कहा–तो समझ लो, अब उनके चलने के दिन भी आ गये हैं।

रूपमणि ने जोश से कहा–इतना करके जाना बहुत सस्ता नहीं है। कल तो किसानों का एक बहुत बड़ा जलसा होने वाला था। पूरे परगने के लोग जमा हुए होंगे। सुना है, आजकल देहातों से कोई मुकदमा ही नहीं आता। वकीलों की नानी मरी जा रही है।

आनन्द ने कड़वेपन से कहा–यही तो स्वराज्य का मजा है कि जमींदार, वकील और व्यापारी सब मरें। बस, केवल मजदूर और किसान रह जाएँ।

रूपमणि ने समझ लिया, आज आनन्द तुलकर आया है। उसने भी जैसे आस्तीन चढ़ाते हुए कहा–तो तुम क्या चाहते हो कि जमींदार और वकील और व्यापारी गरीबों को चूस–चूसकर मोटे होते जाएँ और जिन सामाजिक व्यवस्थाओं में ऐसा महान् अन्याय हो रहा है, उनके खिलाफ जबान तक न खोली जाए? तुम तो समाजशास्त्र के पण्डित हो। क्या किसी अर्थ में यह व्यवस्था आदर्श कही जा सकती हैं? सभ्यता के तीन मुख्य सिद्धान्तों का ऐसी दशा में किसी न्यूनतम मात्रा में भी व्यवहार हो सकता है?

आनन्द ने गर्म होकर कहा–शिक्षा और सम्पत्ति का प्रभुत्व हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा। हाँ, उसका रूप भले ही बदल जाए।

रूपमणि ने आवेश से कहा–अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा–लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अंग्रेजी महाजनों की धनलोलुपता और शिक्षितों

का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं? कम-से-कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाएँ। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ कम-से-कम विषमता को आश्रय न मिल सके।

आनन्द-यह तुम्हारी निज की कल्पना होगी।

रूपमणि-तुमने अभी इस आन्दोलन का साहित्य पढ़ा ही नहीं।

आनन्द-न पढ़ा है, न पढ़ना चाहता हूँ।

रूपमणि-इससे राष्ट्र की कोई बड़ी हानि न होगी।

आनन्द-तुम तो जैसे वह रही ही नहीं। बिलकुल काया-पलट हो गयी।

सहसा डाकिए ने काँग्रेस बुलेटिन लाकर मेज पर रख दिया। रूपमणि ने अधीर होकर उसे खोला। पहले शीर्षक पर नजर पड़ते ही उसकी आँखों में जैसे नशा छा गया। अज्ञात रूप से गर्दन तन गयी और चेहरा एक अलौकिक तेज से दमक उठा।

उसने आवेश में खड़ी होकर कहा-विशम्भर पकड़ लिए गये और दो साल की सजा हो गयी।

आनन्द ने विरक्त मन से पूछा-किस मुआमले में सजा हुई?

रूपमणि ने विशम्भर के फोटो को अभिमान की आँखों से देखकर कहा-रानीगंज में किसानों की विराट् सभा थी। वहीं पकड़ा है।

आनन्द-मैंने तो पहले ही कहा था, दो साल के लिए जाएँगे। जिन्दगी खराब कर डाली।

रूपमणि ने फटकार बतायी-क्या डिग्री ले लेने से ही आदमी का जीवन सफल हो जाता है? सारा ज्ञान, सारा अनुभव पुस्तकों ही में भरा हुआ है। मैं समझती हूँ, संसार और मानवी चरित्र का जितना अनुभव विशम्भर को दो सालों में हो जाएगा, उतना दर्शन और कानून की पोथियों से तुम्हें दो सौ वर्षों में भी न होगा। अगर शिक्षा का उद्देश्य चरित्रबल मानो, तो राष्ट्र-संग्राम में मनोबल के जितने साधन हैं, पेट के संग्राम में कभी हो ही नहीं सकते। तुम यह कह सकते हो कि हमारे लिए पेट की चिन्ता ही बहुत है, हमसे और कुछ हो ही नहीं सकता, हममें न उतना साहस है, न बल है, न धैर्य है, न संगठन, तो मैं मान जाऊँगी, लेकिन जातिहित के लिए प्राण देने वालों को बेवकूफ बनाना मुझसे नहीं सहा जा सकता। विशम्भर के इशारे पर आज लाखों आदमी सीना खोलकर खड़े हो

जाएँगे। तुममें है जनता के सामने खड़े होने का हौसला? जिन लोगों ने तुम्हें पैरों के नीचे कुचल रखा है, जो तुम्हें कुत्तों से भी नीचे समझते हैं, उन्हीं की गुलामी करने के लिए तुम डिग्रियों पर जान दे रहे हो। तुम इसे अपने लिए गौरव की बात समझो, मैं नहीं समझती।

आनन्द तिलमिला उठा। बोला–तुम तो पक्की क्रान्तिकारिणी हो गयीं इस वक्त।

रूपमणि ने उसी आवेश में कहा–अगर सच्ची–खरी बातों में तुम्हें क्रान्ति की गन्ध मिले, तो मेरा दोष नहीं।

'आज विशम्भर को बधाई देने के लिए जलसा जरूर होगा। क्या तुम उसमें जाओगी? '

रूपमणि ने उग्रभाव से कहा–जरूर जाऊँगी, बोलूँगी भी, और कल रानीगंज भी चली जाऊँगी। विशम्भर ने जो दीपक जलाया है, वह मेरे जीते–जी बुझने न पाएगा।

आनन्द ने डूबते हुए आदमी की तरह तिनके का सहारा लिया–अपनी अम्माँ और दादा से पूछ लिया है?

'पूछ लूँगी!'

'और वह तुम्हें अनुमति भी दे देंगे?'

'सिद्धान्त के विषय में अपनी आत्मा का आदेश सर्वोपरि होता है।'

'अच्छा, यह नयी बात मालूम हुई।'

यह कहता हुआ आनन्द उठ खड़ा हुआ और बिना हाथ मिलाये कमरे के बाहर निकल गया। उसके पैर इस तरह लडखड़ा रहे थे, कि अब गिरा, अब गिरा।

6

एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न

आज रात्रि को पर्यंक पर जाते ही अचानक आँख लग गई। सोते में सोचता क्या हूँ कि इस चलायमान शरीर का कुछ ठीक नहीं। इस संसार में नाम स्थिर रहने की कोई युक्ति निकल आवे तो अच्छा है, क्योंकि यहाँ की रीति देख मुझे पूरा विश्वास होता है कि इस चपल जीवन का क्षण भर का भरोसा नहीं। ऐसा कहा भी है –

स्वाँस स्वाँस पर हरि भजो वृथा स्वाँस मति खोय।
ना जाने या स्वाँस को आवन होय न होय।।

देखो समय-सागर में एक दिन सब संसार अवश्य मस्त हो जायगा। काल-वश शशि-सूर्य भी नष्ट हो जाएँगे। आकाश में तारे भी कुछ काल पीछे दृष्टि न आवेंगे। केवल कीर्ति-कमल संसार-सरवर में रहे व न रहे, और सब तो एक न एक दिन तप्त तवे की बूँद हुए बैठे हैं। इस हेतु बहुत काल तक सोच-समझ प्रथम यह विचारा कि कोई देवालय बनाकर छोड़ जाऊँ, परंतु थोड़ी ही देर में समझ में आ गया कि इन दिनों की सभ्यता के अनुसार इससे बड़ी कोई मूर्खता नहीं और वह तो मुझे भली भाँति मालूम है कि यह अँगरेजी शिक्षा रही तो मंदिर की ओर मुख फेरकर भी कोई न देखेगा। इस कारण इस विचार का परित्याग करना पड़ा। फिर पड़े-पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परंतु इस विचार में बड़े काँटे निकले। क्योंकि बनाने की देर न होगी कि कीट 'क्रिटिक' काटकर आधी से अधिक निगल जाएँगे। यश के स्थान, शुद्ध अपयश प्राप्त होगा। जब देखा

कि अब टूटे-फूटे विचार से काम न चलेगा, तब लाड़िली नींद को दो रात पड़ोसियों के घर भेज आँख बंद कर शंभु की समाधि लगा गया, यहाँ तक कि इकसठ वा इक्यावन वर्ष उसी ध्यान में बीत गए। अंत में एक मित्र के बल से अति उत्तम बात की पूँछ हाथ में पड़ गई। स्वप्न ही में प्रभात होते ही पाठशाला बनाने का विचार दृढ़ किया। परंतु जब थैली में हाथ डाला, तो केवल ग्यारह गाड़ी ही मुहरें निकलीं। आप जानते हैं इतने में मेरी अपूर्व पाठशाला का एक कोना भी नहीं बन सकता था। निदान अपने इष्ट-मित्रों की भी सहायता लेनी पड़ी। ईश्वर को कोटि धन्यवाद देता हूँ जिसने हमारी ऐसी सुनी। यदि ईंटों के ठौर मुहर चिनवा लेते तब भी तो दस-पाँच रेल रुपये और खर्च करने पड़ते। होते-होते सब हरि-कृपा से बनकर ठीक हुआ। इसमें जितना समस्त व्यय हुआ वह तो मुझे स्मरण नहीं है, परंतु इतना अपने मुंशी से मैंने सुना था कि एक का अंक और तीन सौ सत्तासी शून्य अकेले पानी में पड़े थे। बनने को तो एक क्षण में सब बन गया था, परंतु उसके काम जोड़ने में पूरे पैंतीस वर्ष लगे। जब हमारी अपूर्व पाठशाला बनकर ठीक हुई, उसी दिन हमने हिमालय की कंदराओं में से खोज-खोजकर अनेक उद्दंड पंडित बुलवाए, जिनकी संख्या पौन दशमलव से अधिक नहीं है। इस पाठशाला में अगणित अध्यापक नियत किए गए परंतु मुख्य केवल ये हैं - पंडित मुग्धमणि शास्त्री तर्कवाचस्पति, प्रथम अध्यापक। पाखंडप्रिय धर्माधिकारी अध्यापक धर्मशास्त्र। प्राणांतकप्रसाद वैद्यराज, अध्यापक वैद्यक-शास्त्र। लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण, अध्यापक ज्योतिषशास्त्र। शीलदानानल नीति-दर्पण, अध्यापक आत्मविद्या।

इन पूर्वोक्त पंडितों के आ जाने पर अर्धरात्रि गए पाठशाला खोलने बैठे। उस समय सब इष्ट-मित्रों के सन्मुख उस परमेश्वर को कोटि धन्यवाद दिया, जो संसार को बनाकर क्षण-भर में नष्ट कर देता है और जिसने विद्या, शील, बल के सिवाय मान, मूर्खता, परद्रोह, परनिंदा आदि परम गुणों से इस संसार को विभूषित किया है। हम कोटि धन्यवादपूर्वक आज इस सभा के सन्मुख अपने स्वार्थरत चित्त की प्रशंसा करते हैं जिसके प्रभाव से ऐसे उत्तम विद्यालय की नींव पड़ी। उस ईश्वर को ही अंगीकार था कि हमारा इस पृथ्वी पर कुछ नाम रहे, नहीं तो जब द्रव्य की खोज में समुद्र में डूबते-डूबते बचे थे तब कौन जानता था कि हमारी कपोलकल्पना सत्य हो जायगी। परंतु ईश्वर के अनुग्रह से हमारे सब संकट दूर हुए और अंत समय, हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई। हम अपने इष्ट-मित्रों की सहायता को कभी न भूलेंगे कि जिनकी कृपा से इतना द्रव्य आया

कि पाठशाला का सब खर्च चल गया, और दस-पाँच पीढ़ी तक हमारी संतान के लिए बच रहा। हमारे पुत्र-परिवार के लोग चैन से हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। हे सज्जनो, यह तुम्हारी कृपा का विस्तार है कि तन-मन से आप इस धर्म-कार्य में प्रवृत्त हुए नहीं मैं दो हाथ-पैरवाला बेचारा मनुष्य आपके आगे कौन कीड़ा था जो ऐसे दुष्कर कर्म को कर लेता, यहाँ तो केवल घर की मूँछें ही मूँछें थीं। कुछ मेह कुछ गंगाजल, काज आपकी कृपा से भली भाँति हो गया। मैं आज के दिन को नित्यता का प्रथम दिन मानता हूँ जो औरों को अनेक साधन से भी मिलना दुर्लभ है। धन्य है उस परमात्मा को जिसने आज हमारे यश के डहडहे अंकुर फिर हरे किए। हे सुजन शुभचिंतको! संसार में पाठशाला अनेक हुई होंगी! परंतु हरि-कृपा से जो आप लोगों की सकलपूर्ण कामधेनु यह पाठशाला है वैसी अचरज नहीं कि आपने इस जन्म में न देखी सुनी हो। होनहार बलवान है, नहीं कलिकाल में ऐसी पाठशाला का बनाना कठिन था। देखिए यह हम लोगों के भाग्य का उदय है कि ये महामुनि मुग्धमणि शास्त्री बिना प्रयास हाथ लग गए, जिनको सतयुग के आदि में इंद्र अपनी पाठशाला के निमित्त समुद्र और वन जंगलों में खोजता फिरा, अंत में हार मान वृहस्पति को रखना पड़ा। हम फिर भी कहते हैं कि यह हमारे भाग्य ही की महिमा थी कि वे ही पंडितराज मृगयाशील श्वान के मुख में शश के धोके बद्रिकाश्रम की एक कंदरा में पड़ गए। इनकी बुद्धि और विद्या की प्रशंसा करते दिन में सरस्वती भी लजाती हैं। इसमें संदेह नहीं कि इनके थोड़े ही परिश्रम से पंडित मूर्ख और अबोध पंडित हो जाएँगे। हे मित्र! मेरे निकट जो महाशय बैठे हैं इनका नाम पंडित पाखंडप्रिय है। किसी समय इस देश में इनकी बड़ी मानता थी। सब स्त्री-पुरुषों को इन्होंने मोह रखा था। परंतु अब कालचक्र के मारे अँगरेजी पढ़े हिंदुस्थानियों ने इनकी बड़ी दुर्दशा की। इस कारण प्राण बचाकर हिमालय की तराई में हरित दूर्वा-पर संतोष कर अपना कालक्षेप करते थे। विपत्ति ईश्वर किसी पर न डाले। जब तक इनका राज था दृष्टि बचाकर भोग लगाया करते थे। कहाँ अब श्वान श्रृगाल के संग दिन काटने पड़े, परंतु फिर भी इनकी बुद्धि पर पूरा विश्वास है कि एक कार्तिक मास भी इनको लोग स्थिर रह जाने देंगे तो हरिकृपा से समस्त नवीन धर्मों पर चार-पाँच दिन में पानी फेर देंगे।

इनसे भिन्न पंडित प्राणांतकप्रसाद भी प्रशंसनीय पुरुष हैं। जब तक इस घट में प्राण हैं तब तक न किसी पर इनकी प्रशंसा बन पड़ी न बन पड़ेगी। ये महावैद्य के नाम से इस समस्त संसार में विख्यात हैं। चिकित्सा में ऐसे कुशल हैं कि चिता

पर चढ़ते-चढ़ते रोगी इनके उपकार का गुण नहीं भूलता। कितना ही रोग से पीड़ित क्यों न हो क्षण भर में स्वर्ग के सुख को प्राप्त होता है। जब तक औषधि नहीं देते केवल उसी समय तक प्राणों को संसारी व्यथा लगी रहती हैं। आप लोग कुछ काल की अपेक्षा कीजिए इनकी चिकित्सा और चतुराई अपने-आप प्रकट हो जायगी। यद्यपि आपके अमूल्य समय में बाधा हुई, परंतु यह भी स्वदेश की भलाई का काम था, इस हेतु आप आतुर न हूजिए और शेष अध्यापकों की अमृतमय जीवन-कहानी श्रवण कीजिए।

ये लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण बड़े उद्दंड पंडित हैं। ज्योतिष-विद्या में अति कुशल हैं। कुछ नवीन तारे भी गगन में जाकर ये ढूँढ़ आए हैं और कितने ही नवीन ग्रंथों की रचना कर डाली है। उनमें से 'तामिस्त्रमकरालय' प्रसिद्ध और प्रशंसनीय है। यद्यपि इनको विशेष दृष्टि नहीं आता, परंतु तारे इनकी आँखों में भली-भाँति बैठ गए हैं।

रहे पंडित शीलदावानल नीतिदर्पण। इनके गुण अपार हैं। समय थोड़ा है, इस हेतु थोड़ा-सा आप लोगों के आगे इनका वर्णन किया जाता है। ये महाशय बालब्रह्मचारी हैं। अपनी आयु भर नीतिशास्त्र पढ़ते-पढ़ाते रहे हैं। इनसे नीति तो बहुत से महात्माओं ने पढ़ी थी, परंतु वेणु, बाणासुर, रावण, दुर्योधन, शिशुपाल, कंस आदि इनके मुख्य शिष्य थे। और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अँगरेजी न्यायकर्ता भी इनकी अनुमति लेकर आगे बढ़ते हैं। हम अपने भाग्य की कहाँ तक सराहना करें! ऐसा तो संयोग इस संसार में परम दुर्लभ है। अब आप सब सज्जनों से यही प्रार्थना है कि आप अपने-अपने लड़कों को भेजें और व्यय आदि की कुछ चिंता न करें, क्योंकि प्रथम तो हम किसी अध्यापक को मासिक देंगे नहीं और दिया भी तो अभी दस-पाँच वर्ष पीछे देखा जायगा। यदि हमको भोजन की श्रद्धा हुई तो भोजन का बँधान बाँध देंगे, नहीं यह नियत कर देंगे कि जो पाठशाला संबंधी द्रव्य हो उसका वे सब मिलकर नास लिया करें। अब रहे केवल पाठशाला के नियत किए हुए नियम सो आपको जल्दी-जल्दी सुनाए देता हूँ। शेष स्त्री-शिक्षा का जो विचार था, वह आज रात को हम घर पूछ लें तब कहेंगे।

नियमावली

1. नाम इस पाठशाला का 'गगनगत अविद्यावरुणालय' होगा।
2. इसमें केवल वंध्या और विधवा के पुत्र पढ़ने पावेंगे।

3. डेढ़ दिन से अधिक और पौने अट्ठानबे से कमती आयु के विद्यार्थी भीतर न आने पावेंगे।
4. सेर भर सुँघनी अर्थात् हुलास से तीन सेर तक कक्षानुसार फीस देनी पड़ेगी।
5. दो मिनट बारह बजे रात से पूरे पाँच बजे तक पाठशाला होगी।
6. प्रत्येक उजाली या अमावस्या को भरती हुआ करेगी।
7. पहले पक्ष में स्त्री और दूसरे पक्ष में बालक शिक्षा पावेंगे।
8. परीक्षा प्रतिमास होगी, परंतु द्वितीया द्वादशी की संधि में हुआ करेगी।
9. वार्षिक परीक्षा ग्रीष्म ऋतु, माघ मास में होगी। उनमें जो पूरे उतरेंगे वे उच्च पद के भागी होंगे।
10. इस पाठशाला में प्रथम पाँच कक्षा होंगी और प्रत्येक ऋतु के अंत में परीक्षा लेकर नीचेवाले ऊपर की कक्षा में भर लिए जायँगे।
11. प्रतिपदा और अष्टमी भिन्न, एक अमावस्या को स्कूल और खुलेगा, शेष सब दिन बंद रहेगा।
12. किसी को काम के लिए छुट्टी न मिलेगी, और परोक्ष होने में पाँच मिनट में दो बार नाम कटेगा।
13. कुछ भी अपराध करने पर चाहे कितना भी तुच्छ हो 'इंडियन पिनल कोड' अर्थात् ताजीरात हिंद के अनुसार दंड दिया जायगा।
14. मुहर्रम में एक साल पाठशाला बंद रहेगी।
15. मलमास में अनध्याय के कारण नृत्य और संगीत की शिक्षा दी जायगी।
16. छल, निंदा, द्रोह, मोह आदि भवसागर के चतुर्दश कोटि रत्न घोलकर पिलाए जाया करेंगे।
17. इसका प्रबंध धूर्तवंशावतंस नाम जगतविदित महाशय करेंगे।

नीचे लिखी हुई पुस्तकें पढ़ाई जाएँगी–

व्याकरण – मुग्धमंजरी, शब्दसंहार, अज्ञानचंद्रिका।

धर्मशास्त्र – वंचकवृत्तिरत्नाकर, पाखंडविडंबन, अधर्म-सेतु।

वैद्यक – मृत्युचिंतामणि, मनुष्यधनहरण, कालकुठार।

ज्योतिष – मुहूर्तमिथ्यावली, मूर्खाभरण, गणितगर्वांकुर।

नीतिशास्त्र – नष्टनीतिदीप, अनीतिशतक, धूर्तपंचाशिका।

इन दिनों की सभ्यता के मूल ग्रंथ – असत्यसंहिता, दुष्टचरितामृत, भ्रष्ट-भास्कर।

कोश – कुशब्दकल्पत:, शून्यसागर।

नवीन नाटक – स्वार्थसंग्रह, कृतनकुलमंडन।

अब जिस किसी को हमारी पाठशाला में पढ़ना अंगीकार हो, यह समाचार सुनने के प्रथम, तार में खबर दें। नाम उसका किताब में लिख लेंगे, पढ़ने आओ चाहे मत आओ।

7

परीक्षा गुरु (हिन्दी का प्रथम उपन्यास)

लाला श्रीनिवास कुशल महाजन और व्यापारी थे। अपने उपन्यास में उन्होंने मदनमोहन नामक एक रईस के पतन और फिर सुधार की कहानी सुनाई है। मदनमोहन एक समृद्ध वैश्व परिवार में पैदा होता है, पर बचपन में अच्छी शिक्षा और उचित मार्गदर्शन न मिलने के कारण और युवावस्था में गलत संगति में पड़कर अपनी सारी दौलत खो बैठता है। न ही उसे आदमी की ही परख है। वह अपने सच्चे हितैषी ब्रजकिशोर को अपने से दूर करके चुन्नीलाल, शंभूदयाल, बैजनाथ और पुरुषोत्तम दास जैसे कपटी, लालची, मौका परस्त, खुशामदी 'दोस्तों' से अपने आपको घिरा रखता है। बहुत जल्द इनकी गलत सलाहों के चक्कर में मदनमोहन भारी कर्ज में भी डूब जाता है और कर्ज समय पर अदा न कर पाने से उसे अल्प समय के लिए कारावास भी हो जाता है।

इस कठिन स्थिति में उसका सच्चा मित्र ब्रजकिशोर, जो एक वकील है, उसकी मदद करता है और उसकी खोई हुई संपत्ति उसे वापस दिलाता है। इतना ही नहीं, मदनमोहन को सही उपदेश देकर उसे अपनी गलतियों का एहसास भी कराता है।

भाषा-शैली

उपन्यास 41 छोटे-छोटे प्रकरणों में विभक्त है। कथा तेजी से आगे बढ़ती हैं और अंत तक रोचकता बनी रहती हैं। पूरा उपन्यास नीतिपरक और उपदेशात्मक है। उसमें जगह-जगह इंग्लैंड और यूनान के इतिहास से दृष्टांत दिए गए हैं। ये दृष्टांत मुख्यत: ब्रजकिशोर के कथनों में आते हैं। इनसे उपन्यास के ये स्थल आजकल के पाठकों को बोझिल लगते हैं। उपन्यास में बीच-बीच में संस्कृत, हिंदी, फारसी के ग्रंथों के ढेर सारे उद्धरण भी ब्रज भाषा में काव्यानुवाद के रूप में दिए गए हैं। हर प्रकरण के प्रारंभ में भी ऐसा एक उद्धरण है। उन दिनों काव्य और गद्य की भाषा अलग-अलग थी। काव्य के लिए ब्रज भाषा का प्रयोग होता था और गद्य के लिए खड़ी बोली का। लेखक ने इसी परिपाटी का अनुसरण करते हुए उपन्यास के काव्यांशों के लिए ब्रज भाषा चुना है।

उपन्यास की भाषा हिंदी के प्रारंभिक गद्य का अच्छा नमूना है। उसमें संस्कृत और फारसी के कठिन शब्दों से यथा संभव बचा गया है। सरल, बोलचाल की (दिल्ली के आस-पास की) भाषा में कथा सुनाई गई है। इसके बावजूद पुस्तक की भाषा गरिमायुक्त और अभिव्यंजनापूर्ण है। वर्तनी के मामले में लेखक ने बोलचाल की पद्धति अपनाई है। कई शब्दों को अनुनासिक बनाकर या मिलाकर लिखा है, जैसे, रोने, करने, पढ़ने, आदि, तथा, उस्समय, कित्ने, उन्की, आदि। "में" के लिए "मैं", "से" के लिए "सैं", जैसे प्रयोग भी इसमें मिलते हैं। कुछ अन्य वर्तनी दोष भी देखे जा सकते हैं, जैसे, समझदार के लिए समझवार, विवश के लिए बिबश। पर यह देखते हुए कि यह उपन्यास उस समय का है जब हिंदी गद्य स्थिर हो ही रहा था, उपन्यास की भाषा काफी सशक्त ही मानी जाएगी।

8

बाणभट्ट की आत्मकथा

बाणभट्ट की आत्मकथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित एक ऐतिहासिक हिन्दी उपन्यास है। इसमें तीन प्रमुख पात्र हैं- बाणभट्ट, भट्टिनी तथा निपुणिका। इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन वर्ष 1946 में राजकमल प्रकाशन ने किया था। इसका नवीन प्रकाशन 1 सितम्बर 2010 को किया गया था। यह उपन्यास आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की विपुल रचना-सामर्थ्य का रहस्य उनके विशद शास्त्रीय ज्ञान में नहीं, बल्कि उस पारदर्शी जीवन-दृष्टि में निहित है, जो युग का नहीं युग-युग का सत्य देखती हैं। उनकी प्रतिभा ने इतिहास का उपयोग 'तीसरी आँख' के रूप में किया है और अतीतकालीन चेतना-प्रवाह को वर्तमान जीवनधारा से जोड़ पाने में वह आश्चर्यजनक रूप से सफल हुई है। बाणभट्ट की आत्मकथा अपनी समस्त औपन्यासिक संरचना और भंगिमा में कथा-कृति होते हुए भी महाकाव्यत्व की गरिमा से पूर्ण है।

कथानक

इस उपन्यास में द्विवेदी जी ने प्राचीन कवि बाणभट्ट के बिखरे जीवन-सूत्रों को बड़ी कलात्मकता से गूँथकर एक ऐसी कथाभूमि निर्मित की है, जो जीवन-सत्यों से रसमय साक्षात्कार कराती हैं। इसका कथानायक कोरा भावुक कवि नहीं वरन कर्मनिरत और संघर्षशील जीवन-योद्धा है। उसके लिए 'शरीर केवल भार नहीं, मिट्टी का ढेला नहीं', बल्कि 'उससे बड़ा' है और उसके मन

में आर्यावर्त्त के उद्धार का निमित्त बनने की तीव्र बेचौनी है। 'अपने को नि:शेष भाव से दे देने' में जीवन की सार्थकता देखने वाली निउनिया और 'सबकुछ भूल जाने की साधना' में लीन महादेवी भट्टिनी के प्रति उसका प्रेम जब उच्चता का वरण कर लेता है तो यही गूँज अंत में रह जाती हैं-

वैराग्य क्या इतनी बड़ी चीज है कि प्रेम देवता को उसकी नयनाग्नि में भस्म कराके ही कवि गौरव का अनुभव करे?

'बाणभट्ट की आत्मकथा' हर्षकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का जीवन्त दस्तावेज है। ऐतिहासिक उपन्यासकार को अतीत में भी प्रवेश करना पड़ता है। अतीत में प्रविष्ट हो कर ही इतिहास को वर्तमान संदर्भों के साथ जोड़ पाता है। इसी जुड़ाव के माध्यम से ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत को चित्रित करता है।

पात्र

बाणभट्ट (भट्ट)- असली नाम दक्ष
निउनिया- निपुणिका का प्राकृत नाम
भट्टिनी- देवपुत्र तुवरमिलिंद की कन्या
विशेषताएँ

इस उपन्यास के माध्यम से हजारीप्रसाद द्विवेदी के स्त्री संबंधी विचारों को भी समझने में सहायता मिलती हैं। निउनिया को उज्जयिनी की नाटक-मंडली में भर्ती करने के पश्चात् भट्ट सोचता है कि- 'साधारणत: जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है उनमें एक दैवी शक्ति भी होती हैं, यह बात लोग भूल जाते हैं। मैं नहीं भूलता। मैं स्त्री-शरीर को देव-मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ।'

9

अनामदास का पोथा

अनामदास का पोथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित एक उपन्यास है। इस उपन्यास में उपनिषदों की पृष्ठभूमि में चलती एक बहुत ही मासूम सी प्रेमकथा का वर्णन है। साथ ही साथ उपनिषदों की व्याख्या व समझने का प्रयास, मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में विचारों के मानसिक द्वंद्व व उनके उत्तर ढूंढने का प्रयास इस उपन्यास की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ व कहना चाहिए कि उपलब्धियाँ भी हैं।

इस उपन्यास में परिलक्षित लेखक का उपनिषद-ज्ञान व मानवीय मनोभावों को समझने की क्षमता व उनको अपनी कलम से सजीव कर देने की क्षमता निश्चित ही प्रशंसनीय है।

प्रमुख पात्र

रैक्व,
जाबाला,
अरुंधतिं

पृष्ठभूमि

इस उपन्यास की पृष्ठभूमि छान्दोग्य उपनिषद में वर्णित कथा है जिसके अनुसार दो पक्षियों की वार्ता सुनकर राजा ने रैक्व नामक 'पीठ खुजलाने वाले

बैलगाड़ी वाले साधु' की महिमा जानी और उनकी शरण में जाकर ज्ञानयाचना की। साधु ने ज्ञान देने से मना कर दिया। तत्पश्चात् राजगुरुओं की सलाह से राजा पुनः वहां गए और भेंट के साथ अपनी पुत्री जाबाला को भी ले गए। जाबाला के सौंदर्य से प्रभावित हो रैक्व मान गए तथा उन्होंने राजा को ज्ञानवचन कहे जो कि छान्दोग्य उपनिषद में संकलित हैं।

लेखक प्रारंभ में यह कथा लिखते हुए अपनी आपत्ति जताते हैं कि इस कथा में कुछ अधूरा प्रतीत होता है–

कथानक

रैक्व जंगल में निवास करने वाला एक ऋषिपुत्र है, जिसकी माता की मृत्यु उसके जन्म के समय ही हो गयी थी। वेदों का कुछ ज्ञान प्रदान कर बाल्यकाल में ही उसके पिता भी चल बसे। पिता प्रदत्त ज्ञान से उत्पन्न जिज्ञासा को स्वानुभव से स्पष्ट करने की चेष्टा में जंगल में भटकता हुआ यह बालक किशोरावस्था में पहुँचते-पहुँचते तक आस-पास के गांवों में संन्यासी बालक के रूप में जाना जाने लगता है।

एक दिन एक भयानक तूफान आता है, जिसे देख बालक वायु तत्त्व को सर्वशक्तिमान मानने लगता है। तूफान थमने पर वह जंगल निकलता है। अहोभाव से वायुशक्ति से हुए विनाश का अवलोकन करते हुए उसे एक दुर्घटनाग्रस्त बैलगाड़ी दिखती हैं, जिसके पास ही दो मानव शरीर पड़े हैं। एक की मृत्यु हो चुकी है, लेकिन दूसरा, यह जीवित तो है, लेकिन बेहोश है, लेकिन यह क्या . यह तो कोई विचित्र प्राणी है - इतने सुंदर लंबे मुलायम केश, इतनी सुंदर इतनी बड़ी मृग सरीखी आंखें, इतना सुंदर मुख? नहीं नहीं यह मानव नहीं हो सकता अवश्य ही यह कोई देवलोक का प्राणी है। इतने में घायल राजकुमारी को होश आ जाता है।

यहां से शुरु होती हैं बैलगाड़ी वाले ऋषिपुत्र की कथा, जिसकी पीठ में रह रह कर खुजली उठती हैं, जो शांत ही नहीं होती, या यूं कहें कि कथा के अंत में ही शांत होती हैं।

10

डाक बंगला

डाक बंगला कमलेश्वर का एक लघु उपन्यास है।

आज भी जब मैं इरा के बारे में सोचता हूँ, तो उसकी सूरत-शक्ल से ज्यादा मुझे मेजर सोलंकी, बतरा, डॉक्टर और विमल याद आते हैं। मेरे कानों में कभी दौड़ते हुए घोड़ों की टापों की आवाज गूंजने लगती हैं, कभी बतरा की कद परछाई याद आती हैं, कभी डॉक्टर का वह जुमला- अब जैसा तुम चाहो! और कभी विमल का ध्यान आता है, जिसके शरीर में पशीने के कांटे उगते थे। और मेरे सामने काश्मीर के वे दृश्य आज भी घूम जाते हैं जहां इरा ने मुझे यह बताया था।

कई बार मैंने कोशिश की इस बात को, जो रह-रहकर मेरे दिल में घुमड़ उठती हैं, कहानी के रूप में लिख डालूं, पर पिछले तीन साल से कोशिश करते रहने के बावजूद मैं नहीं लिख पाया। आज इसे लिखने बैठा हूँ तब भी इस बात का यकीन नहीं है कि इसे पूरा कर ही पाऊंगा, क्योंकि बहुत सोचने के बाद भी मैं किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका, न मैं इरा को ही पहचान सका। बस, इतना लगता है कि उसके लिए मैं सब कुछ कर सकता था। काश्मीर, इरा, सोलंकी और मैं और धुंधली-भी तीन परछाइयां-सब एक साथ गुंथे हुए हैं। जब भी लिखने बैठा, तब काश्मीर के दृश्यों को उतारते-उतारते थक गया और इरा न जाने कहां खो गई। और काश्मीर को लेकर कहानी लिखने में एक बेईमानी का बोध भी होता है। यही घटना कहीं भी घटित हो सकती थी, हिन्दुस्तान के किसी भी

हिस्से में, लेकिन सौन्दर्य-मात्र के प्रति इरा का दीवानापन मुझे मजबूर करता है कि मैं कम से कम उसके प्रति अन्याय न करूँ। और जब मैं इस प्रेरणा से अभीभूत होकर लिखना शुरू करता हूँ तो काश्मीर का अनन्त सौन्दर्य मेरे ऊपर हावी हो जाता है। मेरे कानों में घोड़े की टापों की आवाज गूंजने लगती हैं और धीरे-धीरे हिलती हुई चीड़ की झूमरें मुझे स्पष्ट दिखाई देखने लगती हैं।

पहलगाम से आड़ू का रास्ता! बाएं लिद्दर बह रही है और दाएं पहला पठार घास-फूलों से ढ़का है। उसी की कमर पर से पतला रास्ता जा रहा है। जगह-जगह घनी कंटीली झाड़ियां हैं। पत्थरों की उभरी हुई रेखा उस पतले रास्ते की दिशा बता रही है। नदी का शोर घोड़े की टापों के साथ जैसे पार्श्व संगीत का काम कर रहा है। दूर छूटे हुए पहलगाम की चहल-पहल ऐसे खो गई, जैसे किसी ने दरवाजा बन्द करके किसी फैक्टरी के बाहर निकाल दिया हो। लिद्दर की धार में लकड़ी के लट्ठे बहते हुए चले आ रहे हैं। मंडराते, चकराते और सीधी धार में पड़ते ही शीशे की सतह पर फिसलते-से। पर रास्ता इतना ऊपर चढ़ गया है कि उसका कोलाहल ऊपर तक नहीं आता। नीचे गति है, दृश्य है और चट्टानों से टकराती धार है। उड़ते हुए जल-पक्षियों की पंक्ति है। मौन खड़े वन हैं। या चट्टानों की आड़ में रुककर दम लेते हुए लकड़ी के लट्ठे हैं। जल-फेन के तैरते हुए सफेद फूलों के गुच्छे हैं। अवरोध से टकराकर छिटके हुए जल-बीज हैं। पर सब निःस्वन, आवाजहीन। जैसे एकाएक सिनेमा में आवाज बन्द हो गई हो।

कि एकाएक वही-घोड़े की टापों की आवाज!

सोलंकी घोड़ा दौड़ाता हुआ सरपट आड़ू के डाक बंगले की ओर भागा जा रहा है। उसे इस बात का भी खयाल नहीं कि रात बारिश हो चुकी है और घोड़ा फिसल सकता है। घोड़े के खुर जमीन पर पड़ते नजर ही नहीं आते, जैसे उसकी पिछली टांगे हंस की तरह हवा चीरती जा रही रही हैं और सोलंकी लगाम कसे उसकी गर्दन पर दोहरा हुआ जा रहा है।

यह तस्वीर का एक रुख है।

अकस्मात् इरा मिल गई थी। मैं सोलंकी को जानता भी नहीं था। उस समय हम पहलगाम में थे। और तस्वीर का दूसरा रुख यह है-

रात आए तूफान में बिजली का तार टूट गया था। मोमबत्ती की मद्धिम रोशनी में सब चीजें धुंधुली-धुंधली लग रही थीं, जैसे तम्बू में कोहरा भर गया हो। मैं भाप की भट्टी में बंद था, जिसमें मोमबत्ती की लौ एक शोले की तरह

चमक रही थी। हर चीज पर मोमजामा पड़ा हुआ था। बाहर हवा अभी भी सांय-सांय कर रही थी। तम्बू की ऊपरी परत नीचे झुकती तो लटके हुए कपड़े आकुल जीवों की तरह कांपते और उनकी परछाइयां बड़ी देर तक पेंडुलम की भांति एक सीमा में हिलती रहतीं। रात के बादल अभी आकाश में ठहरे हुए थे। पहलगाम की बस्ती नींद में डूब-उतरा रही थी। दूर दक्षिण वाले पठार पर लगे हुए तम्बुओं की रोशनियां मशालों की तरह तमक रही थीं। चीड़बन से गुजरती हवा का स्वर किसी नजदीक की सड़क से लगातार जाती हुई कारों की तरह आ रहा था। भीगी हुई घासों की महक चारों ओर भरी हुई थी।

आखिर चादर लपेटकर मैं उठा। तम्बू का सामनेवाला भरी परदा हटाकर मैंने बाहर झांका। 'एलपाइन होटल' छाए हुए बादलों के घेरे में नुकीले काले पहाड़ की तरह लग रहा था। इरा के कमरे में रोशनी नहीं थी। एकाएक रोशनी टिमटिमाई और उसका फैलाव बढ़ गया। कोई देवदूत घाटी में दीपक लिए मेरी ओर आ रहा था। उस उजाले का आभास ही बहुत था। अँधेरे में जैसे किसी रौशन सुरंग का गोल दरवाजा खुल गया हो।

उसी स्वप्निल रोशनी में, खिड़की के शीशों पर, नींद के समुद्र से एक अंगड़ाई हुई छाया धीरे-धीरे उभरी। मैं परदा उठाकर बाहर आ गया। इर्द-गिर्द खड़ी पहाड़ियों की चोटियां कुछ-कुछ साफ हो रही थीं। अँधेरा स्पिरिट की तरह अनजाने में उड़ता जा रहा था। इरा के कमरे की रोशनी और साफ हो गई थी। शाम को इरा कह रही थी, 'तुम नहीं जाग पाओगे!' उसे जताने के लिए और इसलिए भी कि इतनी देर हम दोनों एक-दूसरे की जागृत अनुभूति से दूर रहे, मैं भी भीतर गया था और टार्च उठा लाया था। टार्च की रोशनी से मैंने अपने जागने का सिगनल दिया था। तभी खिड़की खुली और कमरे में मोमबत्ती की भरी हुई रोशनी के परदे पर इरा छाया-चित्र की तरह दिखाई दी, मैंने उसके ओठों को पहचाना और वह बन-घास की भीनी-भीनी महक, जो हमेशा उसके चिकने नम शरीर से उठा करती थी। और उसकी अलग आँखों की कोर में सोए उन्माद की लहरियों को जगाता हुआ महसूस किया। तभी इरा ने कोई इशारा किया था, पर मैं अपने में बेसुध खड़ा था। यह भी नहीं जान पाया कि कब इरा ने खिड़की की कार्निस पर मोमबत्ती रख दी, जिसकी लौ, में उसके बाल गोटे के झीने तारों की तरह चमक उठे थे। और इरा कुछ क्षण बाद तैयार होने चली गई थी। अंधेरी घाटी में चमकता हुआ एक आकाशदीप!

पठार के नीचे किसी मोड़ से ऊपर आते हुए घोड़ेवालों की आहट हुई। सुनकर मैं तैयार होने के लिए राउटी में घुस गया, कुछ देर बाद घोड़े वाले ने ऊपर पहुँचकर आवाज दी, 'साब, साहब!'

मैंने निकलकर उसका नाम याद करते हुए पूछा, 'ममदू, ये बादल देख रहे हो! ऐसे में कितना ठीक होगा?' पूछने को तो मैं पूछ गया पर लगा कि कहीं ममदू ने मौसम खराब घोषित कर दिया तो? मैं चाह रहा था कि ममदू कहे, साहब इससे कोई फरक नहीं पड़ता।'

मजदूर में दूसरे की आंतरिक इच्छा जान सकने की अदभुत् शक्ति होती हैं। एक क्षण के लिए उसने अपने साथी घोड़ेवालों की ओर देखा, उसकी मिचमिचाती आँखों की खामोशी में जिस भावना का बोध था, उसे उसने पहचाना और मतलब समझकर नाक मलते हुए बोला, 'नई साब, इससे कोई फरक नहीं पड़ता।' मैंने अपने मन का उतावलापन छिपाते हुए उसी पर अहसान लादा, 'तुम कहते हो तो ठीक है चलो!'

'हल्की बारिश में मौज रहेगा साब! आपको आराम मिलेगा।' ममदू मेरे अहसान को उतारता हुआ बिस्तर लपेटने के लिए भीतर घुस गया। तभी इरा के होटल का बॉस चाय लेकर आ गया, उसके पीछे-पीछे एक मजदूर पीठ पर इरा का बिस्तर लादे हुए भालू की तरह झूमता हुआ घोड़ों को पास पहुँच रहा था।

मैंने जब तक चाय पी तब तक सामान ढोनेवाला खच्चर तैयार हो गया था। मैं कैमरा लटकाकर और अपने तम्बू के चौकीदार को हिदायतें देकर एलपाइन होटल की ओर चल दिया। घोड़ेवाले से नीचे सड़क पर मिलने की बात कह दी थी। उजाला अच्छी तरह फैल चुका था। इरा होटल के छोटे-से फाटक का सहारा लिए खड़ी थी, कुचली हुई घास में उसके पैर छिपे थे।

तुम यहां खड़ी हो, मैं वहां इन्तजार कर रहा था। पास पहुँचते हुए मैंने कहा, और वह मेरे कंधे से सट गई थी। उसके सुडौल रेशमी कंधों पर हाथ रखते ही उंगलियां चारों ओर से अपने-आप सिमटने लगती थीं। और कंधे से कुछ नीचे पीठ पर वे स्वत: सड़सी की तरह बंद हो जाती थीं। इरा का शरीर लहर की तरह सिहरता और व्यर्थ मुक्ति की सार-हीन चेष्टा आंखों में आकर पूछती, क्या? और उनमें झांकते हुए प्रश्न और उत्तर एक ही बिंदु पर आकर मिल जाते। प्रश्न और उत्तर से परे एक सहज चेष्टा और उससे उत्पन्न एक मोहक प्रक्रिया-भरी स्वीकृति।

घोड़ेवाले कोल्हाई के रास्ते पर खड़े हमारा इन्तजार कर रहे थे। एलपाइन होटल से उतरते हुए पहलगाम की छोटी-सी बस्ती रेलवेयार्ड की तरह लगती। खास सड़क के किनारे लकड़ी के मकानों की कतार रेलगाड़ी का तरह खड़ी थी। रात-भर बुझी बत्तियां जल गई थीं और लिद्दर नदी का शोर बढ़ गया था।

खालसा होटल के कुछ लोग साथ चलनेवाले थे, उनका क्या हुआ? इरा ने पूछा। मैं उनका साथ चाहता भी था, आसानी से समझा दिया, वे आते रहेंगे, हम जल्दी चल रहे हैं। डाक बंगले में आराम की जगह मिल जाएगी। मैंने एक रात आड़ू के डाक बंगले में रुकने का प्रोग्राम बनाया है और एक रात लिद्दरवट के डाक बंगले में, उसके बाद कोल्हाई! ठीक है न?

पहले कहीं पहुँचे भी! इरा ने कहा तो मेरे मन की बात फूट पड़ी, तुमने बिस्तर बेकार लिया। मेरे पास सब चीजें एक्सट्रा हैं। इस बात में मेरा कुछ आशय था। लेकिन इरा के चेहरे पर कहीं भी संकोच नहीं था। न जाने क्यों, सामान्य स्त्रियों की भाँति ऐसी बातों पर उसमें कोई हलचल नजर नहीं आती थी, जैसे कुछ भी अनुचित न हो। वह स्त्री-पुरुष की इन तमाम छोटी-छोटी सामाजिक और नैतिक धारणाओं को बड़ी सरलता से नकार देती थी, जिन्हें मैं महत्त्वपूर्ण समझता था। इससे मुझे बल मिलता, मैं और खुलता, इरा और उन्मुक्त हो जाती। मैंने अपनी पेंट की जेब से लेमनड्राप्स निकालकर उसकी ओर बढ़ाए। एक मुंह में डालकर दो-तीन बार चूसकर उसने फेंकते हुए कहा, कहां से उठा लाए। सौंफ और दनियावाले, मुंह का जायका बिगाड़ दिया।

टाफी दूं? कहते हुए मैंने जान-बूझकर आधी टाफी दांत से कुतर ली और आधी उसकी ओर बढ़ता हुआ बोला मैं जानता था, इसलिए लेता आया। और उसके उत्तर में इरा ने सहज भाव से मुंह खोलकर इलाइची दिखा दी, मैं इलाइची खा रही हूँ, आप ही खाइए इसे। सुनकर मुझे अपनी गलती का पता चला और संकोच से गड़ गया। और इरा की ऊपरी सहजता से जितना बढ़ावा मिलता था, वह क्षण-भर में उसकी भीतरी सहजता से व्यर्थ हो जाता था। वह ऊपर से जितनी निःसंकोच, मुक्त, निर्बन्ध दीखती थी, शायद अन्दर से उतनी ही संकोचशील, परम्परानुरागी और भीरु भी थी।

रात बड़े बादल थे, लगता था चलना नहीं हो पाएगा। मैंने इरा की मनःस्थिति की थाह पाने को बात बदल दी थी, वह रहस्यमय-सी लगती थी ऐसे अवसरों पर। मछली की तरह बार-बार फिसल जाती। . क्षण दो क्षण हाथों में टिकती और सरक जाती, दिन-रात सपनों की बातें करती।

श्रीनगर में डल पर सैर करते हुए कल्पनाशील दार्शनिक की तरह आधी आँखें मूंदते हुए उसने कहा था–प्रकृति में जो यह जंगलीपन है, तिलक, यह भी कितना खूबसूरत है। मैं वहशियों की तरह जीना चाहती हूँ। प्रकृति के इस जंगलीपन की तरह! कभी–कभी सोचती हूँ। आसाम की जंगली जातियों में ही मेरा जन्म होता। बनपाखियों के पंखमुकुट लगाकर घूमती! कहते–कहते उसने पूरी आँखें खोलकर एक पल की खामोशी के बाद कहा था, देवदार देखे हैं? मन करता है नंगी चट्टानों के बीच देवदारों की तरह उग सकूं। बस, यही रहूँ। तूफानी हवाएं मुझे झिंझोड़ जाएं, बारिश में सिहर–सिहरकर भीगूं और नंगी बाहें पसारकर बरफ का स्वागत करूं।

बात सुनकर मैं बड़े व्यावहारिक ढंग से मुस्कारा दिया था। अपने प्रति उपेक्षा का भाव सहन न कर पाई थी। बोली–नासमझों की तरह हंसते क्या हो? मुर्दे नहीं सोच सकते यह सब। उसकी आवाज में तेजी थी और वह कहती जा रही थी–डल के तीन ओर खड़ी ये पहाड़ियां तुम्हें नहीं पुकारतीं! इस चिकनी चट्टानों पर चढ़कर इन्हें रौंद डालने की इच्छा नहीं होती, कैसे आदमी हो तिलक? शिकारे में बैठे–बैठे डल के जल को बच्चों की तरह उछलते हुए वह बोलती जा रही थी, इसके तल तक पहुँचकर पानी उलीचने को मन होता है। सिवार के जाल में फंसकर तड़फड़ाने में कितना सुख होगा। या उस कमलवन में घुस पड़ूं, उसे रौंद डालूं। कमलनालों को तोड़–मरोड़कर बिखेर दूं, डल के पानी को गंदला कर दूं।

उस पर मैंने उसे बहुत गहरी नजरों से देखा था, बांह में पड़ी चूड़ियां सरकाने का उपक्रम करते हुए उसकी बांह पर पहली बार हाथ रखा था। इरा की त्वचा में खिंचाव था। उसका रोम–रोम भभर आया था, जैसे रेत के कण उसके शरीर पर चिपक गये हों। उसकी आँखों में उमस थी और होंठों पर मादक सूखापन। उसके शरीर का सारा रस निचुड़कर कही भीतर समा गया था। रुखा तन सूखी टहनी की तरह कड़ा था, पर ऐसा कड़ापन जो उंगली के इशारे–मात्र से चटाख से टूट जाए। मैंने उसकी पीठ पर हाथ रख लिया था। इरा वैसे ही चश्माशाही की पहाड़ियां देखती रही। वातावरण बदलने के लिए मैंने बहुत मुलायमियत से कहा, 'तुम एक झूठी जिन्दगी की कल्पना में परेशान हो। तुम एक गलत मोड़ पर मुड़ गईं, इसलिए अब तुम जिन्दगी जीना नहीं उसे तोड़–मरोड़ देना चाहती हो'

इरा ने अपनी काली-काली आँखों से मेरी तरफ देखा, बादामी पुतलियों में जाले की तरह महीन तार चमक रहे थे और केन्द्र काला दृष्टिबिन्दु मोती की तरह झलमला रहा था। उसकी बरौनियों के बाल कंटीले तार की तरह खड़े थे। न जाने क्यों मुझे उन आंखों को देखकर कि जैसे सारी गलती इन्हीं की हो इरा की सौन्दर्यपूर्ण जीवनी को बियावान में घसीट लाने का दोष इन वहशी आँखों का है। उसी से प्रेरित होकर मैंने कहा, इस तरह तुम टूट जाओगी। आदमी-आदमी के रिश्ते इसी तरह पहाड़ बने खड़े रहेंगे, उसका प्यार पानी की तरह लहराता रहेगा और कमल इसी तरह खिलते रहेंगे। और मैं अपनी भावुकता की रौ को पहचानते ही चुप हो गया था।

कुछ देर शिकारे पर ही उधर-उधर घूमकर हम नेहरू पार्क में चले आए थे। शाम थी, इसीलिए भीड़ बढ़ रही थी। नव-विवाहित जोड़े रोशनी से इधर-उधर रेलिंगों या झाड़ियों के पास अंधेरे में खड़े थे। मेरा मन हो रहा था कि इरा को लेकर उधर रेलिंग के पास चला जाऊं, जहां अपेक्षाकृत अंधेरा था। इतनी निकटता मैं महसूस करने भी लगा था।

इरा का हाथ पकड़कर मैं उस अंधेरी रेलिंग की ओर चल दिया था। ऐसी जगहें अलगाव दिखाने की होती भी नहीं, क्योंकि इन जगहों पर संस्कार भी ऐसा होता है। रेलिंग पर झुके-झुके डल के पानी में रोशनी के चमकदार सांपों को लहराकर नीचे की ओर जाते हुए देखकर इरा ने पूछा था, तिलक, तुम कब तक रुकोगे यहां?

काश्मीर में? मैंने बात साफ करके कहा, जब तक कहो।

इरा ने बात आगे नहीं बढ़ाई। मुझे कुछ बुरा-सा लगा। पिछले पांच दिनों से मैं इसी कशमकश में था। इतनी निकटता के बावजूद हमारे व्यक्तिगत ताड़ के पेड़ों की तरह अलग-अलग खड़े थे, जब भी बात करता तो इरा अपना पुराना किस्सा सुनाने लगती-आसाम की उन बस्तियों में रहना बहुत खतरनाक है। खिड़की पर खड़े होते डर लगता था। न जाने कब गोली शीशे के पार से छाती में घुस जाए। ऐसे ही अचानक उनकी मौत हुई थी। डॉक्टरी का पेशा ही ऐसा है, रात-बिरात भी जाना पड़ता है।

मैं भला क्या कहता! उसके पति की मृत्यु के प्रति आंखों से संवेदना ही प्रकट कर सकता था। वैसे इरा की चेतना पर उसके पति की इस आकसमिक मृत्यु का कोई भीषण प्रभाव हुआ हो, मुझे उस वक्त तक नहीं लगा था। इस वक्त जो छोटा-सा सवाल करके इरा खामोश हो गई थी, उससे मुझे उलझन हो रही

थी। वह चुपचाप चारों ओर के दृश्यों को देख रही थी। शंकराचार्य की पहाड़ी पर जलता बल्ब मन्दिर जिनकी ठोस परछाइयां पानी को काला कर रही थीं। बाईं ओर हरिपर्वत, और इन सबके बीच फैला हुआ डल का नीला जल। उस पानी में नहाते हुए बेंत के पेड़ और सतह पर बर्छियों की तरह निकले हुए पेत्स के सिरे। तैरते हुए खेत और इस आपार सौन्दर्य-राशि के बीच पास खड़ी हुई इरा। लेकिन सब बेबसी के क्रम में आबद्ध था। सचमुच इस तरह मैं नहीं रह पाऊंगा यह पानी की आग यह झुलसन! या तो इसमें कूदना होगा या इस अग्नि-देश से भागना होगा। इरा की पीठ मेरे सामने थी। पान की शक्ल में तराशी हुई मांस की नरम चट्टान। और तब, नहीं जानता कैसे, उसके जूड़े के नीचे गरदन पर मेरे तपते हुए होंठ थे। धुले हुए केशों की ठण्डक पलकों से आंखों पर उतर गई, स्निग्ध शीतलता, बनघास की भीनी गन्ध .मधुनाभि पर रखे हुए अधरों का असल अस्तित्त्व या ओस से भीगे कमल पर रखी हुई चेतन पर मदहोश इन्द्रियां, पंखुड़ियों की नरम शीतलता और पराग की भीनी-भीनी गन्ध तभी कमलपांखो-सी रेंगती हुई उसकी उंगलियां मेरे कान पर थरथराई थीं। कान भर आए, जैसे बधिर हो गया था उस पल उसकी उंगलियों ने मेरे बालों को बुरी तरह खींचा था और कांपकर उसकी पकड़ ढीली हो गयी थी और कहीं हवा के साथ प्रतिध्वनित होते शब्दों की मौन झंकार चारों ओर समा गई थी।

बहुतों ने पुकारा था मुझे, पर ऐसा चुम्बकीय पर निरपेक्ष आशय शायद कभी भी किसी का नहीं था। वह कमलनाल की तरह रेलिंग पर झुक गई थी, कुछ देर बाद अपने बालों को झटकारते हुए बोली थी, शिकारेवाले को बुलाओ, अब चलेंगे।

बांध पर आकर हम उतर पड़े थे। जब तक मैं अपना पर्स निकालूं तब तक इरा ने मांझी की हथेली पर दस का नोट थमा दिया था। मैं सकुचाता ही रह गया। मांझी दोपहर से साथ था, जब तक वह हम लोगों के रिश्ते को जानने की कोशिश करे, तब तक इरा ने उसे आश्चर्यपूर्ण स्थिति से उबार लिया, बोली, साहब को पहले पुल तक पहुँचा आओ, इनको उधर जाना है, अपने होटल में।

इरा ऐसे ही असम्बद्ध हो जाती हैं। मुझे यह अपमान खल गया था, लेकिन इरा यह सब ऐसी सम्मान-भावना से करती थी कि सहज ही अवहेलना करने का साहस नहीं हो पाता था। जब वह इस तरह अपने को काट-छांटकर अलग खड़ा कर लेती तो उसके शरीर के तनाव से तेज की रश्मियां विकसित होतीं,

जिनमें अपमान का क्षुद्रता का बोध हो सकना सचमुच असंभव हो जाता। 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश' सच, बिलकुल ऐसी ही थी, इरा!

और मुंह में इलायची दिखाकर उसने ऐसी ही ठेस पहुँचाई थी, जो मेरे मन की छोटी-सी बात को खंडित करके आत्म-भर्त्सना से भर गई थी। हम दोनों चुपचाप घोड़ेवालों की तरफ बढ़ रहे थे। घोड़ेवाले सफर पर जाने के लिए वहां जमा हो रहे थे, जहां से आड़ू-कोल्हाई और चंदनवाड़ी का रास्ता कटता था। हम अभी पहलगाम के मुहाने पर ही थे।

एक आवाज सुनकर हम दोनों ने ही उस ओर देखा, मैं उस आदमी को नहीं पहचान पाया-सूरत साफ दिखाई पड़ रही थी। वह घोड़ा दौड़ाता हुआ आया था। रुखे मोटे-मोटे बाल, पुष्ट भरा हुआ शरीर। मोटे-मोटे साफ तराशे हुए ओठ। कनपटियों पर मांसलता कुछ अधिक थी। वह और पास आया तो मैंने गौर से देखा-दानेदार रेगमाल की तरह खुरदरी मुंह की खाल, कोयले की महीन कनियों-सी बढ़ी हुई दाढ़ी और मूंछें। मैंने इस आदमी को भी कभी नहीं देखा था। तभी इरा बोल पड़ी, अरे सोलंकी, इधर कहां?

चन्दनवाड़ी से वापस आ रहा हूँ, शेषनाग गया था। तुम किधर? उस सोलंकी ने पूछा, तब तक उसके घोड़े के पास पहुँच गई थी। वह नीचे खड़ी सोलंकी को इस तरह ताक रही थी जैसे कोई विजयी राजपूत वापस आया हो।

उसकी यह बात सुनकर मेरा मन हुआ कि कहूँ-अच्छा तो मैं चलता हूँ। पर मैं खमोश खड़ा सोलंकी के घोड़े को ताकता रहा जो अभी हांफ रहा था। सोलंकी ने घोड़े से कूदकर रासें छोड़ते हुए दास्ताने उतारे और ओवरकोट की जेब से पाइप निकालकर तम्बाकू भरने लगा। पाइप भरते-भरते वह बोला, हमारा घोड़ेवाला कह रहा था, साहब अभी सरदी है, देर से चलेंगे फिर घोड़े की ओर देखते हुए बोला, कहता था, अगर आप इस पहाड़ी रास्ते पर घोड़ा दौड़ाएंगे तो टांग साफ टूट जाएगी यह फौज का नहीं, विजिटर लोग के वास्ते पॉनी है पॉनी। पॉनी शब्द पर उसने जोर दिया था और हंसा था फिर पाइप जलाते हुए बोला था, टांग क्या खुर तक नहीं टूटा। कहते हुए उसने अपने फौजी बूट से घोड़े के टखने पर जोर से वार किया। घोड़े ने चोट से तिलमिला कर तीन-चार बार ऐसे टांग उठाई जैसे सरकस में सलाम कर रहा हो। पाइप अभी जला नहीं था, उसकी तम्बाकू दबाते हुए सोलंकी फिर बोला था, आना तो कल शाम ही था, एक रात चन्दनवाड़ी में रुक गया। सुबह उठकर मैं भाग आया, खच्चर वाला और इसका मालिक पीछे आ रहा है। कहते हुए रुककर उसने फिर पाइप सुलगाया और नथुनों

से धुएं की पतली धार निकालते हुए बोला, हां, हां कहो तो कोल्हाई चलूं? और तब उसने पहली नजर मुझ पर डाली थी। इरा को मेरी उपस्थिति का जैसा अकस्मात् ज्ञान हुआ तो एकदम चौंककर बोली, अरे ये मिस्टर तिलक हैं और आप मेजर सोलंकी।

सोलंकी ने लपकर हाथ मिलाया। काफी जोर, उसने मेरा हाथ दबोच लिया था। बड़ी शालीनता से छुड़ाते हुए मैंने कहा था, अभी आप चन्दनवाड़ी से आ रहे हैं, थके होंगे।

इरा की दृष्टि में सहमति और असहमति दोनों ही थीं कि कश लेकर धुआं उगलते हुए सोलंकी ने कहा, नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं। और धुआं उसके चारों ओर ऐसे लिपट गया था, जैसे उसने पारदर्शी प्लास्टिक का मोमजामा ओढ़ लिया हो। ईजिप्शियन तम्बाकू की मीठी-मीठी गन्ध उसके ओवरकोट से फूट रही थी। उसके भारी-भारी जूते ओस से भीगे थे।

11

प्रेमा

संध्या का समय है, डूबने वाले सूर्य की सुनहरी किरणें रंगीन शीशो की आड़ से, एक अंग्रेजी ढंग पर सजे हुए कमरे में झाँक रही हैं जिससे सारा कमरा रंगीन हो रहा है। अंग्रेजी ढ़ंग की मनोहर तसवीरें, जो दीवारों से लटक रहीं हैं, इस समय रंगीन वस्त्र धारण करके और भी सुंदर मालूम होती हैं। कमरे के बीचोंबीच एक गोल मेज है जिसके चारों तरफ नर्म मखमली गद्दों की रंगीन कुर्सियॉ बिछी हुई हैं। इनमें से एक कुर्सी पर एक युवा पुरूष सर नीचा किये हुए बैठा कुछ सोच रहा है। वह अति सुंदर और रूपवान पुरूष है जिस पर अंग्रेजी काट के कपड़े बहुत भले मालूम होते हैं। उसके सामने मेज पर एक कागज है जिसको वह बार-बार देखता है। उसके चेहरे से ऐसा विदित होता है कि इस समय वह किसी गहरे सोच में डूबा हुआ है। थोड़ी देर तक वह इसी तरह पहलू बदलता रहा, फिर वह एकाएक उठा और कमरे से बाहर निकलकर बरांडे में टहलने लगा, जिसमे मनोहर फूलों और पत्तों के गमले सजाकर धरे हुए थे। वह बरांडे से फिर कमरे में आया और कागज का टुकड़ा उठाकर बड़ी बेचैनी के साथ इधर-उधर टहलने लगा। समय बहुत सुहावना था। माली फूलों की क्यारियों में पानी दे रहा था। एक तरफ साईस घोड़े को टहला रहा था। समय और स्थान दोनों ही बहुत रमणीक थे। परन्तु वह अपने विचार में ऐसा लवलीन हो रहा था कि उसे इन बातों की बिलकुल सुधि न थी। हाँ, उसकी गर्दन आप ही आप हिलती थी और हाथ भी आप ही आप इशारे करते थे-जैसे वह किसी से बातें

कर रहा हो। इसी बीच में एक बाइसिकिल फाटक के अंदर आती हुई दिखायी दी और एक गोरा-चिटठा आदमी कोट पतलून पहने, ऐनक लगाये, सिगार पीता, जूते चरमर करता, उतर पड़ा और बोला, गुड ईवनिंग, अमृतराय।

अमृतराय ने चौंककर सर उठाया और बोले-ओ। आप हैं मिस्टर दाननाथ। आइए बैठिए। आप आज जलसे में न दिखायी दिये।

दाननाथ-कैसा जलसा। मुझे तो इसकी खबर भी नहीं।

अमृतराय-(आश्चर्य से) ऐं। आपको खबर ही नहीं। आज आगरा के लाला धनुषधारीलाल ने बहुत अच्छा व्याख्यान दिया और विरोधियों के दाँत खटटे कर दिये।

दाननाथ-ईश्वर जानता है मुझे जरा भी खबर न थी, नहीं तो मैं अवश्य आता। मुझे तो लाला साहब के व्याख्यानों के सुनने का बहुत दिनों से शौक है। मेरा अभाग्य था कि ऐसा अच्छा समय हाथ से निकल गया। किस बात पर व्याख्यान था?

अमृतराय-जाति की उन्नति के सिवा दूसरी कौन-सी बात हो सकती थी? लाला साहब ने अपना जीवन इसी काम के हेतु अर्पण कर दिया है। आज ऐसा सच्चा देशभक्त और निष्काम जाति-सेवक इस देश में नहीं है। यह दूसरी बात है कि कोई उनके सिद्वांतों को माने या न माने, मगर उनके व्याख्यानों में ऐसा जादू होता है कि लोग आप ही आप खिंचे चले आते हैं। मैंने लाला साहब के व्याख्यानों के सुनने का आनंद कई बार प्राप्त किया है। मगर आज की स्पीच में तो बात ही और थी। ऐसा जान पड़ता है कि उनकी जबान में जादू भरा है। शब्द वही होते हैं, जो हम रोज काम में लाया करते हैं। विचार भी वही होते हैं जिनकी हमारे यहाँ प्रतिदिन चर्चा रहती हैं। मगर उनके बोलने का ढंग कुछ ऐसा अपूर्व है कि दिलों को लुभा लेता है।

दाननाथ को ऐसी उत्तम स्पीच को न सुनने का अत्यंत शोक हुआ। बोले-यार, मैं जन्म का अभागा हूँ। क्या अब फिर कोई व्याख्यान न होगा?

अमृतराय-आशा तो नहीं हैं क्योंकि लाला साहब लखनऊ जा रहे हैं, उधर से आगरा को चले जाएंगे। फिर नहीं मालूम कब दर्शन दें।

दाननाथ-अपने कर्म की हीनता की क्या कहूँ। आपने उस स्पीच की कोई नकल की हो तो जरा दीजिए। उसी को देखकर जी को ढारस दूँ।

इस पर अमृतराय ने वही कागज का टुकड़ा जिसको वे बार-बार पढ़ रहे थे दाननाथ के हाथ में रख दिया और बोले-स्पीच के बीच-बीच में जो बाते

मुझको सवार हो जाती हैं तो आगा-पीछा कुछ नहीं सोचते, समझाने लगे-मित्र, तुम कैसी लड़कपन की बातें करते हो। तुमको शायद अभी मालूम नहीं कि तुम कैसा भारी बोझ अपने सर पर ले रहे हो। जो रास्ता अभी तुमको साफ दिखायी दे रहा है वह काँटो से ऐसा भरा है कि एक-एक पग धरना कठिन है।

अमृतराय-अब तो जो होना हो सो हो। जो बात दिल में जम गयी वह तम गयी। मैं खूब जानता हूँ कि मुझको बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। मगर आज मेरा हिसाब ऐसा बढ़ा हुआ है कि मैं बड़े से बड़ा काम कर सकता हूँ और ऊँचे से ऊँचे पहाड़ पर चढ़ सकता हूँ।

दाननाथ-ईश्वर आपके उत्साह को सदा बढ़ावे। मैं जानता हूँ कि आप जिस काम के लिए उद्योग करेगें उसे अवश्य पूरा कर दिखायेगें। मैं आपके इरादों में विध्न डालना कदापि नहीं चाहता। मगर मनुष्य का धर्म है कि जिस काम में हाथ लगावें पहले उसका ऊँच-नीच खूब विचार लें। अब प्रच्छन बातों से हटकर प्रत्यक्ष बातों की तरफ आइए। आप जानते हैं कि इस शहर के लोग, सब के सब, पुरानी लकीर के फकीर हैं। मुझे भय है कि सामाजिक सुधार का बीज यहाँ कदापि फल-फूल न सकेगा। और फिर, आपका सहायक भी कोई नजर नहीं आता। अकेले आप क्या बना लेंगे। शायद आपके दोस्त भी इस जोखिम के काम में आपका हाथ न बँटा सकें। चाहे आपको बुरा लगे, मगर मैं यह जरूर कहूँगा कि अकेले आप कुछ भी न कर सकेंगे।

अमृतराय ने अपने परम मित्र की बातों को सुनकर सर उठाया और बड़ी गंभीरता से बोले-दाननाथ। यह तुमको क्या हो गया है। क्या मैं तुम्हारे मुँह से ऐसी बोदेपन की बातें सुन रहा हूँ। तुम कहते हो अकेले क्या बना लोगे? अकेले आदमियों की कारगुजारियों से इतिहास भरे पड़े हैं। गौतमबुद्व कौन था? एक जंगल का बसने वाला साधु, जिसका सारे देश में कोई मददगार न था। मगर उसके जीवन ही में आधा हिन्दोस्तान उसके पैरों पर सर धर चुका था। आपको कितने प्रमाण दूँ। अकेले आदमियों से कौमों के नाम चल रहे है। कौमें मर गयी हैं। आज उनका निशान भी बाकी नहीं। मगर अकेले आदमियों के नाम अभी तक जिंदा है। आप जानते हैं कि प्लेटो एक अमर नाम है। मगर आपमें कितने ऐसे हैं, जो यह जानते हों कि वह किस देश का रहने वाला है।

दाननाथ समझदार आदमी थे। समझ गये कि अभी जोश नया है और समझाना बुझाना सब व्यर्थ होगा। मगर फिर भी जी न माना। एक बार और उलझना आवश्यक 'अच्छी जान पड़ी मैंने उनको तुरंत नकल कर लिया। ऐसी

जल्दी में लिखा है कि मेरे सिवा कोई दूसरा पढ़ भी न सकेगा। देखिए हमारी लापरवाही को कैसा आड़े हाथों लिया है–

सज्जनों। हमारी इस दुर्दशा का कारण हमारी लापरवाही है। हमारी दशा उस रोगी की–सी हो रही है, जो औषधि को हाथ में लेकर देखता है मगर मुँह तक नहीं ले जाता। हाँ भाइयो। हम आँखें रचाते हैं मगर अंधे है, हम कान रखते हैं मगर बहरे है, हम जबान रखते हैं मगर गूँगे हैं। परंतु अब वह दिन नहीं रहे कि हमको अपनी जीत की बुराइयाँ न दिखायी देती हों। हम उनको देखते हैं और मन में उनसे घृणा भी करते हैं। मगर जब कोई समय आ जाता है तो हम उसी पुरानी लकीर पर जाते हैं और नई बातों को असंभव और अनहोनी समझकर छोड़ देते हैं। हमारे डोंगे का पार लगाना, जब कि मल्लाह ऐसे बाद और कादर हैं, कठिन ही नहीं प्रत्युत दुस्साध्य है।

अमृतराय ने बड़े ऊँचे स्वरों में उस कागज को पढ़ा। जब वह चुप हुए तो दाननाथ ने कहा–निःसंदेह बहुत ठीक कहा है। हमारी दशा के अनुकूल ही है।

अमृतराय–मुझकों रह–रहकर अपने ऊपर क्रोध आता है कि मैंने सारी स्पीच क्यों न नकल कर ली। अगर कहीं अंग्रेजी स्पीच होती तो सबेरा होते ही सारे समाचारपत्रों में छप जाती। नहीं तो शायद कहीं खुलासा रिपोर्ट छपे तो छपे। (रुककर) जब मैं जलसे से लौटकर आया हूँ तब से बराबर वही शब्द मेरे कान में गूँज रहे है। प्यारे मित्र। तुम मेरे विचारों को पहले से जानते हो, आज की स्पीच ने उनको और भी मजबूत कर दिया है। आज से मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं अपने को जाति पर न्यौछावर कर दूँगा। तन, मन, धन सब अपनी गिरी हुई जाति की उन्नति के निमित्त अर्पण कर दूँगा। अब तक मेरे विचार मुझ ही तक थे पर अब वे प्रत्यक्ष होंगे। अब तक मेरा हदय दुर्बल था, मगर आज इसमें कई दिलों का बल आ गया है। मैं खूब जानता हूँ कि मैं कोई उच्च–पदवी नहीं रखता हूँ। मेरी जायदाद भी कुछ अधिक नहीं है। मगर मैं अपनी सारी जमा तथा अपने देश के उद्धार के लिए लगा दूँगा। अब इस प्रतिज्ञा से कोई मुझको डिगा नहीं सकता। (जोश से) ऐ थककर बैठी हुई कौम। ले, तेरी दुर्दशा पर आँसू बहानेवालों में एक दुखियारा और बढ़ा। इस बात का न्याय करना कि तुझको इस दुखियारे से कोई लाभ होगा या नहीं, समय पर छोड़ता हूँ।

यह कहकर अमृतराय जमीन की ओर देखने लगे। दाननाथ, जो उनके बचपन के साथी थे और उनके स्वभाव से भली–भाँति परिचित थे कि जब उनको कोई धुन मालूम हुआ। बोले–अच्छा मैंने मान लिया कि अकेले लोगों ने

बड़े-बड़े काम किये हैं और आप भी अपनी जाति का कुछ न कुछ भला कर लेंगे मगर यह तो सोचिये कि आप उन लोगों को कितना दुख पहुँचायेंगे जिनका आपसे कोई नाता है। प्रेमा से बहुत जल्द आपका विवाह होनेवाला है। आप जानते हैं कि उसके माँ-बाप परले सिरे के कट्टर हिन्दू हैं। जब उनको आपकी अंग्रेजी पोशाक और खाने-पीने पर शिकायत है तो बतलाइए जब आप सामाजिक सुधार पर कमर बांधेंगे तब उनका क्या हाल होगा। शायद आपको प्रेमा से हाथ धोना पड़े।

दाननाथ का यह इशारा कलेजे में चुभ गया। दो-तीन मिनट तक वह सन्नाटे में जमीन की तरफ ताकते रहे। जब सर उठाया तो आँखे लाल थीं और उनमें आँसू डबडबाये थे। बोले-मित्र, कौम की भलाई करना साधारण काम नहीं है। यद्यपि पहले मैंने इस विषय पर ध्यान न दिया था, फिर भी मेरा दिल इस वक्त ऐसा मजबूत हो रहा है कि जाति के लिए हर एक दुख भोगने को मै कटिबद्ध हूँ। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमा से मुझको बहुत ही प्रेम था। मैं उस पर जान देता था और अगर कोई समय ऐसा आता कि मुझको उसका पति बनने का आनंद मिलता तो मैं साबित करता कि प्रेम इसको कहते हैं। मगर अब प्रेमा की मोहनी मूरत मुझ पर अपना जादू नहीं चला सकती। जो देश और जाति के नाम पर बिक गया उसके दिल में कोई दूसरी चीज जगह नहीं पा सकती। देखिए यह वह फोटो है, जो अब तक बराबर मेरे सीने से लगा रहता था। आज इससे भी अलग होता हूँ यह कहते-कहते तसवीर जेब से निकली और उसके पुरजे-पुरजे कर डाले, 'प्रेमा को जब मालूम होगा कि अमृतराय अब जाति पर जान देने लगा, उसके दिल में अब किसी नवयौवना की जगह नहीं रही तो वह मुझे क्षमा कर देगी।

दाननाथ ने अपने दोस्त के हाथों से तसवीर छीन लेना चाही। मगर न पा सके। बोले-अमृतराय बड़े शोक की बात है कि तुमने उस सुन्दरी की तसवीर की यह दशा की जिसको तुम खूब जानते हो कि तुम पर मोहित है। तुम कैसे निठुर हो। यह वही सुंदरी है जिससे शादी करने का तुम्हारे वैकुंठवासी पिता ने आग्रह किया था और तुमने खुद भी कई बार बात हारी। क्या तुम नहीं जानते कि विवाह का समय अब बहुत निकट आ गया है। ऐसे वक्त में तुम्हारा इस तरह मुँह मोड़ लेना उस बेचारी के लिए बहुत ही शोकदायक होगा।

इन बातों को सुनकर अमृतराय का चेहरा बहुत मलिन हो गया। शायद वे इस तरह तस्वीर के फाड़ देने का कुछ पछतावा करने लगे। मगर जिस बात पर अड़ गये थे उस पर अड़े ही रहे। इन्हीं बातों में सूर्य अस्त हो गया। अँधेरा छा

गया। दाननाथ उठ खड़े हुए। अपनी बाइसिकिल सँभाली और चलते-चलते यह कहा-मिस्टर राय। खूब सोच लो। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। आओ आज तुमको गंगा की सैर करा लायें। मैंने एक बजरा किराये पर ले रक्खा है। उस पर चाँदनी रात में बड़ी बहार रहेगी।

अमृतराय-इस समय आप मुझको क्षमा कीजिए। फिर मिलूँगा।

दाननाथ तो यह बातचीत करके अपने मकान को रवाना हुए और अमृतराय उसी अँधेरे में, बड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे। वह नहीं मालूम क्या सोच रहे थे। जब अँधेरा अधिक हुआ तो वह जमीन पर बैठ गये। उन्होंने उस तसवीर के पुर्जे सब एक-एक करके चुन लिये। उनको बड़े प्यार से सीने में लगा लिया और कुछ सोचते हुए कमरे में चले गए।

बाबू अमृतराय शहर के प्रतिष्ठित रईसों में समझे जाते थे। वकालत का पेशा कई पुश्तों से चला आता था। खुद भी वकालत पास कर चुके थे। और यद्यपि वकालत अभी तक चमकी न थी, मगर बाप-दादे ने नाम ऐसा कमाया था कि शहर के बड़े-बड़े रईस भी उनका दाब मानते थे। अंग्रेजी कालिज में इनकी शिक्षा हुई थी और यह अंग्रेजी सभ्यता के प्रेमी थे। जब तक बाप जीते थे तब तक कोट-पतलून पहनते तनिक डरते थे। मगर उनका देहांत होते ही खुल पड़े। ठीक नदी के समीप एक सुंदर स्थान पर कोठी बनवायी। उसको बहुत कुछ खर्च करके अंग्रेजी रीति पर सजाया। और अब उसी में रहते थे। ईश्वर की कृपा से किसी चीज की कमी न थी। धन-द्रव्य, गाड़ी-घोड़े सभी मौजूद थे।

अमृतराय को किताबों से बहुत प्रेम था। मुमकिन न था कि नयी किताब प्रकाशित हो और उनके पास न आवे। उत्तम कलाओं से भी उनकी तबीयत को बहुत लगाव था। गान-विद्या पर तो वे जान देते थे। गो कि वकालत पास कर चुके थे मगर अभी वह विवाह नहीं हुआ था। उन्होंने ठान लिया था कि जब वह वकालत खूब न चलने लगेगी तब तक विवाह न करूँगा। उस शहर के रईस लाला बदरीप्रसाद साहब उनको कई साल से अपनी इकलौती लड़की प्रेमा के वास्ते, चुन बैठे थे। प्रेमा अति सुंदर लड़की थी और पढ़ने लिखने, सीने पिरोने में निपुण थी। अमृतराय के इशारे से उसको थोड़ी सही अंग्रेजी भी पढ़ा दी गयी थी जिसने उसके स्वभाव में थोड़ी-सी स्वतंत्रता पैदा कर दी थी। मुंशी जी ने बहुत कहने-सुनने से दोनो प्रेमियों को चिट्ठी पत्री लिखने की आज्ञा दे दी थी। और शायद आपस में तसवीरों की भी अदला-बदली हो गये थी।

बाबू दाननाथ अमृतराय के बचपन के साथियों में से थे। कालिज में भी दोनों का साथ रहा। वकालत भी साथ पास की और दो मित्रों में जैसी सच्ची प्रीति हो सकती हैं वह उनमें थी। कोई बात ऐसी न थी जो एक-दूसरे के लिए उठा रखे। दाननाथ ने एक बार प्रेमा को महताबी पर खड़े देख लिया था। उसी वक्त से वह दिल में प्रेमा की पूजा किया करता था। मगर यह बात कभी उसकी जबान पर नहीं आयी। वह दिल ही दिल में घुटकर रह जाता। सैकड़ों बार उसकी स्वार्थ दृष्टि ने उसे उभारा था कि तू कोई चाल चलकर बदरीप्रसाद का मन अमृतराय से फेर दे, परंतु उसने हर बार इस कमीनेपन के ख्याल को दबाया था। वह स्वभाव का बहुत निर्मल और आचरण का बहुत शुद्व था। वह मर जाना पसंद करता मगर किसी को हानि पहुँचाकर अपना मनोरथ कदापि पूरा नहीं कर सकता था। यह भी न था कि वह केवल दिखाने के लिए अमृतराय से मेल रखता हो और दिल में उनसे जलता हो। वह उनके साथ सच्चे मित्र भाव का बर्ताव करता था।

आज भी, जब अमृतराय ने उससे अपने इरादे जाहिर किये तब उसने सच्चे दिल से उनको समझाकर ऊँच नीच सुझाया। मगर इसका जो कुछ असर हुआ हम पहले दिखा चुके हैं। उसने साफ साफ कह दिया कि अगर तुम रिर्फामरों की मंडली में मिलोगे तो प्रेमा से हाथ धोना पड़ेगा। मगर अमृतराय ने एक न सुनी। मित्र का जो धर्म है वह दाननाथ ने पूरा कर दिया। मगर जब उसने देखा कि यह अपने अनुष्ठान पर अड़े ही रहेगें तो उसको कोई वजह न मालूम हुई कि मैं यह सब बातें बदरी प्रसाद से बयान करके क्यों न प्रेमा का पति बनने का उद्योग करूँ। यहां से वह यही सब बातें सोचते-विचारते घर पर आये। कोट-पतलून उतार दिया और सीधे सादे कपड़े पहिन मुंशी बदरीप्रसाद के मकान को रवाना हुए। इस वक्त उसके दिल की जो हालत हो रही थी, बयान नहीं की जा सकती। कभी यह विचार आता कि मेरा इस तरह जाना, लोगों को मुझसे नाराज न कर दे। मुझे लोग स्वार्थी न समझने लगें। फिर सोचता कि कहीं अमृतराय अपना इरादा पलट दें और आश्चर्य नहीं कि ऐसा ही हो, तो मैं कहीं मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा। मगर यह सोचते सोचते जब प्रेमा की मोहनी मूरत आँख के सामने आ गयी। तब यह सब शंकाए दूर हो गईं और वह बदरीप्रसाद के मकान पर बातें करते दिखायी दिये।

12

वरदान

विन्याचल पर्वत मध्यरात्रि के निविड़ अन्धकार में काल देव की भांति खड़ा था। उस पर उगे हुए छोटे-छोटे वृक्ष इस प्रकार दष्टिगोचर होते थे, मानो ये उसकी जटाएं हैं और अष्टभुजा देवी का मन्दिर जिसके कलश पर श्वेत पताकाएं वायु की मन्द-मन्द तरंगों में लहरा रही थीं, उस देव का मस्तक है मंदिर में एक झिलमिलाता हुआ दीपक था, जिसे देखकर किसी धुंधले तारे का मान हो जाता था।

अर्धरात्रि व्यतीत हो चुकी थी। चारों और भयावह सन्नाटा छाया हुआ था। गंगाजी की काली तरंगें पर्वत के नीचे सुखद प्रवाह से बह रही थीं। उनके बहाव से एक मनोरंजक राग की ध्वनि निकल रही थी। ठौर-ठौर नावों पर और किनारों के आस-पास मल्लाहों के चूल्हों की आंच दिखायी देती थी। ऐसे समय में एक श्वेत वस्त्रधारिणी स्त्री अष्टभुजा देवी के सम्मुख हाथ बांधे बैठी हुई थी। उसका प्रौढ़ मुखमण्डल पीला था और भावों से कुलीनता प्रकट होती थी। उसने देर तक सिर झुकाये रहने के पश्चात कहा।

'माता! आज बीस वर्ष से कोई मंगलवार ऐसा नहीं गया जबकि मैंने तुम्हारे चरणों पर सिर न झुकाया हो। एक दिन भी ऐसा नहीं गया जबकि मैंने तुम्हारे चरणों का ध्यान न किया हो। तुम जगतारिणी महारानी हो। तुम्हारी इतनी सेवा करने पर भी मेरे मन की अभिलाषा पूरी न हुई। मैं तुम्हें छोड़कर कहां जाऊ?'

'माता। मैंने सैकड़ों व्रत रखे, देवताओं की उपासनाएं कीं', तीर्थयागाएं कीं, परन्तु मनोरथ पूरा न हुआ। तब तुम्हारी शरण आयी। अब तुम्हें छोड़कर कहां जाऊं? तुमने सदा अपने भक्तों की इच्छाएं पूरी की हैं। क्या मैं तुम्हारे दरबार से निराश हो जाऊं? '

सुवामा इसी प्रकार देर तक विनती करती रही। अकस्मात उसके चित्त पर अचेत करने वाले अनुराग का आक्रमण हुआ। उसकी आंखें बन्द हो गयीं और कान में ध्वनि आयी

'सुवामा! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ। मांग, क्या मांगती हैं?

सुवामा रोमांचित हो गयी। उसका हृदय धड़कने लगा। आज बीस वर्ष के पश्चात महारानी ने उसे दर्शन दिये। वह कांपती हुई बोली 'जो कुछ मांगूंगी, वह महारानी देंगी'?

'हां, मिलेगा।'

'मैंने बड़ी तपस्या की है अतएव बड़ा भारी वरदान मांगूगी।'

'क्या लेगी कुबेर का धन'?

'नहीं।'

'इद् का बल।'

'नहीं।'

'सरस्वती की विद्या? '

'नहीं।'

'फिर क्या लेगी? '

'संसार का सबसे उत्तम पदार्थ।'

'वह क्या है? '

'सपूत बेटा।'

'जो कुल का नाम रोशन करे? '

'नहीं।'

'जो माता-पिता की सेवा करे? '

'नहीं।'

'जो विद्वान और बलवान हो? '

'नहीं।'

'फिर सपूत बेटा किसे कहते हैं? '

'जो अपने देश का उपकार करे।'

'तेरी बुद्वि को धन्य है। जा, तेरी इच्छा पूरी होगी।'

वैराग्य

मुंशी शालिग्राम बनारस के पुराने रईस थे। जीवन-वृति वकालत थी और पैतृक सम्पत्ति भी अधिक थी। दशाश्वमेध घाट पर उनका वैभवान्वित गृह आकाश को स्पर्श करता था। उदार ऐसे कि पचीस-तीस हजार की वार्षिक आय भी व्यय को पूरी न होती थी। साधु-ब्राहमणों के बड़े श्रद्वावान थे। वे जो कुछ कमाते, वह स्वयं ब्रह्मभोज और साधुओं के भंडारे एवं सत्यकार्य में व्यय हो जाता। नगर में कोई साधु-महात्मा आ जाये, वह मुंशी जी का अतिथि। संस्कृत के ऐसे विद्वान कि बड़े-बड़े पंडित उनका लोहा मानते थे वेदान्तीय सिद्वान्तों के वे अनुयायी थे। उनके चित्त की प्रवृति वैराग्य की ओर थी।

मुंशीजी को स्वभावत: बच्चों से बहुत प्रेम था। मुहल्ले-भर के बच्चे उनके प्रेम-वारि से अभिसिंचित होते रहते थे। जब वे घर से निकलते थे तब बाला कों का एक दल उसके साथ होता था। एक दिन कोई पाषाण-हृदय माता अपने बच्चे को मार रही थी। लड़का बिलख-बिलखकर रो रहा था। मुंशी जी से न रहा गया। दौड़े, बच्चे को गोद में उठा लिया और स्त्री के सम्मुख अपना सिर झुक दिया। स्त्री ने उस दिन से अपने लड़के को न मारने की शपथ खा ली जो मनुष्य दूसरों के बालकों का ऐसा स्नेही हो, वह अपने बालक को कितना प्यार करेगा, सो अनुमान से बाहर है। जब से पुत्र पैदा हुआ, मुंशी जी संसार के सब कार्यो से अलग हो गये। कहीं वे लड़के को हिंडोल में झूला रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। कहीं वे उसे एक सुन्दर सैरगाड़ी में बैठाकर स्वयं खींच रहे हैं। एक क्षण के लिए भी उसे अपने पास से दूर नहीं करते थे। वे बच्चे के स्नेह में अपने को भूल गये थे।

सुवामा ने लड़के का नाम प्रतापचन्द्र रखा था। जैसा नाम था वैसे ही उसमें गुण भी थे। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली और रूपवान था। जब वह बातें करता, सुनने वाले मुग्ध हो जाते। भव्य ललाट दमक-दमक करता था। अंग ऐसे पुष्ट कि द्विगुण डीलवाले लड़कों को भी वह कुछ न समझता था। इस अल्प आयु ही में उसका मुख-मण्डल ऐसा दिव्य और ज्ञानमय था कि यदि वह अचानक किसी अपरिचित मनुष्य के सामने आकर खड़ा हो जाता तो वह विस्मय से ताकने लगता था।

इस प्रकार हंसते-खेलते छ: वर्ष व्यतीत हो गये। आनंद के दिन पवन की भांति सन्न-से निकल जाते हैं और पता भी नहीं चलता। वे दुर्भाग्य के दिन और विपत्ति की रातें हैं, जो काटे नहीं कटतीं। प्रताप को पैदा हुए अभी कितने दिन

हुए। बधाई की मनोहारिणी ध्वनि कानों में गूंज रही थी छठी वर्षगांठ आ पहुँची। छठे वर्ष का अंत दुर्दिनों का श्रीगणेश था। मुंशी शालिग्राम का सांसारिक सम्बन्ध केवल दिखावटी था। वह निष्काम और निस्सम्बद्व जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि प्रकट वह सामान्य संसारी मनुष्यों की भांति संसार के क्लेशों से क्लेशित और सुखों से हर्षित दृष्टिगोचर होते थे, तथापि उनका मन सर्वथा उस महान और आनन्दपूर्व शांति का सुख-भोग करता था, जिस पर दु:ख के झोंकों और सुख की थपकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

माघ का महीना था। प्रयाग में कुम्भ का मेला लगा हुआ था। रेलगाड़ियों में यात्री रुई की भांति भर-भरकर प्रयाग पहुँचाये जाते थे। अस्सी-अस्सी बरस के वृद्व-जिनके लिए वर्षों से उठना कठिन हो रहा था- लंगड़ाते, लाठियां टेकते मंजिल तै करके प्रयागराज को जा रहे थे। बड़े-बड़े साधु-महात्मा, जिनके दर्शनों की इच्छा लोगों को हिमालय की अंधेरी गुफाओं में खींच ले जाती थी, उस समय गंगाजी की पवित्र तरंगों से गले मिलने के लिए आये हुए थे। मुंशी शालिग्राम का भी मन ललचाया। सुवाम से बोले- कल स्नान है।

सुवामा - सारा मुहल्ला सूना हो गया। कोई मनुष्य नहीं दीखता।

मुंशी - तुम चलना स्वीकार नहीं करती, नहीं तो बड़ा आनंद होता। ऐसा मेला तुमने कभी नहीं देखा होगा।

सुवामा - ऐसे मेला से मेरा जी घबराता है।

मुंशी - मेरा जी तो नहीं मानता। जब से सुना कि स्वामी परमानन्द जी आये हैं तब से उनके दर्शन के लिए चित्त उद्विग्न हो रहा है।

सुवामा पहले तो उनके जाने पर सहमत न हुई, पर जब देखा कि यह रोके न रुकेंगे, तब विवश होकर मान गयी। उसी दिन मुंशी जी ग्यारह बजे रात को प्रयागराज चले गये। चलते समय उन्होंने प्रताप के मुख का चुम्बन किया और स्त्री को प्रेम से गले लगा लिया। सुवामा ने उस समय देखा कि उनके नेत्र सजल हैं। उसका कलेजा धक से हो गया। जैसे चैत्र मास में काली घटाओं को देखकर कृषक का हृदय कॉपने लगता है, उसी भौति मुंशीजी ने नेत्रों का अश्रुपूर्ण देखकर सुवामा कम्पित हुई। अश्रु की वे बूंदें वैराग्य और त्याग का अगाघ समुद्र थीं। देखने में वे जैसे नन्हे जल के कण थीं, पर थीं वे कितनी गंभीर और विस्तीर्ण।

उधर मुंशी जी घर के बाहर निकले और इधर सुवामा ने एक ठंडी श्वास ली। किसी ने उसके हृदय में यह कहा कि अब तुझे अपने पति के दर्शन न होंगे। एक दिन बीता, दो दिन बीते, चौथा दिन आया और रात हो गयी, यहां तक कि

पूरा सप्ताह बीत गया, पर मुंशी जी न आये। तब तो सुवामा को आकुलता होने लगी। तार दिये, आदमी दौड़ाये, पर कुछ पता न चला। दूसरा सप्ताह भी इसी प्रयत्न में समाप्त हो गया। मुंशी जी के लौटने की जो कुछ आशा शेष थी, वह सब मिट्टी में मिल गयी। मुंशी जी का अदृश्य होना उनके कुटुम्ब मात्र के लिए ही नहीं, वरन सारे नगर के लिए एक शोकपूर्ण घटना थी। हाटों में दुकानों पर, हथाइयों में अर्थात चारों ओर यही वार्तालाप होता था। जो सुनता, वही शोक करता- क्या धनी, क्या निर्धन। यह शोक सबको था। उसके कारण चारों और उत्साह फैला रहता था। अब एक उदासी छा गयी। जिन गलियों से वे बालकों का झुण्ड लेकर निकलते थे, वहां अब धूल उड़ रही थी। बच्चे बराबर उनके पास आने के लिए रोते और हठ करते थे। उन बेचारों को यह सुध कहां थी कि अब प्रमोद सभा भंग हो गयी है। उनकी माताएं ऑचल से मुख ढांप-ढांपकर रोतीं मानों उनका सगा प्रेमी मर गया है।

वैसे तो मुंशी जी के गुप्त हो जाने का रोना सभी रोते थे। परन्तु सब से गाढ़े आंसू, उन आढ़तियों और महाजनों के नेत्रों से गिरते थे, जिनके लेने-देने का लेखा अभी नहीं हुआ था। उन्होंने दस-बारह दिन जैसे-जैसे करके काटे, पश्चात एक-एक करके लेखा के पत्र दिखाने लगे। किसी ब्रह्मभोज में सौ रुपये का घी आया है और मूल्य नहीं दिया गया। कहीं से दो-सौ का मैदा आया हुआ है। बजाज का सहस्रों का लेखा है। मन्दिर बनवाते समय एक महाजन के बीस सहस्र ऋण लिया था, वह अभी वैसे ही पड़ा हुआ है लेखा की तो यह दशा थी। सामग्री की यह दशा कि एक उत्तम गृह और तत्सम्बन्धिनी सामग्रियों के अतिरिक्त कोई वस्तु न थी, जिससे कोई बड़ी रकम खड़ी हो सके। भू-सम्पत्ति बेचने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था, जिससे धन प्राप्त करके ऋण चुकाया जाए।

बेचारी सुवामा सिर नीचा किए हुए चटाई पर बैठी थी और प्रतापचन्द्र अपने लकड़ी के घोड़े पर सवार आंगन में टख-टख कर रहा था कि पण्डित मोटेराम शास्त्री - जो कुल के पुरोहित थे - मुस्कराते हुए भीतर आये। उन्हें प्रसन्न देखकर निराश सुवामा चौंककर उठ बैठी कि शायद यह कोई शुभ समाचार लाये हैं। उनके लिए आसन बिछा दिया और आशा-भरी दृष्टि से देखने लगी। पण्डितजी आसान पर बैठे और सुंघनी सूंघते हुए बोले तुमने महाजनों का लेखा देखा?

सुवामा ने निराशापूर्ण शब्दों में कहा-हां, देखा तो।

मोटेराम-रकम बड़ी गहरी है। मुंशीजी ने आगा-पीछा कुछ न सोचा, अपने यहां कुछ हिसाब-किताब न रखा।

सुवामा–हां अब तो यह रकम गहरी है, नहीं तो इतने रुपये क्या, एक–एक भोज में उठ गये हैं।

मोटेराम–सब दिन समान नहीं बीतते।

सुवामा–अब तो जो ईश्वर करेगा सो होगा, क्या कर सकती हूँ।

मोटेराम– हां ईश्वर की इच्छा तो मूल ही है, मगर तुमने भी कुछ सोचा है?

सुवामा–हां गांव बेच डालूंगी।

मोटेराम–राम–राम। यह क्या कहती हो? भूमि बिक गयी, तो फिर बात क्या रह जायेगी?

मोटेराम– भला, पृथ्वी हाथ से निकल गयी, तो तुम लोगों का जीवन निर्वाह कैसे होगा?

सुवामा–हमारा ईश्वर मालिक है। वही बेड़ा पार करेगा।

मोटेराम यह तो बड़े अफसोस की बात होगी कि ऐसे उपकारी पुरुष के लड़के–बाले दुःख भोगें।

सुवामा–ईश्वर की यही इच्छा है, तो किसी का क्या बस?

मोटेराम–भला, मैं एक युक्ति बता दूं कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

सुवामा– हां, बतलाइए बड़ा उपकार होगा।

मोटेराम–पहले तो एक दरख्वास्त लिखवाकर कलक्टर साहिब को दे दो कि मालगुलारी माफ की जाये। बाकी रुपये का बन्दोबस्त हमारे ऊपर छोड़ दो। हम जो चाहेंगे करेंगे, परन्तु इलाके पर आंच न आने पायेगी।

सुवामा–कुछ प्रकट भी तो हो, आप इतने रुपये कहां से लायेंगे?

मोटेराम– तुम्हारे लिए रुपये की क्या कमी है? मुंशी जी के नाम पर बिना लिखा–पढ़ी के पचास हजार रुपये का बन्दोस्त हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। सच तो यह है कि रुपया रखा हुआ है, तुम्हारे मुंह से 'हां' निकलने की देरी है।

सुवामा– नगर के भद्र–पुरुषों ने एकत्र किया होगा?

मोटेराम– हां, बात–की–बात में रुपया एकत्र हो गया। साहब का इशारा बहुत था।

सुवामा–कर–मुक्ति के लिए प्रार्थना–पं मुझसे न लिखवाया जाएगा और मैं अपने स्वामी के नाम ऋण ही लेना चाहती हूँ। मैं सबका एक–एक पैसा अपने गांवों ही से चुका दूंगी।

यह कहकर सुवामा ने रुखाई से मुंह फेर लिया और उसके पीले तथा शोकान्वित बदन पर क्रोध-सा झलकने लगा। मोटेराम ने देखा कि बात बिगड़ना चाहती हैं, तो संभलकर बोले- अच्छा, जैसे तुम्हारी इच्छा। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। मगर यदि हमने तुमको किसी प्रकार का दु:ख उठाते देखा, तो उस दिन प्रलय हो जायेगा। बस, इतना समझ लो।

सुवामा-तो आप क्या यह चाहते हैं कि मैं अपने पति के नाम पर दूसरों की कृतज्ञता का भार रखूं? मैं इसी घर में जल मरुंगी, अनशन करते-करते मर जाऊंगी, पर किसी की उपकृत न बनूंगी।

मोटेराम-छि:छि:। तुम्हारे ऊपर निहोरा कौन कर सकता है? कैसी बात मुख से निकालती हैं? ऋण लेने में कोई लाज नहीं है। कौन रईस है जिस पर लाख दो-लाख का ऋण न हो?

सुवामा- मुझे विश्वास नहीं होता कि इस ऋण में निहोरा है।

मोटेराम- सुवामा, तुम्हारी बुद्वि कहां गयी? भला, सब प्रकार के दु:ख उठा लोगी पर क्या तुम्हें इस बालक पर दया नहीं आती?

मोटेराम की यह चोट बहुत कड़ी लगी। सुवामा सजलनयना हो गई। उसने पुत्र की ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखा। इस बच्चे के लिए मैंने कौन-कौन सी तपस्या नहीं की? क्या उसके भाग्य में दु:ख ही बदा है, जो अमोला जलवायु के प्रखर झोंकों से बचाता जाता था, जिस पर सूर्य की प्रचण्ड किरणें न पड़ने पाती थीं, जो स्नेह-सुधा से अभी सिंचित रहता था, क्या वह आज इस जलती हुई धूप और इस आग की लपट में मुरझायेगा? सुवामा कई मिनट तक इसी चिन्ता में बैठी रही। मोटेराम मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि अब सफलीभूत हुआ। इतने में सुवामा ने सिर उठाकर कहा-जिसके पिता ने लाखों को जिलाया-खिलाया, वह दूसरों का आश्रित नहीं बन सकता। यदि पिता का धर्म उसका सहायक होगा, तो स्वयं दस को खिलाकर खायेगा। लड़के को बुलाते हुए 'बेटा। तनिक यहां आओ। कल से तुम्हारी मिठाई, दूध, घी सब बन्द हो जायेंगे। रोओगे तो नहीं?' यह कहकर उसने बेटे को प्यार से बैठा लिया और उसके गुलाबी गालों का पसीना पोंछकर चुम्बन कर लिया।

प्रताप- क्या कहा? कल से मिठाई बन्द होगी? क्यों क्या हलवाई की दुकान पर मिठाई नहीं है?

सुवामा-मिठाई तो है, पर उसका रुपया कौन देगा?

प्रताप- हम बड़े होंगे, तो उसको बहुत-सा रुपया देंगे। चल, टख। टख। देख मां, कैसा तेज घोड़ा है।

सुवामा की आंखों में फिर जल भर आया। 'हा हन्त। इस सौन्दर्य और सुकुमारता की मूर्ति पर अभी से दरिद्रता की आपत्तियां आ जायेंगी। नहीं नहीं, मैं स्वयं सब भोग लूंगी। परन्तु अपने प्राण-प्यारे बच्चे के ऊपर आपत्ति की परछाहीं तक न आने दूंगी।' माता तो यह सोच रही थी और प्रताप अपने हठी और मुंहजोर घोड़े पर चढ़ने में पूर्ण शक्ति से लीन हो रहा था। बच्चे मन के राजा होते हैं।

अभिप्राय यह कि मोटेराम ने बहुत जाल फैलाया। विविध प्रकार का वाक्चातुर्य दिखलाया, परन्तु सुवामा ने एक बार 'नहीं करके 'हां' न की। उसकी इस आत्मरक्षा का समाचार जिसने सुना, धन्य-धन्य कहा। लोगों के मन में उसकी प्रतिष्टा दूनी हो गयी। उसने वही किया, जो ऐसे संतोषपूर्ण और उदार-हृदय मनुष्य की स्त्री को करना उचित था।

इसके पन्द्रहवें दिन इलाका नीलामा पर चढ़ा। पचास सहस्र रुपये प्राप्त हुए कुल ऋण चुका दिया गया। घर का अनावश्यक सामान बेच दिया गया। मकान में भी सुवामा ने भीतर से ऊंची-ऊंची दीवारें खिंचवा कर दो अलग-अलग खण्ड कर दिये। एक में आप रहने लगी और दूसरा भाड़े पर उठा दिया।

मुंशी संजीवनलाल, जिन्होंने सुवामा का घर भाड़े पर लिया था, बड़े विचारशील मनुष्य थे। पहले एक प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त थे, किन्तु अपनी स्वतंत्र इच्छा के कारण अफसरों को प्रसन्न न रख सके। यहां तक कि उनकी रुष्टता से विवश होकर इस्तीफा दे दिया। नौकर के समय में कुछ पूंजी एकत्र कर ली थी, इसलिए नौकरी छोड़ते ही वे ठेकेदारी की ओर प्रवृत्त हुए और उन्होंने परिश्रम द्वारा अल्पकाल में ही अच्छी सम्पत्ति बना ली। इस समय उनकी आय चार-पांच सौ मासिक से कम न थी। उन्होंने कुछ ऐसी अनुभवशालिनी बुद्वि पायी थी कि जिस कार्य में हाथ डालते, उसमें लाभ छोड़ हानि न होती थी।

मुंशी संजीवनलाल का कुटुम्ब बड़ा न था। सन्तानें तो ईश्वर ने कई दीं, पर इस समय माता-पिता के नयनों की पुतली केवल एक पुड़ी ही थी। उसका नाम वृजरानी था। वही दम्पति का जीवनाश्राम थी।

प्रतापचन्द्र और वृजरानी में पहले ही दिन से मैत्री आरंभ हो गयी। आधे घंटे में दोनों चिड़ियों की भांति चहकने लगे। विरजन ने अपनी गुड़िया, खिलौने और बाजे दिखाये, प्रतापचन्द्र ने अपनी किताबें, लेखनी और चित्र दिखाये। विरजन की माता सुशीला ने प्रतापचन्द्र को गोद में ले लिया और प्यार किया। उस दिन से वह नित्य संध्या को आता और दोनों साथ-साथ खेलते। ऐसा प्रतीत होता था कि

दोनों भाई-बहिन है। सुशीला दोनों बालकों को गोद में बैठाती और प्यार करती। घंटों टकटकी लगाये दोनों बच्चों को देखा करती, विरजन भी कभी-कभी प्रताप के घर जाती। विपत्ति की मारी सुवामा उसे देखकर अपना दुःख भूल जाती, छाती से लगा लेती और उसकी भोली-भाली बातें सुनकर अपना मन बहलाती।

एक दिन मुंशी संजीवनलाल बाहर से आये तो क्या देखते हैं कि प्रताप और विरजन दोनों दफ्तर में कुर्सियों पर बैठे हैं। प्रताप कोई पुस्तक पढ़ रहा है और विरजन ध्यान लगाये सुन रही है। दोनों ने ज्यों ही मुंशीजी को देखा उठ खड़े हुए। विरजन तो दौड़कर पिता की गोद में जा बैठी और प्रताप सिर नीचा करके एक ओर खड़ा हो गया। कैसा गुणवान बालक था। आयु अभी आठ वर्ष से अधिक न थी, परन्तु लक्षण से भावी प्रतिभा झलक रही थी। दिव्य मुखमण्डल, पतले-पतले लाल-लाल अधर, तीव्र चितवन, काले-काले भ्रमर के समान बाल उस पर स्वच्छ कपड़े मुंशी जी ने कहा- यहां आओ, प्रताप।

प्रताप धीरे-धीरे कुछ हिचकिचाता-सकुचाता समीप आया। मुंशी जी ने पितृवत् प्रेम से उसे गोद में बैठा लिया और पूछा- तुम अभी कौन-सी किताब पढ़ रहे थे।

प्रताप बोलने ही को था कि विरजन बोल उठी- बाबा। अच्छी-अच्छी कहानियां थीं। क्यों बाबा। क्या पहले चिड़ियां भी हमारी भांति बोला करती थीं।

मुंशी जी मुस्कराकर बोले-हां। वे खूब बोलती थीं।

अभी उनके मुंह से पूरी बात भी न निकलने पायी थी कि प्रताप जिसका संकोच अब गायब हो चला था, बोला- नहीं विरजन तुम्हें भुलाते हैं ये कहानिया बनायी हुई हैं।

मुंशी जी इस निर्भीकतापूर्ण खण्डन पर खूब हंसे।

अब तो प्रताप तोते की भांति चहकने लगा-स्कूल इतना बड़ा है कि नगर भर के लोग उसमें बैठ जायें। दीवारें इतनी ऊंची हैं, जैसे ताड़। बलदेव प्रसाद ने जो गेंद में हिट लगायी, तो वह आकाश में चला गया। बड़े मास्टर साहब की मेज पर हरी-हरी बनात बिछी हुई है। उस पर फूलों से भरे गिलास रखे हैं। गंगाजी का पानी नीला है। ऐसे जोर से बहता है कि बीच में पहाड़ भी हो तो बह जाये। वहां एक साधु बाबा है। रेल दौड़ती हैं सन-सन। उसका इंजिन बोलता है झक-झक। इंजिन में भाप होती हैं, उसी के जोर से गाड़ी चलती हैं। गाड़ी के साथ पेड़ भी दौड़ते दिखायी देते हैं।

इस भांति कितनी ही बातें प्रताप ने अपनी भोली-भाली बोली में कहीं विरजन चित्र की भांति चुपचाप बैठी सुन रही थी। रेल पर वह भी दो-तीन बार सवार हुई थी। परन्तु उसे आज तक यह ज्ञात न था कि उसे किसने बनाया और वह क्यों कर चलती हैं। दो बार उसने गुरुजी से यह प्रश्न किया भी था परन्तु उन्होंने यही कह कर टाल दिया कि बच्चा, ईश्वर की महिमा कोई बड़ा भारी और बलवान घोड़ा है, जो इतनी गाडियों को सन-सन खींचे लिए जाता है। जब प्रताप चुप हुआ तो विरजन ने पिता के गले हाथ डालकर कहा-बाबा। हम भी प्रताप की किताब पढ़ेंगे।

मुंशी-बेटी, तुम तो संस्कृत पढ़ती हो, यह तो भाषा है।

विरजन-तो मैं भी भाषा ही पढूंगी। इसमें कैसी अच्छी-अच्छी कहानियां हैं। मेरी किताब में तो भी कहानी नहीं। क्यों बाबा, पढ़ना किसे कहते हैं?

मुंशी जी बंगले झांकने लगे। उन्होंने आज तक आप ही कभी ध्यान नहीं दिया था कि पढ़ना क्या वस्तु है। अभी वे माथ ही खुजला रहे थे कि प्रताप बोल उठा- मुझे पढ़ते देखा, उसी को पढ़ना कहते हैं।

विरजन- क्या मैं नहीं पढ़ती? मेरे पढ़ने को पढ़ना नहीं कहतें?

विरजन सिद्वान्त कौमुदी पढ़ रही थी, प्रताप ने कहा-तुम तोते की भांति रटती हो।

13

दुनिया का सबसे अनमोल रत्न

दिलफिगार एक कँटीले पेड़ के नीचे दामन चाक किये बैठा हुआ खून के आँसू बहा रहा था। वह सौन्दर्य की देवी यानी मलका दिलफरेब का सच्चा और जान देने वाला प्रेमी था। उन प्रेमियों में नहीं, जो इत्र-फुलेल में बसकर और शानदार कपड़ों से सजकर आशिक के वेश में माशूकियत का दम भरते हैं। बल्कि उन सीधे-सादे भोले-भाले फिदाइयों में जो जंगल और पहाड़ों से सर टकराते हैं और फरियाद मचाते फिरते हैं। दिलफरेब ने उससे कहा था कि अगर तू मेरा सच्चा प्रेमी है, तो जा और दुनिया की सबसे अनमोल चीज लेकर मेरे दरबार में आ तब मैं तुझे अपनी गुलामी में कबूल करूँगी। अगर तुझे वह चीज न मिले तो खबरदार इधर रुख न करना, वर्ना सूली पर खिंचवा दूँगी। दिलफिगार को अपनी भावनाओं के प्रदर्शन का, शिकवे-शिकायत का, प्रेमिका के सौन्दर्य-दर्शन का तनिक भी अवसर न दिया गया। दिलफरेब ने ज्यों ही यह फैसला सुनाया, उसके चोबदारों ने गरीब दिलफिगार को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। और आज तीन दिन से यह आफत का मारा आदमी उसी कँटीले पेड़ के नीचे उसी भयानक मैदान में बैठा हुआ सोच रहा है कि क्या करूँ। दुनिया की सबसे अनमोल चीज मुझको मिलेगी? नामुमकिन! और वह है क्या? कारूँ का खिजाना? आबे हयात? खुसरो का ताज? जामे-जम? तख्तेताऊस? परवेज की दौलत? नहीं, यह चीजें हरगिज नहीं। दुनिया में जरूर इनसे भी महँगी, इनसे भी अनमोल चीजें मौजूद हैं मगर वह क्या हैं। कहाँ हैं? कैसे मिलेंगी? या खुदा, मेरी मुश्किल क्योंकर आसान होगी?

दिलफिगार इन्हीं खयालों में चक्कर खा रहा था और अकल कुछ काम न करती थी। मुनीर शामी को हातिम-सा मददगार मिल गया। ऐ काश कोई मेरा भी मददगार हो जाता, ऐ काश मुझे भी उस चीज का जो दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज है, नाम बतला दिया जाता! बला से वह चीज हाथ न आती मगर मुझे इतना तो मालूम हो जाता कि वह किस किस्म की चीज है। मैं घड़े बराबर मोती की खोज में जा सकता हूँ। मैं समुन्दर का गीत, पत्थर का दिल, मौत की आवाज और इनसे भी ज्यादा बेनिशान चीजों की तलाश में कमर कस सकता हूँ। मगर दुनिया की सबसे अनमोल चीज! यह मेरी कल्पना की उड़ान से बहुत ऊपर है।

आसमान पर तारे निकल आये थे। दिलफिगार यकायक खुदा का नाम लेकर उठा और एक तरफ को चल खड़ा हुआ। भूखा-प्यासा, नंगे बदन, थकन से चूर, वह बरसों वीरानों और आबादियों की खाक छानता फिरा, तलवे काँटों से छलनी हो गये, शरीर में हड्डियाँ ही हड्डियाँ दिखायी देने लगीं मगर वह चीज जो दुनिया की सबसे बेश-कीमती चीज थी, न मिली और न उसका कुछ निशान मिला।

एक रोज वह भूलता-भटकता एक मैदान में जा निकला, जहाँ हजारों आदमी गोल बाँधे खड़े थे। बीच में कई अमामे और चोगे वाले दढियल काजी अफसरी शान से बैठे हुए आपस में कुछ सलाह-मशविरा कर रहे थे और इस जमात से जरा दूर पर एक सूली खड़ी थी। दिलफिगार कुछ तो कमजोरी की वजह से कुछ यहाँ की कैफियत देखने के इरादे से ठिठक गया। क्या देखता है, कि कई लोग नंगी तलवारें लिये, एक कैदी को जिसके हाथ-पैर में जंजीरें थीं, पकड़े चले आ रहे हैं। सूली के पास पहुँचकर सब सिपाही रुक गये और कैदी की हथकड़ियाँ, बेडियाँ सब उतार ली गयीं। इस अभागे आदमी का दामन सैकड़ों बेगुनाहों के खून के छींटों से रंगीन था, और उसका दिल नेकी के खियाल और रहम की आवाज से जरा भी परिचित न था। उसे काला चोर कहते थे। सिपाहियों ने उसे सूली के तख्ते पर खड़ा कर दिया, मौत की फाँसी उसकी गर्दन में डाल दी और जल्लादों ने तख्ता खींचने का इरादा किया कि वह अभागा मुजरिम चीखिकर बोला-खुदा के वास्ते मुझे एक पल के लिए फाँसी से उतार दो ताकि अपने दिल की आखिरी आरजू निकाल लूँ। यह सुनते ही चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोग अचम्भे में आकर ताकने लगे। काजियों ने एक मरने वाले आदमी की

अंतिम याचना को रद्द करना उचित न समझा और बदनसीब पापी काला चोर जरा देर के लिए फाँसी से उतार लिया गया।

इसी भीड़ में एक खूबसूरत भोला-भोला लड़का एक छड़ी पर सवार होकर अपने पैरों पर उछल-उछल फर्जी घोड़ा दौड़ा रहा था, और अपनी सादगी की दुनिया में ऐसा मगन था कि जैसे वह इस वक्त सचमुच किसी अरबी घोड़े का शहसवार है। उसका चेहरा उस सच्ची खुशी से कमल की तरह खिला हुआ था जो चन्द दिनों के लिए बचपन ही में हासिल होती हैं और जिसकी याद हमको मरते दम तक नहीं भूलती। उसका दिल अभी तक पाप की गर्द और धूल से अछूता था और मासूमियत उसे अपनी गोद में खिला रही थी।

बदनसीब काला चोर फाँसी से उतरा। हजारों आँखें उस पर गड़ी हुई थीं। वह उस लड़के के पास आया और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगा। उसे इस वक्त वह जमाना याद आया जब वह खुद ऐसा ही भोला-भाला, ऐसा ही खुश-व-खुर्रम और दुनिया की गन्दगियों से ऐसा ही पाक साफ था। माँ गोदियों में खिलाती थी, बाप बलाएँ लेता था और सारा कुनबा जान न्योछावर करता था। आह! काले चोर के दिल पर इस वक्त बीते हुए दिनों की याद का इतना असर हुआ कि उसकी आँखों से, जिन्होंने दम तोड़ती हुई लाशों को तड़पते देखा और न झपकीं, आँसू का एक कतरा टपक पड़ा। दिलफिगार ने लपककर उस अनमोल मोती को हाथ में ले लिया और उसके दिल ने कहा-बेशक यह दुनिया की सबसे अनमोल चीज है जिस पर तख्ते ताऊस और जामेजम और आबे हयात और जरे परवेज सब न्योछावर हैं।

इस खयाल से खुश होता कामयाबी की उम्मीद में सरमस्त, दिलफिगार अपनी माशूका दिलफरेब के शहर मीनोसवाद को चला। मगर ज्यो-ज्यों मंजिलें तय होती जाती थीं उसका दिल बैठ जाता था कि कहीं उस चीज की, जिसे मैं दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज समझता हूँ, दिलफरेब की आँखों में कद्र न हुई तो मैं फाँसी पर चढ़ा दिया जाऊँगा और इस दुनिया से नामुराद जाऊँगा। लेकिन जो हो सो हो, अब तो किस्मत-आजमाई है। आखिरकार पहाड़ और दरिया तय करते शहर मीनोसवाद में आ पहुँचा और दिलफरेब की ड्योढ़ी पर जाकर विनती की कि थकान से टूटा हुआ दिलफिगार खुदा के फजल से हुक्म की तामील करके आया है, और आपके कदम चूमना चाहता है। दिलफरेब ने फौरन अपने सामने बुला भेजा और एक सुनहरे परदे की ओट से फरमाइश की कि वह अनमोल चीज पेश करो। दिलफिगार ने आशा और भय की एक विचित्र

मन:स्थिति में वह बूँद पेश की और उसकी सारी कैफियत बहुत पुरअसर लफ्जों में बयान की। दिलफरेब ने पूरी कहानी बहुत गौर से सुनी और वह भेंट हाथ में लेकर जरा देर तक गौर करने के बाद बोली–दिलफिगार, बेशक तूने दुनिया की एक बेशकीमत चीज ढूँढ़ निकाली, तेरी हिम्मत और तेरी सूझबूझ की दाद देती हूँ! मगर यह दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज नहीं, इसलिए तू यहाँ से जा और फिर कोशिश कर, शायद अब की तेरे हाथ वह मोती लगे और तेरी किस्मत में मेरी गुलामी लिखी हो। जैसा कि मैंने पहले ही बतला दिया था मैं तुझे फाँसी पर चढ़वा सकती हूँ मगर मैं तेरी जाँबख्शी करती हूँ इसलिए कि तुझमें वह गुण मौजूद हैं, जो मैं अपने प्रेमी में देखना चाहती हूँ और मुझे यकीन है कि तू जरूर कभी–न–कभी कामयाब होगा।

नाकाम और नामुराद दिलफिगार इस माशूकाना इनायत से जरा दिलेर होकर बोला–ऐ दिल की रानी, बड़ी मुद्दत के बाद तेरी ड्योढ़ी पर सजदा करना नसीब होता है। फिर खुदा जाने ऐसे दिन कब आएँगे, क्या तू अपने जान देने वाले आशिक के बुरे हाल पर तरस न खाएगी और क्या अपने रूप की एक झलक दिखाकर इस जलते हुए दिलफिगार को आने वाली सख्तयों के झेलने की ताकत न देगी? तेरी एक मस्त निगाह के नशे से चूर होकर मैं वह कर सकता हूँ जो आज तक किसी से न बन पड़ा हो।

दिलफरेब आशिक की यह चाव–भरी बातें सुनकर गुस्सा हो गयी और हुक्म दिया कि इस दीवाने को खड़े–खड़े दरबार से निकाल दो। चोबदार ने फौरन गरीब दिलफिगार को धक्के देकर यार के कूचे से बाहर निकाल दिया।

कुछ देर तक तो दिलफिगार अपनी निष्ठुर प्रेमिका की इस कठोरता पर आँसू बहाता रहा, और सोचने लगा कि कहाँ जाऊँ। मुद्दतों रास्ते नापने और जंगलों में भटकने के बाद आँसू की यह बूँद मिली थी, अब ऐसी कौन–सी चीज है जिसकी कीमत इस आबदार मोती से ज्यादा हो। हजरते खिज्र! तुमने सिकन्दर को आबेहयात के कुएँ का रास्ता दिखाया था, क्या मेरी बाँह न पकड़ोगे? सिकन्दर सारी दुनिया का मालिक था। मैं तो एक बेघरबार मुसाफिर हूँ। तुमने कितनी ही डूबती किश्तियाँ किनारे लगायी हैं, मुझ गरीब का बेड़ा भी पार करो। ऐ आलीमुकाम जिबरील! कुछ तुम्हीं इस नीमजान, दुखी आशिक पर तरस खाओ। तुम खुदा के एक खास दरबारी हो, क्या मेरी मुश्किल आसान न करोगे! गरज यह कि दिलफिगार ने बहुत फरियाद मचायी मगर उसका हाथ पकड़ने के लिए

कोई सामने न आया। आखिर निराश होकर वह पागलों की तरह दुबारा एक तरफ को चल खड़ा हुआ।

दिलफिगार ने पूरब से पच्छिम तक और उत्तर से दक्खिन तक कितने ही जंगलों और वीरानों की खाक छानी, कभी बर्फिस्तानी चोटियों पर सोया, कभी डरावनी घाटियों में भटकता फिरा मगर जिस चीज की धुन थी वह न मिली, यहाँ तक कि उसका शरीर हड्डियों का एक ढाँचा रह गया।

एक रोज वह शाम के वक्त किसी नदी के किनारे खस्ताहाल पड़ा हुआ था। बेखुदी के नशे से चौंका तो क्या देखता है कि चन्दन की एक चिता बनी हुई है और उस पर एक युवती सुहाग के जोड़े पहने सोलहों सिंगार किये बैठी हुई है। उसकी जाँघ पर उसके प्यारे पति का सर है। हजारों आदमी गोल बाँधे खड़े हैं और फूलों की बरखा कर रहे हैं। यकायक चिता में से खुद-ब-खुद एक लपट उठी। सती का चेहरा उस वक्त एक पवित्र भाव से आलोकित हो रहा था। चिता की पवित्र लपटें उसके गले से लिपट गयीं और दम-के-दम में वह फूल-सा शरीर राख का ढेर हो गया। प्रेमिका ने अपने को प्रेमी पर न्यौछावर कर दिया और दो प्रेमियों के सच्चे, पवित्र, अमर प्रेम की अन्तिम लीला आँख से ओझल हो गयी। जब सब लोग अपने घरों को लौटे तो दिलफिगार चुपके से उठा और अपने चाक-दामन कुरते में यह राख का ढेर समेट लिया और इस मुट्ठी भर राख को दुनिया की सबसे अनमोल चीज समझता हुआ, सफलता के नशे में चूर, यार के कूचे की तरफ चला। अबकी ज्यों-ज्यों वह अपनी मंजिल के करीब आता था, उसकी हिम्मतें बढ़ती जाती थीं। कोई उसके दिल में बैठा हुआ कह रहा था-अबकी तेरी जीत है और इस खयाल ने उसके दिल को जो-जो सपने दिखाए उनकी चर्चा व्यर्थ है। आखिकार वह शहर मीनोसवाद में दाखिल हुआ और दिलफरेब की ऊँची ड्योढ़ी पर जाकर खिबर दी कि दिलफिगार सुर्ख-रू होकर लौटा है और हुजूर के सामने आना चाहता है। दिलफरेब ने जाँबाज आशिक को फौरन दरबार में बुलाया और उस चीज के लिए, जो दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज थी, हाथ फैला दिया। दिलफिगार ने हिम्मत करके उसकी चाँदी जैसी कलाई को चूम लिया और मुठ्ठी भर राख को उसकी हथेली में रखकर सारी कैफियत दिल को पिघला देने वाले लफ्जों में कह सुनायी और सुन्दर प्रेमिका के होठों से अपनी किस्मत का मुबारक फैसला सुनने के लिए इन्तजार करने लगा। दिलफरेब ने उस मुठ्ठी भर राख को आँखों से लगा लिया और कुछ देर तक विचारों के सागर में डूबे रहने के बाद बोली-ऐ जान निछावर

करने वाले आशिक दिलफिगार! बेशक यह राख जो तू लाया है, जिसमें लोहे को सोना कर देने की सिफत है, दुनिया की बहुत बेशकीमति चीज है और मैं सच्चे दिल से तेरी एहसानमन्द हूँ कि तूने ऐसी अनमोल भेंट मुझे दी। मगर दुनिया में इससे भी ज्यादा अनमोल कोई चीज है, जा उसे तलाश कर और तब मेरे पास आ। मैं तहेदिल से दुआ करती हूँ कि खुदा तुझे कामयाब करे। यह कहकर वह सुनहरे परदे से बाहर आयी और माशूकाना अदा से अपने रूप का जलवा दिखाकर फिर नजरों से ओझल हो गयी। एक बिजली थी कि कौंधी और फिर बादलों के परदे में छिप गयी। अभी दिलफिगार के होश-हवास ठिकाने पर न आने पाये थे कि चोबदार ने मुलायमियत से उसका हाथ पकडकर यार के कूचे से उसको निकाल दिया और फिर तीसरी बार वह प्रेम का पुजारी निराशा के अथाह समुन्दर में गोता खाने लगा।

दिलफिगार का हियाव छूट गया। उसे यकीन हो गया कि मैं दुनिया में इसी तरह नाशाद और नामुराद मर जाने के लिए पैदा किया गया था और अब इसके सिवा और कोई चारा नहीं कि किसी पहाड़ पर चढ़कर नीचे कूद पड़ूँ, ताकि माशूक के जुल्मों की फरियाद करने के लिए एक हड्डी भी बाकी न रहे। वह दीवाने की तरह उठा और गिरता-पड़ता एक गगनचुम्बी पहाड़ की चोटी पर जा पहुँचा। किसी और समय वह ऐसे ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने का साहस न कर सकता था मगर इस जान देने के जोश में उसे वह पहाड़ एक मामूली टेकरी से ज्यादा ऊँचा न नजर आया। करीब था कि वह नीचे कूद पड़े कि हरे-हरे कपड़े पहने हुए और हरा अमामा बाँधे एक बुजुर्ग एक हाथ में तसबीह और दूसरे हाथ में लाठी लिये बरामद हुए और हिम्मत बढ़ाने वाले स्वर में बोले-दिलफिगार, नादान दिलफिगार, यह क्या बुजदिलों जैसी हरकत है! तू मुहब्बत का दावा करता है और तुझे इतनी भी खबर नहीं कि मजबूत इरादा मुहब्बत के रास्ते की पहली मंजिल है? मर्द बन और यों हिम्मत न हार। पूरब की तरफ एक देश है जिसका नाम हिन्दोस्तान है, वहाँ जा और तेरी आरजू पूरी होगी।

यह कहकर हजरते खिज्र गायब हो गये। दिलफिगार ने शुक्रिये की नमाज अदा की और ताजा हौसले, ताजा जोश और अलौकिक सहायता का सहारा पाकर खुश-खुश पहाड़ से उतरा और हिन्दोस्तान की तरफ चल पड़ा।

मुद्दतों तक काँटों से भरे हुए जंगलों, आग बरसाने वाले रेगिस्तानों, कठिन घाटियों और अलंघ्य पर्वतों को तय करने के बाद दिलफिगार हिन्द की पाक सरजमीन में दाखिल हुआ और एक ठण्डे पानी के सोते में सफर की तकलीफें

धोकर थकान के मारे नदी के किनारे लेट गया। शाम होते-होते वह एक चटियल मैदान में पहुँचा जहाँ बेशुमार अधमरी और बेजान लाशें बिना कफन के पड़ी हुई थीं। चील-कौए और वहशी दरिन्दे मरे पड़े हुए थे और सारा मैदान खून से लाल हो रहा था। यह डरावना दृश्य देखते ही दिलफिगार का जी दहल गया। या खुदा, किस मुसीबत में जान फँसी, मरने वालों का कराहना, सिसकना और एड़ियाँ रगड़कर जान देना, दरिन्दों का हड्डियों को नोचना और गोश्त के लोथड़ों को लेकर भागना, ऐसा हौलनाक सीन दिलफिगार ने कभी न देखा था। यकायक उसे ख्याल आया, यह लड़ाई का मैदान है और यह लाशें सूरमा सिपाहियों की हैं। इतने में करीब से कराहने की आवाज आयी। दिलफिगार उस तरफ फिरा तो देखा कि एक लम्बा-तड़ंगा आदमी, जिसका मर्दाना चेहरा जान निकालने की कमजोरी से पीला हो गया है, जमीन पर सर झुकाये पड़ा हुआ है। सीने से खून का फौव्वारा जारी है, मगर आबदार तलवार की मूठ पंजे से अलग नहीं हुई। दिलफिगार ने एक चीथड़ा लेकर घाव के मुँह पर रख दिया ताकि खून रुक जाए और बोला-ऐ जवाँमर्द, तू कौन है? जवाँमर्द ने यह सुनकर आँखें खोलीं और वीरों की तरह बोला-क्या तू नहीं जानता मैं कौन हूँ, क्या तूने आज इस तलवार की काट नहीं देखी? मैं अपनी माँ का बेटा और भारत का सपूत हूँ। यह कहते-कहते उसकी त्यौरियों पर बल पड़ गये। पीला चेहरा गुस्से से लाल हो गया और आबदार शमशीर फिर अपना जौहर दिखाने के लिए चमक उठी। दिलफिगार समझ गया कि यह इस वक्त मुझे दुश्मन समझ रहा है, नरमी से बोला-ऐ जवाँमर्द, मैं तेरा दुश्मन नहीं हूँ। अपने वतन से निकला हुआ एक गरीब मुसाफिर हूँ। इधर भूलता-भटकता आ निकला। बराय मेहरबानी मुझसे यहाँ की कुल कैफियत बयान कर।

यह सुनते ही घायल सिपाही बहुत मीठे स्वर में बोला-अगर तू मुसाफिर है तो आ मेरे खून से तर पहलू में बैठ जा क्योंकि यही दो अंगुल जमीन है, जो मेरे पास बाकी रह गयी है और जो सिवाय मौत के कोई नहीं छीन सकता। अफसोस है कि तू यहाँ ऐसे वक्त में आया जब हम तेरा आतिथ्य-सत्कार करने के योग्य नहीं। हमारे बाप-दादा का देश आज हमारे हाथ से निकल गया और इस वक्त हम बेवतन हैं। मगर (पहलू बदलकर) हमने हमलावर दुश्मन को बता दिया कि राजपूत अपने देश के लिए कैसी बहादुरी से जान देता है। यह आस-पास जो लाशें तू देख रहा है, यह उन लोगों की है, जो इस तलवार के घाट उतरे हैं। (मुस्कराकर) और गोया कि मैं बेवतन हूँ, मगर गनीमत है कि

दुश्मन की जमीन पर मर रहा हूँ। (सीने के घाव से चीथड़ा निकालकर) क्या तूने यह मरहम रख दिया? खून निकलने दे, इसे रोकने से क्या फायदा? क्या मैं अपने ही देश में गुलामी करने के लिए जिन्दा रहूँ? नहीं, ऐसी जिन्दगी से मर जाना अच्छा। इससे अच्छी मौत मुमकिन नहीं।

जवाँमर्द की आवाज मद्धिम हो गयी, अंग ढीले पड़ गये, खून इतना ज्यादा बहा कि खुद-ब-खुद बन्द हो गया, रह-रहकर एकाध बूँद टपक पड़ता था। आखिरकार सारा शरीर बेदम हो गया, दिल की हरकत बन्द हो गयी और आँखें मुँद गयीं। दिलफिगार ने समझा अब काम तमाम हो गया कि मरने वाले ने धीमे से कहा-भारतमाता की जय! और उसके सीने से खून का आखिरी कतरा निकल पड़ा। एक सच्चे देशप्रेमी और देशभक्त ने देशभक्ति का हक अदा कर दिया। दिलफिगार पर इस दृश्य का बहुत गहरा असर पड़ा और उसके दिल ने कहा, बेशक दुनिया में खून के इस कतरे से ज्यादा अनमोल चीज कोई नहीं हो सकती। उसने फौरन उस खून की बूँद को जिसके आगे यमन का लाल भी हेच है, हाथ में ले लिया और इस दिलेर राजपूत की बहादुरी पर हैरत करता हुआ अपने वतन की तरफ रवाना हुआ और सख्तियाँ झेलता आखिरकार बहुत दिनों के बाद रूप की रानी मलका दिलफरेब की ड्योढ़ी पर जा पहुँचा और पैगाम दिया कि दिलफिगार सुर्खरू और कामयाब होकर लौटा है और दरबार में हाजिर होना चाहता है। दिलफरेब ने उसे फौरन हाजिर होने का हुक्म दिया। खुद हस्बे मामूल सुनहरे परदे की ओट में बैठी और बोली-दिलफिगार, अबकी तू बहुत दिनों के बाद वापस आया है। ला, दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज कहाँ है?

दिलफिगार ने मेंहदी-रची हथेलियों को चूमते हुए खून का वह कतरा उस पर रख दिया और उसकी पूरी कैफियत पुरजोश लहजे में कह सुनायी। वह खामोश भी न होने पाया था कि यकायक वह सुनहरा परदा हट गया और दिलफिगार के सामने हुस्न का एक दरबार सजा हुआ नजर आया जिसकी एक-एक नाजनीन जुलेखा से बढ़कर थी। दिलफरेब बड़ी शान के साथ सुनहरी मसनद पर सुशोभित हो रही थी। दिलफिगार हुस्न का यह तिलस्म देखकर अचम्भे में पड़ गया और चित्रलिखित-सा खड़ा रहा कि दिलफरेब मसनद से उठी और कई कदम आगे बढकर उससे लिपट गयी। गानेवालियों ने खुशी के गाने शुरू किये, दरबारियों ने दिलफिगार को नजरें भेंट कीं और चाँद-सूरज को बड़ी इज्जत के साथ मसनद पर बैठा दिया। जब वह लुभावना गीत बन्द हुआ तो दिलफरेब खड़ी हो गयी और हाथ जोड़कर दिलफिगार से बोली-ऐ जाँनिसार

आशिक दिलफिगार! मेरी दुआएँ बर आयीं और खुदा ने मेरी सुन ली और तुझे कामयाब व सुर्खरू किया। आज से तू मेरा मालिक है और मैं तेरी लौंडी!

यह कहकर उसने एक रत्नजटित मंजूषा मँगायी और उसमें से एक तख्ती निकाली जिस पर सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ था–

'खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।'

14

मनुष्य का जीवन आधार क्या है

माधो नामी एक चमार जिसके न घर था, न धरती, अपनी स्त्री और बच्चों सहित एक झोंपड़े में रहकर मेहनत मजदूरी द्वारा पेट पालता था। मजूरी कम थी, अन्न महंगा था। जो कमाता था, खा जाता था। सारा घर एक ही कम्बल ओकर जाड़ों के दिन काटता था और वह कम्बल भी फटकर तारतार रह गया था। पूरे एक वर्ष से वह इस विचार में लगा हुआ था कि दूसरा वस्त्र मोल ले। पेट मारमारकर उसने तीन रुपये जमा किए थे, और पांच रुपये पास के गांव वालों पर आते थे।

एक दिन उसने यह विचारा कि पांच रुपये गांव वालों से उगाहकर वस्त्र ले आऊं। वह घर से चला, गांव में पहुँचकर वह पहले एक किसान के घर गया। किसान तो घर में नहीं था, उसकी स्त्री ने कहा कि इस समय रुपया मौजूद नहीं, फिर दे दूंगी। फिर वह दूसरे के घर पहुँचा, वहां से भी रुपया न मिला। फिर वह बनिये की दुकान पर जाकर वस्त्र उधार मांगने लगा। बनिया बोला–हम ऐसे कंगालों को उधार नहीं देते। कौन पीछे–पीछे फिरे? जाओ, अपनी राह लो।

वह निराश होकर घर को लौट पड़ा। राह में सोचने लगा–कितने अचरज की बात है कि मैं सारे दिन काम करता हूँ, उस पर भी पेट नहीं भरता। चलते समय स्त्री ने कहा था कि वस्त्र अवश्य लाना। अब क्या करुं, कोई उधार भी तो नहीं देता। किसानों ने कह दिया, अभी हाथ खाली है, फिर ले लेना। तुम्हारा तो हाथ खाली है, पर मेरा काम कैसे चले? तुम्हारे पास घर, पशु, सबकुछ है,

मेरे पास तो यह शरीर ही शरीर है। तुम्हारे पास अनाज के कोठे भरे पड़े हैं, मुझे एकएक दाना मोल लेना पड़ता है। सात दिन में तीन रुपये तो केवल रोटी में खर्च हो जाते हैं। क्या करूं, कहां जाऊं? हे भगवान! सोचता हुआ मन्दिर के पास पहुँचकर देखता क्या है कि धरती पर कोई श्वेत वस्तु पड़ी है। अंधेरा हो गया, साफ न दिखाई देता है। माधो ने समझा कि किसी ने इसके वस्त्र छीन लिये हैं, मुझसे क्या मतलब? ऐसा न हो, इस झगड़े में पड़ने से मुझ पर कोई आपत्ति खड़ी हो जाए, चल दो।

थोड़ी दूर गया था कि उसके मन में पछतावा हुआ। मैं कितना निर्दयी हूँ। कहीं यह बेचारा भूखों न मर रहा हो। कितने शर्म की बात है कि मैं उसे इस दशा में छोड़, चला जाता हूँ। वह लौट पड़ा और उस आदमी के पास जाकर खड़ा हो गया।

2

पास पहुँचकर माधो ने देखा कि वह मनुष्य भलाचंगा जवान है। केवल शीत से दु:खी हो रहा है। उस मनुष्य को आंख भरकर देखना था कि माधो को उस पर दया आ गई। अपना कोट उतारकर बोला–यह समय बातें करने का नहीं, यह कोट पहन लो और मेरे संग चलो।

मनुष्य का शरीर स्वच्छ, मुख दयालु, हाथपांव सुडौल थे। वह परसन्न बदन था। माधो ने उसे कोट पहना दिया और बोला–मित्र, अब चलो, बातें पीछे होती रहेंगी।

मनुष्य ने परेमभाव से माधो को देखा और कुछ न बोला।

माधो–तुम बोलते क्यों नहीं? यहां ठंड है, घर चलो। यदि तुम चल नहीं सकते, तो यह लो लकड़ी, इसके सहारे चलो।

मनुष्य माधो के पीछे–पीछे हो लिया।

माधो–तुम कहां रहते हो?

मनुष्य–मैं यहां का रहने वाला नहीं।

माधो–मैंने भी यही समझा था, क्योंकि यहां तो मैं सबको जानता हूँ। तुम मन्दिर के पास कैसे आ गए?

मनुष्य–यह मैं नहीं बतला सकता।

माधो–क्या तुमको किसी ने दु:ख दिया है?

मनुष्य–मुझे किसी ने दु:ख नहीं दिया, अपने कर्मों का भोग है। परमात्मा ने मुझे दंड दिया है।

माधो–निस्संदेह परमेश्वर सबका स्वामी है, परन्तु खाने को अन्न और रहने को घर तो चाहिए। तुम अब कहां जाना चाहते हो?

मनुष्य–जहां ईश्वर ले जाए।

माधो चकित हो गया। मनुष्य की बातचीत बड़ी प्रिय थी। वह ठग परतीत न होता था, पर अपना पता कुछ नहीं बताता था। माधो ने सोचा, अवश्य इस पर कोई बड़ी विपत्ति पड़ी है। बोलो–भाई, घर चलकर जरा आराम करो, फिर देखा जायेगा।

दोनों वहां से चल दिए। राह में माधो विचार करने लगा, मैं तो वस्त्र लेने आया था, यहां अपना भी दे बैठा। एक नंगा मनुष्य साथ है, क्या यह सब बातें देखकर मालती परसन्न होगी! कदापि नहीं, मगर चिन्ता ही क्या है? दया करना मनुष्य का परम धर्म है।

3

उधर माधो की स्त्री मालती उस दिन जल्दीजल्दी लकड़ी काटकर पानी लायी, फिर भोजन बनाया, बच्चों को खिलाया, आप खाया, पति के लिए भोजन अलग रखकर कुरते में टांका लगाती हुई यह विचार करने लगी–ऐसा न हो, बनिया मेरे पति को ठग ले, वह बड़ा सीधा है, किसी से छल नहीं करता, बालक भी उसे फंसा सकता है। आठ रुपये बहुत होते हैं, इतने रुपये में तो अच्छे वस्त्र मिल सकते हैं। पिछली सर्दी किस कष्ट से कटी। जाते समय उसे देर हो गई थी, परन्तु क्या हुआ, अब तक उसे आ जाना चाहिए था।

इतने में आहट हुई। मालती बाहर आयी, देखा कि माधो है। उसके साथ नंगे सिर एक मनुष्य है। माधो का कोट उसके गले में पड़ा है। पति के हाथों में कोई गठरी नहीं है, वह शर्म से सिर झुकाए खड़ा है। यह देखकर मालती का मन निराशा से व्याकुल हो गया। उसने समझा, कोई ठग है, त्योरी चढ़ाकर खड़ी हो देखने लगी कि वह क्या करता है।

माधो बोला–यदि भोजन तैयार हो तो ले आओ।

मालती जलकर राख हो गई, कुछ न बोली। चुपचाप वहीं खड़ी रही। माधो ताड़ गया कि स्त्री क्रोधग्नि में जल रही है।

माधो–क्या भोजन नहीं बनाया?

मालती–(क्रोध से) हां, बनाया है, परन्तु तुम्हारे वास्ते नहीं, तुम तो वस्त्र मोल लेने गए थे? यह क्या किया, अपना कोट भी दूसरे को दे दिया? इस ठग को कहां से लाए? यहां कोई सदाबरत थोड़े ही चलता है।

माधो–मालती, बसबस! बिना सोचेसमझे किसी को बुरा कहना उचित नहीं है। पहले पूछ तो लो कि यह कैसा .

मालती–पहले यह बताओ कि रुपये कहां फेंके?

माधो–यह लो अपने तीनों रुपये, गांव वालों ने कुछ नहीं दिया।

मालती–(रुपये लेकर) मेरे पास संसार भर के नंगेलुच्चों के लिए भोजन नहीं है।

माधो–फिर वही बात! पहले इससे पूछ तो लो, क्या कहता है।

मालती–बसबस! पूछ चुकी। मैं तो विवाह ही करना नहीं चाहती थी, तुम तो घरखोऊ हो।

माधो ने बहुतेरा समझाया वह एक न मानी। दस वर्ष के पुराने झगड़े याद करके बकवाद करने लगी, यहां तक कि क्रोध में आकर माधो की जाकेट फाड़ डाली और घर से बाहर जाने लगी। पर रास्ते में रुक गई और पति से बोली–अगर यह भलामानस होता तो नंगा न होता। भला तुम्हारी भेंट इससे कहां हुई?

माधो–बस, यही तो मैं तुमको बतलाना चाहता हूँ। यह गांव के बाहर मन्दिर के पास नंगा बैठा था। भला विचार तो कर, यह ऋतु बाहर नंगा बैठने की है? दैवगति से मैं वहां जा पहुँचा, नहीं तो क्या जाने यह मरता या जीता। हम क्या जानते हैं कि इस पर क्या विपत्ति पड़ी है। मैं अपना कोट पहनाकर इसे यहां ले आया हूँ। देख, क्रोध मत कर, क्रोध पाप का मूल है। एक दिन हम सबको यह संसार छोड़ना है।

मालती कुछ कहना चाहती थी, पर मनुष्य को देखकर चुप हो गई। वह आंखें मूंदे, घुटनों पर हाथ रखे, मौन धारण किए स्थिर बैठा था।

माधो–प्यारी! क्या तुममें ईश्वर का परेम नहीं?

यह वचन सुन, मनुष्य को देखकर मालती का चित्त तुरन्त पिघल गया, झट से उठी और भोजन लाकर उसके सामने रख दिया और बोली–खाइए।

मालती की यह दशा देखकर मनुष्य का मुखारविंद खिल गया और वह हंसा। भोजन कर लेने पर मालती बोली–तुम कहां से आये हो?

मनुष्य–मैं यहां का रहने वाला नहीं।

मालती–तुम मन्दिर के पास किस परकार पहुँचे?

मनुष्य–मैं कुछ नहीं बता सकता।

मालती–क्या किसी ने तुम्हारा माल चुरा लिया?

मनुष्य–किसी ने नहीं। परमेश्वर ने यह दंड दिया है!

मालती–क्या तुम वहां नंगे बैठे थे?

मनुष्य–हां, शीत के मारे ठिठुर रहा था। माधो ने देखकर दया की, कोट पहनाकर मुझे यहां ले आया, तुमने तरस खाकर मुझे भोजन खिला दिया। भगवान तुम दोनों का भला करे।

मालती ने एक कुरता और दे दिया। रात को जब वह अपने पति के पास जाकर लेटी तो यह बातें करने लगी–

मालती–सुनते हो?

माधो–हां।

मालती–अन्न तो चुक गया। कल भोजन कहां से करेंगे? शायद पड़ोसिन से मांगना पड़े।

माधो–जिएंगे तो अन्न भी कहीं से मिल ही जाएगा।

मालती–वह मनुष्य अच्छा आदमी मालूम होता है। अपना पता क्यों नहीं बतलाता?

माधो–क्या जानूं। कोई कारण होगा।

मालती–हम औरों को देते हैं, पर हमको कोई नहीं देता?

माधे ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, मुंह फेरकर सो गया।

4

परात:काल हो गया। माधो जागा, बच्चे अभी सोये पड़े थे। मालती पड़ोसिन से अन्न मांगने गयी थी। अजनबी मनुष्य भूमि पर बैठा आकाश की ओर देख रहा था, परन्तु उसका मुख अब परसन्न था।

माधो–मित्र, पेट रोटी मांगता है, शरीर वस्त्र, अतएव काम करना आवश्यक है। तुम कोई काम जानते हो?

मनुष्य–मैं कोई काम नहीं जानता।

माधो–अभ्यास बड़ी वस्तु है, मनुष्य यदि चाहे तो सबकुछ सीख सकता है।

मनुष्य–मैं सीखने को तैयार हूँ, आप सिखा दीजिए।

माधो–तुम्हारा नाम क्या है?

मनुष्य–मैकू।

माधो–भाई मैकू, यदि तुम अपना हाल सुनाना नहीं चाहते तो न सुनाओ, परन्तु कुछ काम अवश्य करो। जूते बनाना सीख लो और यहीं रहो।

मैकू–बहुत अच्छा।

अब माधो ने मैकू को सूत बांटना, उस पर मोम चघना, जूते सीना आदि काम सिखाना शुरू कर दिया। मैकू तीन दिन में ही ऐसे जूते बनाने लगा, मानो सदा से चमार का ही काम करता रहा हो। वह घर से बाहर नहीं निकलता था, बोलता भी बहुत कम था। अब तक वह केवल एक बार उस समय हंसा था जब मालती ने उसे भोजन कराया था, फिर वह कभी नहीं हंसा।

5

धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया। चारों ओर धूम मच गई कि माधो का नौकर मैकू जैसे पक्के मजबूत जूते बनाता है, दूसरा कोई नहीं बना सकता। माधो के पास बहुत काम आने लगा और उसकी आमदनी बहुत बढ़ गई।

एक दिन माधो और मैकू बैठे काम कर रहे थे कि एक गाड़ी आयी, उसमें से एक धनी पुरुष उतरकर झोंपड़े के पास आया। मालती ने झट से किवाड़ खोल दिए, वह भीतर आ गया।

माधो ने उठकर परणाम किया। उसने ऐसा सुन्दर पुरुष पहले कभी नहीं देखा था। वह स्वयं दुबला था, मैकू और भी दुबला और मालती तो हड्डियों का पिंजरा थी। यह पुरुष तो किसी दूसरे ही लोक का वासी जान पड़ता था-लाल मुंह, चौड़ी छाती, तनी हुई गर्दन, मानो सारा शरीर लोहे में ला हुआ है।

पुरुष-तुममें उस्ताद कौन है?

माधो-हुजूर, मैं।

पुरुष-(चमड़ा दिखाकर) तुम यह चमड़ा देखते हो?

माधो-हां, हुजूर।

पुरुष-तुम जानते हो कि यह किस जात का चमड़ा है?

माधो-महाराज, यह चमड़ा बहुत अच्छा है।

पुरुष-अच्छा, मूर्ख कहीं का! तुमने शायद ऐसा चमड़ा कभी नहीं देखा होगा। यह जर्मन देश का चमड़ा है, इसका मोल बीस रुपये है।

माधो-(भय से) भला महाराज, ऐसा चमड़ा मैं कहां से देख सकता था?

पुरुष-अच्छा, तुम इसका बूट बना सकते हो।

माधो-हां, हुजूर, बना सकता हूँ।

पुरुष-हां, हुजूर की बात नहीं, समझ लो कि चमड़ा कैसा है और बनवाने वाला कौन है। यदि साल भर के अन्दर कोई टांका उखड़ गया अथवा जूते का रूप बिगड़ गया तो तुझे बंदीखाने जाना पड़ेगा, नहीं तो दस रुपये मजूरी मिलेगी।

माधो ने मैकू की ओर कनखियों से देखकर धीरे से पूछा कि काम ले लूं? उसने कहा–हां, ले लो। माधो नाप लेने लगा।

पुरुष–देखो, नाप ठीक लेना, बूट छोटा न पड़ जाए। (मैकू की तरफ देखकर) यह कौन है?

माधो–मेरा कारीगर।

पुरुष–(मैकू से) होहो, देखो बूट एक वर्ष चलना चाहिए। पूरा एक वर्ष, कम नहीं।

मैकू का उस पुरुष की ओर ध्यान ही नहीं था। वह किसी और ही धुन में मस्त बैठा हंस रहा था।

पुरुष–(क्रोध से) मूर्ख! बात सुनता है कि हंसता है। देखो, बूट बहुत जल्दी तैयार करना, देर न होने पाए।

बाहर निकलते समय पुरुष का मस्तक द्वार से टकरा गया। माधो बोला सिर है कि लोहा, किवाड़ ही तोड़ डाला था।

मालती बोली–धनवान ही बलवान होते हैं। इस पुरुष को यमराज भी हाथ नहीं लगा सकता, और की तो बात ही क्या है?

उस आदमी के जाने के बाद माधो ने मैकू से कहा–भाई, काम तो ले लिया है, कोई झगड़ा न खड़ा हो जाए। चमड़ा बहुमूल्य है और यह आदमी बड़ा क्रोधी है, भूल न होनी चाहिए। तुम्हारा हाथ साफ हो गया है, बूट काट तुम दो, सी मैं दूंगा।

मैकू बूट काटने लगा। मालती नित्य अपने पति को बूट काटते देखा करती थी। मैकू की काट देखकर चकरायी कि वह यह कर क्या रहा है। शायद बड़े आदमियों के बूट इसी परकार काटे जाते हों, यह विचार कर चुप रह गई।

मैकू ने चमड़ा काटकर दोपहर तक स्लीपर तैयार कर लिये। माधो जब भोजन करके उठा तो देखता क्या है कि बूट की जगह स्पीलर बने रखे हैं। वह घबरा गया और मन में कहने लगा–इस मैकू को मेरे साथ रहते एक वर्ष हो गया, ऐसी भूल तो उसने कभी नहीं की। आज इसे क्या हो गया! उस पुरुष ने तो बूट बनाने को कहा था, इसने तो स्लीपर बना डाले। अब उसे क्या उत्तर दूंगा, ऐसा चमड़ा और कहां से मिल सकता है! (मैकू से–मित्र, यह तुमने क्या किया? उसने तो बूट बनाने को कहा था न! अब मेरे सिर के बाल न बचेंगे।

यह बातें हो ही रही थी कि द्वार पर एक आदमी ने आकर पुकारा। मालती ने किवाड़ खोल दिए। यह उस धनी आदमी का वही नौकर था, जो उसके साथ यहां आया था। उसने आते ही कहा–रामराम, तुमने बूट बना तो नहीं डाले?

माधो–हां, बना रहा हूँ।

नौकर–मेरे स्वामी का देहान्त हो गया, अब बूट बनाना व्यर्थ है।

माधो–अरे!

नौकर–वह तो घर तक भी पहुँचने नहीं पाये, गाड़ी में ही पराण त्याग दिए। स्वामिनी ने कहा है कि उस चमड़े के स्लीपर बना दो।

माधो–(परसन्न होकर) यह लो स्लीपर।

आदमी स्लीपर लेकर चलता बना।

6

मैकू को माधो के साथ रहते–रहते छः वर्ष बीत गए। अब तक वह केवल दो बार हंसा था, नहीं तो चुपचाप बैठा अपना काम किए जाता था। माधो उस पर अति परसन्न था और डरता रहता था कि कहीं भाग न जाए। इस भय से फिर माधो ने उससे पता–बता कुछ नहीं पूछा।

एक दिन मालती चूल्हे में आग जल रही थी, बालक आंगन में खेल रहे थे, माधो और मैकू बैठे जूते बना रहे थे कि एक बालक ने आकर कहा–चाचा मैकू, देखो, वह स्त्री दो लड़कियां संग लिये आ रही है।

मैकू ने देखा कि एक स्त्री चादर ओड़े, छोटी–छोटी कन्याएं संग लिए चली आ रही है। कन्याओं का एक–सा रंगरूप है, भेद केवल यह है कि उनमें एक लंगड़ी है। बुयि भीतर आयी तो माधो ने पूछा–माई, क्या काम है?

उसने कहा–इन लड़कियों के जूते बना दो।

माधो बोला–बहुत अच्छा।

वह नाप लेने लगा तो देखा कि मैकू इन लड़कियों को इस परकार ताक रहा है, मानो पहले कहीं देखा है।

बुयि–इस लड़की का एक पांव लुंजा है, एक नाप इसका ले लो। बाकी तीन पैर एक जैसे हैं। ये लड़कियां जुड़वां हैं।

माधो–(नाप लेकर) यह लंगड़ी कैसे हो गई, क्या जन्म से ही ऐसी है?

बुयि–नहीं, इसकी माता ने ही इसकी टांग कुचल दी थी।

मालती–तो क्या तुम इनकी माता नहीं हो?

बुयि–नहीं, बहन, न इनकी माता हूँ, न सम्बन्धी। ये मेरी कन्याएं नहीं। मैंने इन्हें पाला है।

मालती–तिस पर भी तुम इन्हें बड़ा प्यार करती हो?

बुयि–प्यार क्यों न करूं, मैंने अपना दूध पिला–पिलाकर इन्हें बड़ा किया है। मेरा अपना भी बालक था, परन्तु उसे परमात्मा ने ले लिया। मुझे इनके साथ उससे भी अधिक परेम है।

मालती–तो ये किसकी कन्याएं हैं?

बुयि–छह वर्ष हुए कि एक सप्ताह के अंदर इनके माता–पिता का देहांत हो गया। पिता की मंगल के दिन मृत्यु हुई, माता की शुक्रवार को। पिता के मरने के तीन दिन पीछे ये पैदा हुईं। इनके मां–बाप मेरे पड़ोसी थे। इनका पिता लकड़हारा था। जंगल में लकड़ियां काटते–काटते वृक्ष के नीचे दबकर मर गया। उसी सप्ताह में इनका जन्म हुआ। जन्म होते ही माता भी चल बसी। दूसरे दिन जब मैं उससे मिलने गयी तो देखा कि बेचारी मरी पड़ी है। मरते समय करवट लेते हुए इस कन्या की टांग उसके नीचे दब गई। गांव वालों ने उसका दाहकर्म किया। इनके मातापिता रंक थे, कौड़ी पास न थी। सब लोग सोचने लगे कि कन्याओं का कौन पाले। उस समय वहां मेरी गोद में दो महीने का बालक था। सबने यही कहा कि जब तक कोई परबन्ध न हो, तुम्हीं इनको पालो। मैंने इन्हें संभाल लिया। पहले–पहल मैं इस लंगड़ी को दूध नहीं पिलाया करती थी, कयोंकि मैं समझती थी कि यह मर जायेगी, पर फिर मुझे इस पर दया आ गई और इसे भी दूध पिलाने लगी। उस समय परमात्मा की कृपा से मेरी छाती में इतना दूध था कि तीनों बालकों को पिलाकर भी बह निकलता था। मेरा बालक मर गया, ये दोनों पल गईं। हमारी दशा पहले से अब बहुत अच्छी है। मेरा पति एक बड़े कारखाने में नौकर है। मैं इन्हें प्यार कैसे न करुं, ये तो मेरा जीवनआधार हैं।

यह कहकर बुयि ने दोनों लड़कियों को छाती से लगा लिया।

मालती–सत्य है, मनुष्य माता–पिता के बिना जी सकता है, परन्तु ईश्वर के बिना जीता नहीं रह सकता।

ये बातें हो रही थीं कि सारा झोंपड़ा परकाशित हो गया। सबने देखा कि मैकू कोने में बैठा हंस रहा है।

7

बुयि लड़कियों को लेकर बाहर चली गयी, तो मैकू ने उठकर माधो और मालती को परणाम किया और बोला–स्वामी, अब मैं विदा होता हूँ। परमात्मा ने मुझ पर दया की। यदि कोई भूलचूक हुई हो तो क्षमा करना।

माधो और मालती ने देखा कि मैकू का शरीर तेजोमय हो रहा है।

माधो दंडवत करके बोला–मैं जान गया कि तुम साधारण मनुष्य नहीं। अब मैं तुम्हें नहीं रख सकता, न कुछ पूछ सकता हूँ। केवल यह बता दो कि जब मैं तुम्हें अपने घर लाया था तो तुम बहुत उदास थे। जब मेरी स्त्री ने तुम्हें भोजन दिया तो तुम हंसे। जब वह धनी आदमी बूट बनवाने आया था तब तुम हंसे। आज लड़कियों के संग बुयि आयी, तब तुम हंसे। यह क्या भेद है? तुम्हारे मुख पर इतना तेज क्यों है?

मैकू–तेज का कारण तो यह है कि परमात्मा ने मुझ पर दया की, मैं अपने कर्मों का फल भोग चुका। ईश्वर ने तीन बातों को समझाने के लिए मुझे इस मृतलोक में भेजा था, तीनों बातें समझ गया। इसलिए मैं तीन बार हंसा। पहली बार जब तुम्हारी स्त्री ने मुझे भोजन दिया, दूसरी बार धनी पुरुष के आने पर, तीसरी बार आज बुयि की बात सुनकर।

माधो–परमेश्वर ने यह दंड तुम्हें क्यों दिया था? वे तीन बातें कौनसी हैं, मुझे भी बतलाओ?

मैकू–मैंने भगवान की आज्ञा न मानी थी, इसलिए यह दंड मिला था। मैं देवता हूँ, एक समय भगवान ने मुझे एक स्त्री की जान लेने के लिए मृत्युलोक में भेजा। जाकर देखता हूँ कि स्त्री अति दुर्बल है और भूमि पर पड़ी है। पास तुरन्त की जन्मी दो जुड़वां लड़कियां रो रही हैं। मुझे यमराज का दूत जानकर वह बोली–मेरा पति वृक्ष के नीचे दबकर मर गया है। मेरे न बहन है, न माता, इन लड़कियों का कौन पालन करेगा? मेरी जान न निकाल, मुझे इन्हें पाल लेने दे। बालक माता–पिता बिना पल नहीं सकता। मुझे उसकी बातों पर दया आ गई। यमराज के पास लौट आकर मैंने निवेदन किया कि महाराज, मुझे स्त्री की बातें सुनकर दया आ गई। उसकी जुड़वां लड़कियों को पालनेवाला कोई नहीं था, इसलिए मैंने उसकी जान नहीं निकाली, क्योंकि बालक माता–पिता के बिना पल नहीं सकता। यमराज बोले–जाओ, अभी उसकी जान निकाल लो, और जब तक ये तीन बातें न जान लोगे कि (1) मनुष्य में क्या रहता है, (2) मनुष्य को क्या नहीं मिलता, (3) मनुष्य का जीवनआधार क्या है, तब तक तुम स्वर्ग में न आने पाओगे। मैंने मृत्युलोक में आकर स्त्री की जान निकाल ली। मरते समय करवट लेते हुए उसे एक लड़की की टांग कुचल दी। मैं स्वर्ग को उड़ा, परन्तु आंधी आयी मेरे पंख उखड़ गए और मैं मन्दिर के पास आ गिरा।

8

अब माधो और मालती समझ गए कि मैकू कौन है। दोनों बड़े परसन्न हुए कि अहोभाग्य, हमने देवता के दर्शन किए।

मैकू ने फिर कहा–जब तक मनुष्य मनुष्य शरीर धारण नहीं किया था, मैं शीतगमी, भूखप्यास का कष्ट न जानता था, परन्तु मृत्युलोक में आने पर परकट हो गया कि दु:ख क्या वस्तु है। मैं भूख और जाड़े का मारा मन्दिर में घुसना चाहता था, लेकिन मंन्दिर बंद था। मैं हवा की आड़ में सड़क पर बैठ गया। संध्या समय एक मनुष्य आता दिखाई दिया। मृत्युलोक में जन्म लेने पर यह पहला मनुष्य था, जो मैंने देख था, उसका मुख ऐसा भयंकर था कि मैंने नेत्र मूंद लिये। उसकी ओर देख न सका। वह मनुष्य यह कह रहा था कि स्त्रीपुत्रों का पालनपोषण किस भांति करें, वस्त्र कहां से लाये इत्यादि। मैंने विचारा, देखो, मैं तो भूख और शीत से मर रहा हूँ, यह अपना ही रोना रो रहा है, मेरी कुछ सहायता नहीं करता। वह पास से निकल गया। मैं निराश हो गया। इतने में मेरे पास लौट आया, अब दया के कारण उसका मुख सुंदर दिखने लगा। माधो, वह मनुष्य तुम थे। जब तुम मुझे घर लाये, मालती का मुख तुमसे भयंकर था, क्योंकि उसमें दया का लेशमात्र न था, परन्तु जब वह दयालु होकर भोजन लायी तो उसके मुख की कठोरता जाती रही! तब मैंने समझा कि मनुष्य में तत्त्ववस्तु परेम है। इसीलिए पहली बार हंसा।

एक वर्ष पीछे वह धनी मनुष्य बूट बनवाने आया। उसे देखकर मैं इस कारण हंसा कि बूट तो एक वर्ष के लिए बनवाता है और यह नहीं जानता कि संध्या होने से पहले मर जाएगा। तब दूसरी बात का ज्ञान हुआ कि मनुष्य जो चाहता है सो नहीं मिलता, और मैं दूसरी बार हंसा।

छह वर्ष पीछे आज यह बुयि आयी तो मुझे निश्चय हो गया कि सबका जीवन आधार परमात्मा है, दूसरा कोई नहीं, इसलिए तीसरी बार हंसा।

9

मैकू परकाशस्वरूप हो रहा था, उस पर आंख नहीं जमती थी। वह फिर कहने लगा–देखो, पराणि मात्र परेम द्वारा जीते हैं, केवल पोषण से कोई नहीं जी सकता। वह स्त्री क्या जानती थी कि उसकी लड़कियों को कौन पालेगा, वह धनी पुरुष क्या जानता था कि गाड़ी में ही मर जाऊंगा, घर पहुँचना कहां! कौन जानता था कि कल क्या होगा, कपड़े की जरूरत होगी कि कफन की।

मनुष्य शरीर में मैं केवल इस कारण जीता बचा कि तुमने और तुम्हारी स्त्री ने मुझसे परेम किया। वे अनाथ लड़कियां इस कारण पलीं कि एक बुयि ने परेमवश होकर उन्हें दूध पिलाया। मतलब यह है कि पराणी केवल अपने जतन से नहीं जी सकते। परेम ही उन्हें जिलाता है। पहले मैं समझता था कि जीवों का धर्म केवल जीना है, परन्तु अब निश्चय हुआ कि धर्म केवल जीना नहीं, किन्तु परेमभाव से जीना है। इसी कारण परमात्मा किसी को यह नहीं बतलाता कि तुम्हें क्या चाहिए, बल्कि हर एक को यही बतलाता है कि सबके लिए क्या चाहिए। वह चाहता है कि पराणि मात्र परेम से मिले रहें। मुझे विश्वास हो गया कि पराणों का आधार परेम है, परेमी पुरुष परमात्मा में, और परमात्मा परेमी पुरुष में सदैव निवास करता है। सारांश यह है कि परेम और पमेश्वर में कोई भेद नहीं।

15

वैशाली की नगरवधू

वैशाली की नगरवधू, आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित एक हिन्दी उपन्यास है जिसकी गणना हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में की जाती हैं। यह उपन्यास दो भागों में हैं, जिसके प्रथम संस्करण दिल्ली से क्रमशः 1948 तथा 1949 ई. में प्रकाशित हुए। इस उपन्यास के सम्बन्ध में इसके आचार्य चतुरसेन जी ने कहा था, 'मैं अब तक की सारी रचनाओं को रद्द करता हूँ और 'वैशाली की नगरवधू' को अपनी एकमात्र रचना घोषित करता हूँ।'

इसमें भारतीय जीवन का एक जीता-जागता चित्र अंकित हैं। इस उपन्यास का कथात्मक परिवेश ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक है। इसकी कहानी बौद्ध काल से सम्बद्ध है और इसमें तत्कालीन लिच्छिवि संघ की राजधानी वैशाली की पुरावधू 'आम्रपाली' को प्रधान चरित्र के रूप में अवतरित करते हुए उस युग के हास-विलासपूर्ण सांस्कृतिक वातावरण को अंकित करते हुए चेष्टा की गयी है।

उपन्यास में घटनाओं की प्रधानता है, किन्तु उनका संघटन सतर्कतापूर्वक किया गया है और बौद्धकालीन सामग्री के विभिन्न स्रोतों का उपयोग करते हुए उन्हें एक सीमा तक प्रामाणिक एवं प्रभावोत्पादक बनाने की चेष्टा की गयी है। उपन्यास की भाषा में ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण करने के लिए बहुत से पुराकालीन शब्दों का उपयोग किया गया है। कुल मिलाकर चतुरसेन की यह कृति हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में उल्लेखनीय है।

आचार्य चतुरसेन ने इस उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि उन्होंने इस उपन्यास की रचना के लिए दस वर्ष तक आर्य, बौद्ध, जैन और हिन्दुओं के साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन किया। उनके अनुसार इस उपन्यास का उद्देश्य ''आर्यों के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और संस्कृति की पराजय और मिश्रित जातियों की प्रगतिशील संस्कृति की विजय'' दिखाना है, जिसे छुपाया जाता रहा। ध्यातव्य है कि यह सन् 1949 की रचना है और उस समय भारत के निर्माण और विकास की चुनौती भारतीय बौद्धिकता का बुनियादी सवाल थी। इसके उत्तर की सम्भावना अतीत में भी थी।

इस उपन्यास में दो जगहों का बुनियादी महत्व है– वैशाली और मगध। मगध आर्य जाति का प्रतीक है, साम्राज्य (वादी) है। उसमें राजतंत्र है। राजा की इच्छा ही वहाँ कानून है। उसमें प्रायः अधिकारों की बात की जाती हैं। दूसरी तरफ वैशाली है, जो मिश्रित जातियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उसमें गणतंत्र है, चुनी हुई राज्य-परिषद् का मत उसके लिए कानून है। उसमें अक्सर कर्त्तव्यों की बात की जाती हैं। उपन्यास वस्तुतः मगध और वैशाली के रूप में साम्राज्य और गणतंत्र के टकराव को रूप देता है।

आचार्य चतुरसेन वैशाली के पक्षधर हैं। कारण यह कि राजतन्त्र और तानाशाह की विजय, शत्रु का पूरी तरह नाश कर देती हैं जबकि लोकतन्त्र और जनप्रतिनिधियों की विजय उतनी हिंसक नहीं होती।

उपन्यास के उद्देश्य के अनुसार आर्यों की नीचता बताते हुए उपन्यासकार एक पात्र द्वारा कहता है-

यह आर्यों की पुरानी नीचता है। सभी धूर्त कामुक आर्य अपनी कामवासना-पूर्ति के लिए इतर जातियों की स्त्रियों के रेवड़ों को घर में भर रखते हैं। लालच-लोभ देकर कुमारियों को खरीद लेना, छल-बल से उन्हें वश कर लेना, रोती-कलपती कन्याओं का बलात् हरण करना, मूर्च्छिता- मदबेहोशों का कौमार्य भंग करना- यह सब धूर्त आर्यों ने विवाहों में सम्मिलित कर लिया। फिर बिना ही विवाह के दासी रखने में भी बाधा नहीं।

इसी तरह अनार्यों की श्रेष्ठता बताते हुए उपन्यासकार एक पात्र द्वारा कहता है-

सर्वजित् निर्ग्रंथ महावीर और शाक्यपुत्र गौतम ने आर्यों के धर्म का समूल नाश प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने नया धर्म-चक्र प्रवर्तन किया है जहाँ वेद नहीं हैं, वेद का कर्त्ता ईश्वर नहीं है, बड़ी-बड़ी दक्षिणा लेकर राजाओं के पापों का

समर्थन करने वाले ब्राह्मण नहीं हैं। ब्रह्म और आत्मा का पाखण्ड नहीं है। उन्होंने जीवन का सत्य देखा है, वे इसी का लोक में प्रचार कर रहे हैं।

प्रमुख पात्र

वैशाली के

महानामन् अम्बपाली। सिंह। युवराज स्वर्णसेन। युवराज का साथी सूर्यमल्ल। दस्यु बलभद्र (सोम)। कृतपुण्य सेठ (हर्षदेव)। कृतपुण्य का पुत्र भद्रगुप्त। महाबलाधिकृत सुमन सेनापति और सिंह उपसेनापति। संधिवैग्राहिक जयराज। कीमियागर गौड़पाद। वेश्या भद्रनंदिनी (कुंडनी)। एक काली छाया। गणदूत काप्यक। वादरायण मठ के अधीश्वर भगवान् वादरायण। एक वन्य युवक।

मगध के

राजधानी: राजगृह। राजा: बिम्बिसार या श्रेणिक। अमात्य: वर्षकार। राजकुमार: अभयकुमार। आचार्य: शाम्बव्य काश्यप। मातंगी: सोम, कुंडनी, अम्बपाली। कुंडनी: मातंगी की बेटी। सोम: कुंडनी का भाई। मातंगी का बेटा। मगध के महासेनापति: चंडभद्रिक। सेनापति: सोमप्रभ।

अन्य

कोसल: राजधानी – श्रावस्ती। राजा – प्रसेनजित्। उनका पुत्र: विदूडभ। विदूडभ की माता दासी थी, जो बाद में राजमाता नंदिनी बनी। सेनापति: कारायण। आचार्य अजित केसकम्बली।

चम्पा: राजा: दधिवाहन। राजकुमारी: राजनंदिनी।

अवन्ति का राजा चंडमहासेन प्रद्योत, मथुरा का राजा अवंतिवर्मन। कौशाम्बी का राजा उदयन। कुशीनारा का योद्धा बंधुल मल्ल। गांधार की कलिंगसेना, जो श्रावस्ती में रही।

धार्मिक पात्र: गौतम बुद्ध, भगवान महावीर, शालिभद्र और धन्य, हरिकेशबल।

कथावस्तु

महानामन् वैशाली के प्रहरी-प्रमुख हैं। उनको आम के पेड़ के नीचे एक नवजात कन्या मिली। इसलिए उन्होंने उसका नाम रखा- अम्बपाली। अम्बपाली ने उनको अड़तीस साल के बाद पिता बनने का सुख दिया। वे वैशाली की नौकरी

छोड़ गाँव में कन्या का पालन-पोषण करने लगे। कारण यह कि अम्बपाली अत्यन्त सुन्दर थी। वैशाली में कानून था कि उसकी सर्वाधिक सुन्दर कन्या उसकी नगरवधू/जनपद-कल्याणी बनेगी। उसे सभी राजकीय सुविधाएँ मिलेंगी पर साधारण स्त्री की तरह अपनी पसन्द के पुरुष से विवाह करने, बच्चे पैदा करने और घर बसाने का अधिकार नहीं होगा। अम्बपाली के शब्दों में आचार्य चतुरसेन ने इस कानून को बार-बार 'धिक्कृत कानून' कहा है। इस कानून से बचाने के लिए महानामन् अम्बपाली को वैशाली से दूर ले गए पर बचा नहीं पाए।

हुआ यह कि बच्ची के साथ-साथ उसकी इच्छाएँ भी बड़ी होने लगीं। हर इच्छा की पूर्ति गॉव में होना सम्भव नहीं था। उदाहरण के लिए वैशाली की लड़कियाँ जो कपड़े पहनती थीं, वे गॉव में नहीं मिल सकते थे। अम्बपाली उनके लिए रोती थी। उसका रोना न सह पाने के कारण महानामन् उसे पुनः वैशाली लाए।

अम्बपाली सुन्दरता में अनुपम थी। उसके सामने नगरवधू बनने का लगभग बाध्यकारी प्रस्ताव था। उसने अपने साहस का परिचय देते हुए सब राजपुरुषों के सामने वैशाली के कानून को 'धिक्कृत' कहा। आपत्ति हुई तो उसे और बल देकर 'धिक्कृत' कहा। ऐसा कहकर उसने सिद्ध किया कि वह सुन्दर और साहसी ही नहीं, बुद्धिमती भी है। उसके साहस का प्रमाण है कि वह नगरवधू बनने के लिए वैशाली के राजपुरुषों के सामने तीन शर्तें रखती हैं और उनके न मानने पर वैशाली के हत्यारों का इंतजार करने को तैयार है पर समझौता या आत्मसमर्पण करने को नहीं। उसकी तीन शर्तें ये हैं– (1) राजसी रहन-सहन की सारी सुविधाएं मिलें, (2) उसके महल की सुरक्षा का प्रबन्ध दुर्ग की तरह हो, (3) उसके महल में आने-जाने वालों की जाँच न हो। इस तरह उसने अपने लिए सम्पन्नता, सुरक्षा और स्वतन्त्रता सुनिश्चित की। तीसरी शर्त संशोधन सहित मानी गई कि जाँच की आवश्यकता पड़ी तो एक सप्ताह पहले सूचना दी जाएगी।

अम्बपाली अपने देश से प्रेम करती हैं। उसका अपना सपना एक साधारण स्त्री की तरह जीने का है। वह नगरवधू नहीं बनना चाहती। उस पर दबाव डाला जाता है। वैशाली के गणपति उससे वैशाली की अखण्डता के लिए उसके नौजवानों की एकता और शत्रुओं के विरुद्ध सक्रियता सम्भव करने की भीख माँगते हैं तो वह अपनी तीसरी शर्त में संशोधन स्वीकार कर लेती हैं। उसका पहला प्रेमी हर्षदेव, महानामन् के पुराने मित्र का बेटा था। उसके साथ उसकी सगाई हो चुकी थी। फिर भी वह वैशाली की भलाई के लिए अपने व्यक्तिगत

सुख को छोड़ने के लिए तैयार हो जाती हैं, लेकिन उसके मन में वैशाली के 'धिक्कृत कानून' के लिए भरपूर घृणा है। उसका प्रिय हर्षदेव जब उसके महल 'सप्तभूमिप्रासाद' आता है तो वह उसे वैशाली को भस्म कर देने के लिए कहती हैं। वह यही करने का संकल्प करता है तो कहती हैं कि वह संकल्प-पूर्ति की प्रतीक्षा करेगी। इतनी घृणा उसमें है धिक्कृत कानून के प्रति। इसका परिचय उस समय भी मिलता है, जब वह वैशाली और राजगृह के बीच रास्ते पर स्थित वादरायण मठ में मगध के राजा से मिलती हैं। राजा उससे प्रेम की याचना करता है तो वह धिक्कृत कानून की पीडिता होने के लिए वैशाली को दंडित करने को कहती हैं। राजा लिच्छवि गणतंत्र के समूल नाश की प्रतिज्ञा करता भी है। अपने स्त्रीत्व को गुलाम बनने पर मजबूर करनेवाले कानून के लिए वह वैशाली को कभी माफ नहीं कर पाती।

वह वैशाली की नगरवधू बन गई थी। एक बार अम्बपाली से मिलने कौशाम्बीपति संगीतज्ञ महाराज उदयन आए। उन्होंने महान् वीणा बजाई और अम्बपाली ने अवश नृत्य किया। तीन ग्रामों में एक ही बार में वे वीणा-वादन कर जादुई संगीत पैदा कर सकते थे। मधुपर्व के दिन वैशाली में अम्बपाली की सवारी निकली। युवकों की भीड़ अपार थी। मार्ग नरमुंडों से भरा था। सभी मधुबन पहुँचे। युवक आखेट कर शिकार अम्बपाली के सामने डालने लगे। शाम को अम्बपाली के सामने आखेट का प्रस्ताव रखा गया। वह पुरुष-वेश में घोड़े पर चली। वैशाली का युवराज स्वर्णसेन साथ था। दोनों गहन वन में पहुँचे। स्वर्णसेन ने प्रणय-निवेदन किया। सहसा सिंह आया। दोनों अश्वों पर सवार हुए। सिंह गरजा। एक भारी वस्तु अम्बपाली के घोड़े पर आ पड़ी। घोड़ा और अम्बपाली गड्ढे में गिर गए। स्वर्णसेन अपने घोड़े पर भागे। स्वर्णसेन अकेले मधुबन पहुँचे और बताया कि अम्बपाली को सिंह आक्रान्त कर गया। सर्वत्र शोक। खोज की गई तो अम्बपाली का शरीर नहीं मिला। उसके घोड़े का मिला। सोचा गया- देवी को सिंह गुफा में ले जाकर खा गया।

उधर जब अम्बपाली को होश आया तो देखा कि सिंह मरा पड़ा है। एक छरहरा युवक वहाँ है। शाम का समय है। दिन रहते मधुबन पहुँचना असम्भव है। युवक ने पुरुषवेश अम्बपाली को अपनी कुटिया में रात बिताने को कहा। युवक चित्र बनाता था। सिंह को मार सकता था। कुटी तक जाते-जाते सूर्यास्त हो गया। पत्थर घिसकर आग जला रौशनी कर वह ईंधन लेने गया। कुटी में महान् वीणा थी। वीणा असाधारण थी। महाराज उदयन की दिव्य वीणा 'मंजुघोषा' थी वह।

युवक लौटा। बोला कि उसकी इच्छा है कि एक बार अम्बपाली उसके सामने वही अवश नृत्य करे। वीणा देख अम्बपाली को अपने नृत्य की याद इस कदर आई कि वह नृत्य करने लगी। पुरुष-वेश गिर गया। युवक ने देखा। वह वीणा बजाने लगा। उदयन की तरह वह भी उस वीणा को बजाने में निपुण था। दोनों बाह्य ज्ञान-शून्य हो गए। दोनों में शरीर-सम्बन्ध हुआ। युवक ने अपने को स्मरण रखने के लिए अपना नाम 'सुभद्र' बताया और इच्छा व्यक्त की कि पुनः वही नृत्य हो और वह प्रत्येक मुद्रा में अम्बपाली का चित्र बनाए। इसके लिए अम्बपाली ने उसे अपने आवास पर आने को कहा तो युवक ने मना कर दिया। यह कहकर कि वह धिक्कृत कानून से मिला स्थान है, जो घृणित है। यह सुनकर अम्बपाली हृदय हार बैठी। अम्बपाली ने वहीं मुद्राएँ प्रस्तुत कीं, उसने चित्र बनाए। सात दिन में चित्र पूरे हुए। युवक उसे वैशाली के द्वार छोड़ वन में लौट गया। अम्बपाली के लौट आने से नगर में हलचल मच गयी। तरुणों ने मद्य पी। देवी के जयकार किए।

मगध की राजधानी राजगृह थी, सम्राट बिम्बसार थे, अमात्य वर्षकार थे। गोविन्द स्वामी ने बिम्बसार के पिता को अश्वमेध यज्ञ करा 'सम्राट्' की उपाधि दी थी। गोविन्द स्वामी अपने पीछे आठ साल की बालिका छोड़ गए थे। उसका नाम था- मातंगी। स्वामी जी का एक शिष्य ब्राह्मण-कुमार था, जिसका नाम वर्षकार था। युवराज बिम्बसार और वर्षकार मित्र थे। बिम्बसार को मातंगी की ओर आकृष्ट दृष्टि से देखते देखा तो वर्षकार ने विरोध किया। बिम्बसार का मातंगी के प्रति आकर्षण प्रकट हो गया। मातंगी विवाह किए बिना गर्भवती हुई। शिशु को वर्षकार ने कूड़े के ढेर पर फेंकवा दिया। आचार्य शाम्बव्य काश्यप ने शिशु को उठाया। अपने मठ में ले आए। पता लगा कि यह मातंगी का पुत्र है। सम्राट ने मृत्यु से पहले बिम्बसार को बुलाकर कहा- तुम राजा बनोगे और वर्षकार अमात्य। एक पत्र दिया और कहा- इसे तीन साल बाद खोलना, तब मातंगी का विवाह करना। खोला गया तो लिखा था- मातंगी वर्षकार की बहिन है। विचित्र यह था कि मातंगी वर्षकार द्वारा गर्भवती थी। सम्राट बिम्बसार ने यह सत्य वर्षकार को नहीं बताया और दोनों को वैशाली भेजा। वहाँ गुप्त रूप से एक कन्या को जन्म देकर मातंगी राजगृह लौट आई। सत्य जाना। जानकर एकांतवास ले लिया। विवाह से भी इन्कार कर दिया और सम्राट से मिलने से भी। उधर वर्षकार ने भी विवाह नहीं किया। मातंगी के पुत्र-पुत्री की जन्मकथा आचार्य शाम्बव्य काश्यप ही जानते थे। सोमप्रभ मातंगी से जन्मे अवैध पुत्र थे और कुंडनी पुत्री। सोम के पिता कौन, यह केवल मातंगी जानती थी।

राजगृह में गांधार से तक्षशिला के आचार्य बहुलाश्व के पास से आचार्यपाद शाम्बव्य काश्यप से मिलने मठ में सोमप्रभ आया। मठ में कुंडनी को विषकन्या बनने के लिए सर्प-दंश दिया जा रहा था। सोम और कुंडनी को चम्पा भेजा गया। चम्पा के मार्ग में सोम और कुंडनी असुरों के राजा शम्बर की नगरी में गए। कुंडनी ने असुरों को मृत्यु-चुम्बन से मारा और शम्बर को भी मारा। वहां उनको एक निष्ठावान् सेवक मिला। नाम रखा- शम्ब। मगध सेनापति चण्डभद्रिक ने चम्पा का किला घेर रखा था। तीन मास बीत गए थे। इस बीच सेना तक कोई सहायता नहीं पहुँची थी। ऐसे में सोम वहाँ पहुँचा। चम्पा में अपने मित्र की सहायता से किला जीता। चम्पा में मागध रहते थे। कुंडनी ने राजा दधिवाहन को मृत्यु-चुम्बन दिया। इस तरह चम्पा के किले पर मगध का अधिकार हुआ।

सोम, कुंडनी, शम्ब और चम्पा की राजकुमारी राजनन्दिनी श्रावस्ती की तरफ जा रहे थे। राजकुमारी का तीनों ने आतिथ्य किया। सोम उस पर आसक्त हो मगध से विद्रोह कर उसे चम्पा-साम्राज्ञी बनाने तक के लिए तैयार हो गया। कुंडनी ने उसे समझाया कि पहला काम राजकुमारी को कहीं सुरक्षित पहुँचाना है। इसीलिए श्रावस्ती जाना होगा। रास्ते में दास-व्यापारी दस्युओं से मुकाबला हुआ। दस्युओं ने उनको घेर लिया। अपने साथ ही श्रावस्ती चलने को कहा। कुंडनी मौका देख भाग निकली, राजकुमारी मूर्च्छित हो गई, सोम घायल हो गया। शम्ब उसे एक गुफा में ले गया और उसकी सुरक्षा/सेवा करने लगा।

श्रावस्ती में दास-दासियों का बाजार लगा था। वहाँ अनायास मिल गए सोम को कुंडनी ने बताया कि राजकुमारी राजनन्दिनी को दासी की तरह खरीदकर अंत: पुर में ले जाया गया ताकि कलिंगसेना-प्रसेनजित् के विवाह में उसे दासी के रूप में राजा को पट्टराजमहिषी मल्लिका द्वारा भेंट किया जाए। कुंडनी ने सोम को स्त्री-वेश में अपने साथ अंत:पुर में जाने को तैयार कर लिया। अमात्य वर्षकार से मिलने को भी। सोम स्त्री-वेश में कुंडनी के साथ अंत:पुर में गया। दोनों युक्ति से राजनन्दिनी तक पहुँचे। कुंडनी ने राजकुमारी को भागने के लिए कहा। राजनन्दिनी ने कहा- भगवान् महावीर तक मेरी सूचना पहुँचाओ। फिर वे जैसा कहें, वैसा किया जाए। सोम भगवान् के पास गए। उन्हें राजकुमारी चंद्रभद्रा की खबर दी। सब जानकर महावीर ने उसे प्रतीक्षा करने के लिए उपाश्रय भेज दिया और राजकुमार विदूडभ से मिलने की इच्छा की। महावीर के निर्देशानुसार सामनेर (महावीर का शिष्य/सेवक) ने सोम को विदूडभ से मिलवाया। विदूडभ ने राजकुमारी का संरक्षण स्वीकार किया पर सोम ने पहले राजकुमारी से मिलने की

शर्त रखी। महावीर ने उसे अपने मन का मैल दूर करने को कहा। विदूडभ ने उसे आश्वस्त किया कि राजकुमारी उसके पास भगिनीवत् रहेगी। सोम ने गले लगकर अपनी अविनय की क्षमा मांगी।

विदूडभ अपनी माता महारानी नन्दिनी के पास गया और उनके साथ कलिंगसेना के पास। बताया राजनंदिनी चंद्रभद्रा शीलचंदना के बारे में। दोनों गईं। उन्होंने राजकुमारी को गुप्त रूप से श्रावस्ती से बाहर भेजा। दस दासियाँ अर्पित कीं और कहा– महावीर जैसा कहेंगे, किया जाएगा। कुंडनी ने राजकुमारी से विदा ली। राजकुमारी को साकेत भेज दिया गया।

राजनंदिनी साकेत में सुखी थी। कुंडनी और सोम उससे मिले। राजनंदिनी ने कहा कि सोम महावीर से मिल अपने मन की बात कहें, फिर वे जैसा निर्देश करें। सोम ने यही किया। महावीर बोले– अभी उनसे दूर रहो। यथासमय कर्त्तव्य-निर्देश दूँगा। फिर भी सोम साकेत गए। राजनंदिनी से मिले। राजनंदिनी ने कहा कि महावीर की आज्ञा लिए बिना फिर कभी यहाँ मत आना। सोम चले गए।

कोसल, मगध का पड़ोसी राज्य था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। राजा का नाम प्रसेनजित् था। वह एक कामुक राजा था। युवराज विदूडभ को उसने एक दासी से पैदा किया था। विदूडभ अपने पिता से नफरत करता था। कभी-कभार उन पर हमले किया करता था। एक बार ऐसा ही हमला किया तो उनको एक अजनबी योद्धा ने बचा लिया। वह योद्धा बन्धुल मल्ल था जो कुशीनारा का रहनेवाला था तथा तक्षशिला का विद्यार्थी था। कुशीनारा के मल्ल उससे ईर्ष्या करते थे। इस कारण कुशीनारा में उसे न योग्यतानुसार पद मिला, न सम्मान। वह कुशीनारा छोड़ श्रावस्ती आ गया था। वहीं जब उसने राजा को युवराज के हमले से बचाया तो राजा ने उसे कोसल का सेनापति बनाने का वचन दिया।

एक बार विदूडभ ने मगधेश को लिख दिया कि यही कोसल पर आक्रमण करने का उचित समय है। मगधेश ने आक्रमण किया पर पराजित हुए। वर्षकार ने उनको रोका भी था पर वे माने नहीं। हुआ यह कि कौशाम्बीपति उदयन को श्रावस्ती पर हमला करना था पर उसने किया नहीं। पहले मगध-श्रावस्ती युद्ध का परिणाम देखना तय किया। हमला कलिंगसेना के लिए करना था पर कलिंगसेना ने कहा कि वह कोसलेश को आत्मसमर्पण कर चुकी है। श्रावस्ती में कलिंगसेना का राजसी स्वागत हुआ। वह विदुषी, वीर, सुन्दर थी और मन में उदयन पर आसक्त थी। बूढ़े प्रसेनजित् से विरक्ति थी पर अपने पिता के

राजनीतिक स्वार्थ की रक्षा के लिए समर्पण किया था। वह गान्धार की थी। कोसलेश ने गांधार की सीमा पर सेना भेजी थी। गांधारों के लिए साकेत का सार्थमार्ग (व्यापार करने का रास्ता) बंद करने की धमकी दी थी। राजकुमारी कलिंगसेना ने अपनी बलि देकर युद्ध को टाला था। विदूडभ की माँ राजमाता नंदिनी उसे श्रावस्ती के अंत:पुर में मिली। कलिंगसेना ने उसे कहा कि वह प्रसेनजित् की गुलामी नहीं करेगी। राजमाता ने उसका साथ देने को कहा।

कलिंगसेना-प्रसेनजित् का विवाह हुआ। दासी के भागने की सूचना प्रसेनजित् को मिली। वे कलिंगसेना के पास गए, जिसने उनको सच बता दिया, किन्तु यह नहीं बताया कि वह गई कहाँ। अपने लिए दण्ड मांगा। राजा क्रुद्ध हो चले गए।

आचार्य अजित केसकम्बली कोसल में रहते थे। वे संन्यासी किन्तु शक्तिशाली थे। उन्होंने राजपुत्र विदूडभ को गौतम बुद्ध के विरुद्ध उकसाया ताकि कोसल की सारी सम्पदा गौतम को अर्पित न कर दी जाए और राजकोष रिक्त न हो जाए। बात यह थी कि राजा प्रसेनजित् गौतम बुद्ध के भक्त थे। उनकी सेवा में खर्च किया करते थे। उन्होंने ही बंधुल के बारहों पुत्रों के वध का षड्यंत्र रचा। बंधुल की पत्नी मल्लिका, गौतम के पास दीक्षा ले, यह निश्चित करने को कहा। वर्षकार ने सोम को मल्ल बन्धुल को नष्ट करने को कहा। विदूडभ ने प्रसेनजित् और बंधुल को सेनापति कारायण का एक गुप्त मित्र के नाम लिखा पत्र दिया जिसमें था कि कौशाम्बीपति यज्ञ के समय कोसल पर आक्रमण करेंगे। विदूडभ ने कहा कि बंधुल की यहाँ आवश्यकता है, सीमा पर उनके बारहों पुत्र बिना सेना के जाएँ। कारायण को राजधानी बुलाकर उचित दण्ड दिया जाए।

श्रावस्ती में राजसूय यज्ञ की तैयारियाँ की गईं। चारों ओर चहल-पहल थी। बन्धुल मल्ल के बारह पुत्रों को दस्युओं ने मार डाला और लूट लिया। कारायण को श्रावस्ती में बन्दीगृह में रखा गया। बंधुल को यह कहकर सीमान्त पर भेजा गया कि उसके पुत्रों की हत्या कौशाम्बी का षड्यन्त्र भी हो सकता है। श्रावस्ती में यज्ञ चल रहा था। आचार्य अजित केसकम्बली उसके सर्वेसर्वा थे। उन्होंने विदूडभ को आश्वस्त किया था कि राजा वही बनेगा। विदूडभ ने सेनापति कारायण को बन्दीगृह से मुक्त किया और उसे कोसल का प्रधान सेनापति बनाया। उसने विदूडभ को कोसलपति कहकर आदेश माँगा। विदूडभ ने कहा कि प्रसेनजित् जब गौतम के दर्शन कर लौटें तो उनको बन्दी बना पूर्वी सीमान्त पर अकेले छोड़ आओ। अंगरक्षक विरोध करें तो उनको काट डालो। काम गुपचुप हो। बन्धुल सीमांत से लौट आए तो उसे रोको और मार डालो।

कारायण ने प्रसेनजित् को बंदी बनाया। यह सीमान्त से लौटे बन्धुल ने देख लिया। विदूडभ का षड्यन्त्र वह जान गया। बंधुल ने अपनी सुरक्षा की ओर से लापरवाह विदूडभ का अपहरण कर लिया। बन्धुल अजित केसकम्बली के पास गया। उसे देख अजित सब समझ गए कि विदूडभ कहाँ लुप्त हुआ है। अजित ने कारायण से नगर-रक्षा-प्रबंध और बंधुल पर सतर्क दृष्टि रखने को कहा। कहा कि वह विदूडभ के पास जब जाए तो गुप्त रूप से पीछा कर पता लगाया जाए कि विदूडभ कहाँ बन्दी है। यह भी कहा कि कुमार का एक मित्र मागध तरुण श्रावस्ती में है, उसका भी पता लगाया जाए। कारायण ने सीमान्त पर पहुँचकर प्रसेनजित् और रानी मल्लिका को मुक्त किया। स्वर्ण की छोटी-सी थैली पाथेय के रूप में दी, जो कहीं गिर गई। दोनों ने राजगृह जाना तय किया। द्वारपाल ने राजगृह के द्वार रात को नहीं खोले, इसलिए दोनों बाहर चैत्य में रहे। उसी रात दोनों की मृत्यु हो गई।

सोम और कुंडनी एक नाउन के घर ठहरे थे। कुंडनी को कलिंगसेना और आचार्य अजित की बातचीत से ज्ञात हुआ कि राजधानी में न राजा है, न राजकुमार। महाराज को राजकुमार ने बंदी बनाया है और राजकुमार को बंधुल ने। राजकुमार का पता दीहदन्त के अड्डे से मिलना सम्भव है। सोम ने एक लुच्चे मद्यप का रूप धारण किया और कुंडनी ने 'देहाती अल्हड़ बछेड़ी' का। दीहदन्त के अड्डे पर सोम ने पैसा दे सबको मद्य देने के लिए दीहदंत को कहा। सब खुश हो गए। नाउन ने सोम की तरफ इशारा कर दीहदंत से पूछा- इसी ने राजपुत्र को उड़ाया? दीहदंत बोला- 'यह नहीं, वह है (दो जुआरियों की ओर इशारा,। नाउन ने कुंडनी को इशारा कर बताया। कुंडनी ने दोनों को लीला-विलास से सम्मोहित किया। सोम संकेत पाकर उनके पास आ बैठा। उन्हें मद्य पिलाई। बातों-बातों में जाना कि विदूडभ कोसल-दुर्ग में बंदी है। जलगर्भ में बंदीगृह का द्वार है। सोम ने उसे झूठा कहा। शर्त लगाई सौ दम्म की। उसे साथ ले गया।

जलगर्भ में बन्दीगृह दुर्गम स्थान पर था। कारायण, सैन्य, कुंडनी, नाउन, सोम, शम्बय सभी की सहायता से सोम ने बन्धुल मल्ल को मार डाला। इस युद्ध में विदूडभ घायल हुए पर मुक्त हो गए। राजधानी गए जहाँ यज्ञ चल रहा था। सोम ने विदूडभ को यज्ञ में कोसलपति की जगह बैठाया। जिन्होंने इसका विरोध किया, वे कट मरे। विदूडभ का अभिषेक हुआ। उसने आचार्य अजित को कोसल का महामात्य बनाया। भगवान महावीर ने सोम से कहा कि वह राजनंदिनी को कोसल की पट्टराजमहिषी बनने दे। सोम ने निराशापूर्वक यन्त्रवत् स्वीकार किया।

सोम ने राजनन्दिनी को अपना निर्णय बताया। उसे कोसल-पट्टराजमहिषी बनने को तैयार किया। वह तैयार हुई पर यह कहकर कि उसका हृदय हमेशा सोम का रहेगा। सोम, कुण्डनी और शम्ब वैशाली की ओर चले।

ज्ञातिपुत्र सिंह तक्षशिला से रण-चातुरी और राजनीति पढ़ स्नातक हो वैशाली लौटे थे। तक्षशिला के आचार्य बहुलाश्व ने अपनी एकलौती पुत्री रोहिणी उनको ब्याह दी थी। वे लौटे तो वैशाली में उनका स्वागत हुआ।

हर्षदेव वीतिभय नगरी में गया। एक वृद्धा ने उसको अपने स्वर्गीय पुत्र की चार वधुओं से एक-एक पुत्र पैदा करने को नियुक्त किया ताकि राज्य-सेवक उसके परिवार का धन राजकोष हेतु न ले जाएँ। हर्षदेव वृद्धा का कृतपुण्य नामक पुत्र बन गया। उसके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ जन्मीं। काम हो जाने पर वृद्धा ने उसे निकाल दिया। मध्यमा वधू उससे प्रेम करने लगी थी। उसने उसे पाथेय रूप में दो मधुगोलक दिए। एक में रत्न भर दिए पर उसे बताया नहीं। कहा- चम्पा में उसके पिता के पास वह उसकी प्रतीक्षा करे। अवसर पाते ही वह उससे आ मिलेगी। हर्षदेव पथिक था। चलते-चलते वह अस्थिक ग्राम पहुँचा। वहाँ एक ब्राह्मण को एक मधुगोलक खाने को दिया। उसमें रत्न थे। ब्राह्मण ने उसका सत्य परिचय जान लिया। ब्राह्मण ने कहा कि वह उसका अनुगत हो वैशाली का उच्छेद करे। वह अनुगत बना। ब्राह्मण ने उसके रत्न उसी को दिए। अपने मित्र के पास अपनी मुद्रिका देकर पावापुरी भेजा। कहा- वहाँ जाकर रत्न बेच, सार्थवाह बन चम्पा जा। श्वसुर से कृतपुण्य बनकर जितना उधार ले सके, ले। अन्य क्षेत्रों में व्यापार कर। फिर वैशाली में मिलेंगे।

हर्षदेव गया। वैशाली और राजगृह के बीच रास्ते पर स्थित वादरायण मठ के अधीश्वर भगवान् वादरायण थे। उन्होंने एक रात अपने शिष्य को एक विशिष्ट अतिथि के लिए सत्कार की व्यवस्था करने को कहा। रात को एक वृद्ध भट और अम्बपाली आए। अम्बपाली ने सम्राट के लिए नियोजित व्यवस्था का भोग किया। बाद में मगध सम्राट आए। सम्राट ने शिष्य (मधुद्ध की कुटिया में रात बिताई। दोनों सुबह भगवान् वादरायण से मिले तो यह सत्य सबके सामने आया। वादनारायण मठ में ही अम्बपाली मगध-सम्राट से मिली। सम्राट ने प्रणय-निवेदन किया। अम्बपाली ने शर्त रखी- मेरा पुत्र ही मगधेश हो। सम्राट ने इसका वचन दिया। अम्बपाली ने धिक्कृत कानून की पीड़िता होने के लिए वैशाली को दण्डित करने की प्रार्थना की। सम्राट ने लिच्छवि गणतन्त्र के समूल नाश की प्रतिज्ञा भी की। भगवान् वादरायण ने अम्बपाली को कहा कि वह मगध सम्राट की माता

होगी पर मगध की साम्राज्ञी नहीं। वह प्रसिद्ध साध्वी होगी। यह भी कहा कि वह वैशाली का अनिष्ट न करे। अनिष्ट होता देखे तो महान् त्याग करे, वह टल जाएगा। मगध-सम्राट को उन्होंने राजगृह भेजा। कहा- वहाँ श्रमण गौतम पहुँचकर उनको समुचित आदेश देंगे।

सम्राट राजगृह लौटे। अवंतिपति (मालवपति) चण्ड महासेन प्रद्योत ने राजगृह को घेरा हुआ था। उसकी सहायतार्थ मथुरापति अवंतिवर्मन भी आ रहा था। सहसा चण्ड नगर का घेरा छोड़कर भाग गया और उसकी सेना भी भाग गई। हुआ यह कि सेना के पड़ाव जहाँ लगने थे, वहाँ मगध मुद्रांकित सोना जगह-जगह गड़वा दिया गया। आचार्य काश्यप ने प्रद्योत को कहा कि उसकी सेना मगध से मिल गई है। प्रमाणस्वरूप सोना बरामद हो गया। प्रद्योत भागा। वर्षकार कूटनीति के आगार थे। उन्होंने बुद्ध से वैशाली के बारे में पूछा। बुद्ध ने बताया कि वैशाली के गण जब तक मूल्यनिष्ठ और एक रहेंगे, सम्पन्न होते रहेंगे। वर्षकार ने अनेक गुप्तचर वैशाली भेजे, वे वहाँ फूट पैदा करने के प्रयास करने लगे। वर्षकार वैशाली से पहले अवन्ती पर आक्रमण चाहते थे जबकि सम्राट पहले वैशाली पर। इसी पर दोनों में विवाद हो गया। वर्षकार ने पद और मगध छोड़ा, फिर सम्राट ने वैशाली पर हमले का आदेश दिया।

राजगृह के चौराहे पर एक नापित (प्रभंजन) की छोटी-सी खरकुटी थी। वहाँ वेश बदले हुए वर्षकार आए। उसे पत्र देकर श्रावस्ती में सेनापति के पास भेजा। स्वयं उसकी कुटी में रहने लगे। नापित प्रभंजन वेश बदलकर गया। वैशाली में दस्यु बलभद्र का आतंक था। मद्य पीते स्वर्णसेन के पास उसका मित्र सूर्यमल्ल आया। बोला- महाबलाधिकृत का आदेश है कि दस सहस्र सेना (रक्षक) लेकर मधुबन को घेरो। बलभद्र वहीं है। स्वर्णसेन मद्यासक्त और रूपासक्त होकर उसे अम्बपाली के यहाँ ले गया। वैशाली में कृतपुण्य की धूम मची। वह वैभव-संपन्न था। विशेषता यह कि उसके पास असाधारण आठ समुद्री घोड़े थे।

वर्षकार वैशाली आए। उन्होंने वैशाली के संथागार से अन्न की याचना की। बदले में राजकार्य करना चाहा। वैशाली के सत्तापुरुष उनको अतिथि का मान-सम्मान देते रहे। कहा कि इस बारे में बाद में निर्णय होगा। तब तक वर्षकार दक्षिण ब्राह्मण कुंडग्राम में सोमिल श्रोत्रिय का अंतेवासी होकर रहे। वैशाली की ओर से सत्कार-व्यवस्था की जाएगी। वैशाली में विदिशा की अपूर्व सुन्दरी वेश्या भद्रनन्दिनी आ बसी थी। सौ स्वर्ण देकर कोई भी उसके पास जा सकता था। वैशाली में यह प्रसिद्ध था कि वह विदिशा के राजा नागराज शेष के पुत्र पुरंजय

भोगी की अन्तेवासिनी है। यह भी कि वह किसी मूल्य पर शरीर-स्पर्श नहीं करने देती। उसके पास एक तरुण आया। उसने भद्रनंदिनी के पास मद्य पी। कहा कि वह मगध से संबंधित है। उसने इन्कार किया तो राजगृह के शिल्पी का बना कुंडल उसके कानों में दिखाया। वह चला गया।

भद्रनंदिनी ने नन्दन साहू को बुलाया। नन्दन साहू एक दुकानदार था और जरूरत की सभी वस्तुएं बेचा करता था। उसका एक गूढ़/गुप्त व्यवसाय भी था। वर्षकार, सोमिल ब्राह्मण के अतिथि बन गए थे। लिच्छवि राजकीय विभाग से नित्य एक सहस्र स्वर्ण आता था। अन्य लोग भी उपहार भेजते पर वह उन्हें याचकों में बाँट देते। वैशाली में हरिकेशबल नाम के सन्त थे जो कभी स्नान न करते थे और मुर्दों के उतरे गुदड़े पहनते थे। कहते थे, मैं चांडाल कुलोत्पन्न संयमी हूँ, मुझे भिक्षा दो। वह सोमिल के यहाँ पहुँचे। ब्राह्मणों ने उनका अपमान किया। उनको लाठियों से मारा। पूर्व विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा महापद्म की पुत्री जयन्ती ने उनको बचाया। कहा कि मेरे पिता ने मुझे इनको दिया पर इन्होंने मुझे स्वीकार नहीं किया। यह दिव्य शक्ति सम्पन्न तपस्वी हैं। तभी नन्दन साहू आया। उसने हरिकेश के चरण पूजे। जयन्ती वाली बात उसने भी कही। उसे भिक्षार्थ आदरपूर्वक अपने घर ले गया।

हरिकेश-सेवक यक्ष का प्रकोप ब्राह्मणों पर टूटा। सोमिल, अनेक ब्राह्मणों के साथ नन्दन साहू के घर गया। हरिकेश से क्षमा माँगी। हरिकेश ने कहा कि शूलपाणि यक्ष की शरण में जाओ। वे वहाँ गए, तब क्षमा मिली। मगध द्वारा आक्रमण की आशंका के कारण वैशाली में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। सेनापति व अन्य पदों के लिए चुनाव हुआ। महाबलाधिकृत सुमन सेनापति बने। सिंह उपसेनापति हुए। मोहनगृह वैशाली का गुप्त मंत्रणा-स्थल था। वहाँ मंत्रणा से निर्णय हुआ कि मगध एक कुशल दूत मैत्री-संदेश लेकर जाए। इस बहाने शत्रु की तैयारियों को देखे/परखे। वैशाली में मगध के गुप्तचर न हमारी सावधानी जानी, न योजना। कोष-अन्न-सैन्य को एकत्र करने की गुपचुप व्यवस्था की जाए। दूत के साथ जयराज गुप्त रूप में मगध जाएँगे। एक माह में लौटेंगे। तब पुनः मंत्रणा होगी।

एक बार वैशाली में एक काली भयानक छाया घूमती देखी गई। अटकलें लगाई गई। कई आशंकाएँ होने लगीं। कृतपुण्य का पुत्र भद्रगुप्त बड़वाश्व पर जहाँ सांध्य-भ्रमण को जाया करता, वह छाया वहाँ विशेषतः देखी गई। उसका सांध्य-भ्रमण बन्द कर दिया गया। कृतपुण्य ने पुत्र का विवाह ठाठ-बाट से

किया। सुहागरात को वही छाया वहाँ आई। शयन-कक्ष में गई। वह सेट्ठिपुत्र के मुख द्वारा उसके भीतर प्रविष्ट हो गई। सेट्ठिपुत्र जागा तो सभी ने उसकी नजर और आवाज में विचित्रता लक्षित की। उठते ही उसने बड़वाश्व माँगा। पिता के मना करने पर भी नहीं माना। उसे अचानक अश्व-संचालन में अभूतपूर्व निपुणता हासिल हो गई थी। यह समाचार कृतपुण्य ने अमात्य वर्षकार और नन्दन साहू को दिया। उसने नंदन के जरिये कृतपुण्य को हिदायत दी कि वह बेटे पर कड़ी नजर रखे।

कीमियागर गौड़पाद अपनी प्रयोगशाला में देश-विदेश के विद्यार्थियों को रसायन के रहस्य बता रहे थे। तभी उन्होंने अप्रत्याशित ध्वनि सुनी। आचार्य ने देखा तो सेट्ठिपुत्र के चरणों में गिर पड़े। सेट्ठिपुत्र ने बताया कि कृतपुण्य कालिका द्वीप से उसका रत्न-भंडार और बड़वाश्व हर लाया। इसके अलावा उसे इस शरीर में आम्रपाली का रूप भी खींच लाया। वह भद्रनंदिनी (कुंडनी/विषकन्या) का मदभंजन भी करेगा। युद्ध में रक्तपान भी करेगा। यह भी कहा कि ये रहस्य अपने तक ही रखे। देवजुष्ट सेट्ठिपुत्र पुंडरीक भद्रनंदिनी के पास गया। उसकी जूठी मदिरा पी। चुम्बन द्वारा उसका प्राणहरण किया।

अम्बपाली का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। सप्तभूमिप्रासाद में जनसाधारण को उत्सव के लिए बेरोकटोक आने की आजादी थी। वहाँ युवराज स्वर्णसेन ने कहा कि आज दस्यु बलभद्र यहाँ होता तो खड्ग मदिरा में डुबो उसके आरपार कर देता। दस्यु वहाँ आया। एक चषक मद्य माँगने लगा। सूर्यमल्ल खड्ग ले उस पर झपटा। अम्बपाली ने उसे रोका। पहले मद्य देने को कहा। उसने मद्य पीया। युवराज को चुनौती दी। युवराज ने हमला किया पर दस्यु बचा गया। उसने युवराज के कंठ पर खड्ग रख उसे प्राण-भिक्षा माँगने को कहा। सामन्त-पुत्रों ने खड्ग उठाए तो कक्ष में अनेक दस्यु आ गए। दस्यु ने सभी को गहने आदि उतार अपने चरणों में रखने को कहा। सबने यही किया। कक्ष के बाहर भी अनेक दस्यु थे। अम्बपाली ने कहा कि सब कुछ लूट लो पर उन्होंने अन्न ही लूटा। वे दस्यु नहीं, भूखे कृषक थे। फिर दस्यु-समुदाय चला गया।

जयराज छद्मवेश में राजगृह जा रहे थे। मार्ग में मागध गुप्तचर मिले तो उनसे निपटे। कुछ को धोखा दिया, दो को मार डाला। फिर राजगृह की ओर चले। दस्यु बलभद्र, आम्रपाली, स्वर्णसेन और सूर्यमल्ल मधुबन पहुँचे। वे पहाड़ी पर चढ़ गए। नीचे जगह-जगह आग जल रही थी। दस्यु थे। तभी वैशाली की सेना ने दस्यु-दल पर हमला किया। दस्यु सहसा गायब हो गए। सारी सेना घाटी में

आ गई तो दस्यु-सेना उसके पीछे फैल गई। सेना को तीन ओर से घेरा। मारने लगी। स्वर्णसेन और सूर्यमल्ल ने आत्मसमर्पण कर नरसंहार रुकवाया। फिर दस्यु बलभद्र ने अतिथियों के आतिथ्य की समुचित व्यवस्था गुफाओं में कराई।

अम्बपाली जहाँ ठहरी थी, वहाँ सोम आया। सोम ने अपना हृदय समर्पित किया। अम्बपाली को सोम के मागध होने से बुरा लगा। उसने सोम से अपनी रक्षा की याचना की। जयराज राजगृह पहुँचे। पांथागार-अध्यक्ष से पूछा किन्तु वहाँ जगह नहीं थी। वैशाली के राजदूत वहीं ठहरे थे। जयराज ने स्वर्ण दिया तो एक अन्य नागरिक के मकान में ठहरने की व्यवस्था हुई। वहाँ एक 18 वर्षीय युवक सेवक भी मिला। प्रतिहार ने जयराज को बताया कि उसकी पत्नी वणिक सुखदास के पास गई थी ताकि सौदा ठीक से पट जाए। पत्नी सुंदर थी, सुखदास मोहित हो गया। बोला- आज रात मेरी सेवा में रहे तो 500 घोड़े और एक सहस्र चीनांशुक भेंट कर दूँगा। उसने मुझसे पूछा तो मैंने कहा- एक ही रात में इतना मिले तो हर्ज क्या है। उसने अश्व और चीनांशुक तो मेरे पास भेज दिए पर स्वयं नहीं आ रही। जयराज ने उसे यह कहकर सोने भेज दिया कि कल कुछ करेंगे। अगले दिन जयराज सुखदास के घर गए। सुखदास को डराया। प्रतिहार की पत्नी से बात की। पत्नी ने वही कहा कि उस लोभी पति से तो यह अच्छा जो एक रात के लिए इतना दे दे। जयराज ने उसका समर्थन किया। लौट आए।

वैशाली के दूत का बिम्बसार ने स्वागत किया। प्रतिहार के जरिये उस दूत से गुपचुप जयराज मिलता रहा। यह मागध संधिवैग्राहिक अभय कुमार को भी पता नहीं लगा। जयराज राजगृह में घूम-घूम जानकारियाँ जुटाते रहे। प्रतिहार की पत्नी उनको अंत:पुर के समाचार देने लगी। वैशाली के दूत ने उनसे मिल तय किया कि गणदूत बनकर जयराज ही सम्राट से मिलें। जयराज अनायास ही गणदूत बन सम्राट के सामने पेश हुए। मगध-नरेश ने गणदूतों का स्वागत किया। जयराज ने लिच्छवि कुमारी से विवाह का प्रस्ताव रखा जिसे बिम्बसार ने अस्वीकार कर दिया। जयराज और सम्राट में तनातनी हुई। जयराज क्रोधित और चिंतित होकर लौटे। अभयकुमार ने सम्राट को बताया कि गणदूत कोई और था तथा पेश कोई और हुआ। सम्राट ने दोनों को बंदी बना लाने का आदेश दिया। दोनों राजगृह से जा चुके थे। सम्राट ने सीमांत रक्षक को यही आदेश किसी भी मूल्य पर पूरा करने को कहा। जयराज जब सम्राट के सामने गए, उससे पहली रात ही गणदूत काप्यक ने महत्वपूर्ण जानकारियाँ ले वैशाली की ओर प्रस्थान कर दिया था। जयराज सम्राट से मिलकर अपने डेरे पर न जाकर युवक सेवक के साथ सीधे प्रस्थान कर गए।

अभयकुमार ने जयराज का रास्ता घेर ही लिया। जयराज भाग रहे थे और सोच रहे थे- युद्ध अनिवार्य। देवी अम्बपाली द्वारा ही मगध-साम्राज्य पर विजय सम्भव होगी। देखा कि वैशाली में जो युद्ध की आशंका है, वह मगध में नहीं है। सब निश्चिन्त हैं। जयराज और युवक सेवक के बीच बातचीत हुई। युवक की ससुराल पास ही थी। वहीं चलना तय किया पर शत्रुओं ने घेर लिया। जयराज ने युवक को ससुराल की ओर भगा दिया ताकि तुरन्त सहायता ला सके। स्वयं युद्ध किया। घायल हुए पर युद्ध जारी रखा। सेवक सहायता ले आया। सभी शत्रु मृत/बंदी हुए। अभयकुमार बंदी बनाए गए। सब गाँव की ओर चले। जयराज ने युवक सेवक को स्वर्ण दे घोड़ा मँगवाया और वैशाली प्रस्थान किया। युवक से कहा कि अभय राजकुमार है। इसे राजगृह भेज देना। तुम सुबह वैशाली के लिए चल देना। -मगध सेनापति चण्डभद्रिक और सम्राट ने युद्ध-तैयारियों का जायजा लिया। सेना को कूच की आज्ञा देने को कहा। -मोहन-गृह में वैशाली की दूसरी मंत्रणा हुई। उसमें जयराज ने बताया कि दस्यु बलभद्र ही सोम है और वह वैशाली में सदलबल मौजूद है। मगध-सेना व्यवस्थित है। वे सैनिक नौकरी के लिए लड़ते हैं, वैशाली के सैनिक अपने संघ की स्वतंत्रता के लिए। मगध-सेना कई जगह फँसी है। सेनापति सिंह ने वैशाली की सेना की तैयारियों की खबर दी। निर्णय हुआ कि मगध आक्रमण की प्रतीक्षा करने की बजाय उस पर अवसर आते ही आक्रमण हो। वर्षकार व उनके सहायक बन्दी बनाए जाएँ। वैशाली में वर्षकार, सोमिल, नन्दन साहू, सेट्ठि कृतपुण्य बंदी बना लिए गए। सेट्ठिपुत्र को घर में नजरबंद किया गया। सर्वत्र सैन्य हलचल थी। सभी स्वस्थ वयस्क पुरुष अनिवार्यत: सैनिक बना दिए गए। अम्बपाली-आवास भी फीका पड़ गया।

मगध सम्राट ने सेना सहित राजगृह से वैशाली की ओर प्रयाण किया। वे स्कंधावार पहुँचे। सेनापति सिंह ने वैशाली की नौसेना व्यवस्था का निरीक्षण किया। चरों ने उनको मगधराज की संपूर्ण गतिविधि की खबर दी। मगधराज ने चंडभद्रिक को महासेनापति और सोमप्रभ को सेनापति बनाया। सारी सैन्य-व्यवस्था में सबके कर्त्तव्य निश्चित किए। युद्ध शुरू हो गया। दोनों ने एक-दूसरे के व्यूह भेदे। भयंकर युद्ध किया। एक ही दिन में दोनों पक्षों की अपार हानि हुई। दो लोग छिपते हुए वैशाली पहुँचे। सप्तभूमि प्रासाद गए। उनमें एक मगध सम्राट थे। सम्राट के साथ आर्य गोपाल। अम्बपाली ने सत्कार किया। दोनों के गायब होने से मगध सेनापति चिंतित हुए। भद्रिक और सोम ने वैशाली को नेस्तनाबूद करने का संकल्प किया। सम्राट के गायब होने का समाचार गुप्त रखा गया। नौसेना युद्ध में मगध

की क्षति ज्यादा हुई। सोम ने कोसलराज विदूडभ और सेना द्वारा वैशाली को घेरा। एक लौह-यंत्र था- रथमूसल। उसकी चपेट में जो आता, उसी की चटनी बन जाती। वैशाली का पतन सन्निकट था। सम्राट ने सोम को संदेश भिजवाया कि अम्बपाली-आवास की रक्षा हो, सम्राट वहीं हैं। सोम ने युद्ध रोक दिया। वैशाली ने साँस ली। दूसरे मोर्चे पर भद्रिक को सिंह सेनापति और सेना ने तीन ओर से घेरा। महाशिलाकंटक विनाश यंत्र से वैशाली ने मगध सेना का खूब नाश किया। सोम से कोई सहायता भद्रिक को नहीं मिली। उलटे सोम द्वारा युद्ध रोक देने का समाचार मिला।

अम्बपाली ने सम्राट को बताया कि भद्रिक घिर गए, कभी भी आत्मसमर्पण कर सकते हैं। सोम ने युद्ध बन्द कर दिया। सम्राट सोम पर कुपित हुए। सोम की दृष्टि में एक नगरवधू को राजमहिषी बनाने के उद्देश्य से युद्ध छेड़ा गया था। अतः उन्होंने युद्ध बन्द किया। सम्राट गुप्त मार्ग से सोम तक पहुँचे। दोनों में विवाद हुआ फिरयुद्ध हुआ। सम्राट को गिरा उनके वक्ष पर सोम ने पाँव और कण्ठ पर खड्ग रखा। तभी अम्बपाली ने वहाँ आकर सम्राट के प्राणों की भिक्षा माँगी। कहा कि वह मगध साम्राज्ञी कभी नहीं बनेगी। सोम ने सम्राट को प्राणदान दिए पर बन्दी बना लिया। अम्बपाली को लिच्छवि सेनापति के अधिकार-क्षेत्र में पहुँचा दिया गया। भद्रिक ने आत्मसमर्पण कर दिया। माँग की कि वर्षकार से परामर्श करने दिया जाए ताकि संधि-वार्ता ठीक से हो सके और मगध सैनिकों को उनके अस्त्रों व अश्वों के साथ लौटने दिया जाए। सिंह ने वचन दिया कि यही होगा।

सिंह ने युद्ध-क्षेत्र का निरीक्षण किया। अनेक मागध भी घायल थे। उनके उपचार की व्यवस्था भी की। वैशाली के संथागार में पराजित शत्रु द्वारा प्रस्तावित संधि पर विचार हुआ। वैशाली की तीन शर्तें थीं – शत्रु का सैन्य-बल दुर्बल हो। शत्रु यथेष्ट युद्ध-क्षति दे। सुदूर पूर्वी तट हमारे व्यापार के लिए खुला रहे। सर्वसम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हो गया। गणोत्सव मनाया गया पर अम्बपाली-आवास सूना रहा, अंधकाराच्छन्न। सोम था युद्ध-क्षेत्र में। उसकी माँ वहाँ आई। उसकी गोद में वह रोया। माँ ने बताया कि उसके पिता बन्दी हैं। सम्राट ही उसके पिता है। उन्हें वह मुक्त करे। मरने से पहले माँ ने बताया कि उसकी बहिन के पिता वर्षकार हैं और उसके बिम्बसार। सोम ने बन्दीगृह जाकर पिता से क्षमा माँगी। दोनों ने मातंगी का अंतिम संस्कार किया। सोम ने कसम खाई कि अम्बपाली का पुत्र ही मगध सम्राट होगा। युद्ध के परिणामस्वरूप विजय पाने पर भी वैशाली का सुख सूख गया। अम्बपाली का द्वार सदैव बन्द रहता। उसने पुत्र को जन्म दिया, जिसे मगध सम्राट के पास पहुँचा दिया गया।

उरुबेला तीर्थ में गौतम बुद्ध थे। उनके धर्म व संघ के प्रथम दो उपासक थे- भिल्लक और तपस्सू। उरुबेला में ही बुद्ध ने बुद्धत्व पाया। उनके विविध भिक्षु बने। इकसठ अर्हत् (शिष्य) बने। उन्हें दीक्षित करने का अधिकार दिया। गौतम बुद्ध राजगृह पधारे। सोण कटिविंश भी दर्शनार्थ गया, प्रव्रज्या ली। शरीर सुकुमार था, तलवों में रोम उग आए। बुद्ध ने उसे एक तल्ले का जूता पहनने की अनुमति दी। उसके कहने पर सारे संघ के भिक्षुओं को भी यह अनुमति मिली। श्रेष्ठी अनाथीपिंडक ने राजगृह में बुद्ध का माहात्म्य जाना। श्रावस्ती में वर्षावास कराया। बहुत स्वर्ण खर्च किया। मगधेश बिम्बसार श्रेणिक, शालिभद्र को देखने गए। शालिभद्र को पहली बार पराधीनता का अनुभव हुआ। महावीर दर्शन। देशना-श्रवण। वैराग्य। दीक्षा। धन्य ने भी।

बुद्ध आए और अम्बपाली की बाड़ी में ठहरे। सप्तभूमि प्रासाद का द्वार बहुत दिनों के बाद खुला। वह बुद्ध के दर्शनार्थ गई। उनको भोजन का निमन्त्रण दिया। लिच्छवि राजपुरुष भी उसी दिन उसी समय भोजन-निमन्त्रण देना चाहते थे। किन्तु बुद्ध वचनबद्ध थे। उन्होंने अम्बपाली से निमन्त्रण खरीदना चाहा किन्तु अम्बपाली ने कहा- पूरी वैशाली के बदले भी नहीं। प्रसाद के सप्तम खण्ड पर बुद्ध ने भोजन किया। अम्बपाली ने सर्वस्व त्यागा और संघ को अर्पित किया और दीक्षा ली। सोम ने भी दीक्षा ली।

16

निर्मला

यों तो बाबू उदयभानुलाल के परिवार में बीसों ही प्राणी थे, कोई ममेरा भाई था, कोई फुफेरा, कोई भांजा था, कोई भतीजा, लेकिन यहां हमें उनसे कोई प्रयोजन नहीं, वह अच्छे वकील थे, लक्ष्मी प्रसन्न थीं और कुटुम्ब के दरिद्र प्राणियों को आश्रय देना उनका कर्त्तव्य ही था। हमारा सम्बन्ध तो केवल उनकी दोनों कन्याओं से है, जिनमें बड़ी का नाम निर्मला और छोटी का कृष्णा था। अभी कल दोनों साथ-साथ गुड़िया खेलती थीं। निर्मला का पन्द्रहवां साल था, कृष्णा का दसवां, फिर भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों चंचल, खिलाड़िन और सैर-तमाशे पर जान देती थीं। दोनों गुड़िया का धूमधाम से ब्याह करती थीं, सदा काम से जी चुराती थीं। मां पुकारती रहती थीं, पर दोनों कोठे पर छिपी बैठी रहती थीं कि न जाने किस काम के लिए बुलाती हैं। दोनों अपने भाइयों से लड़ती थीं, नौकरों को डांटती थीं और बाजे की आवाज सुनते ही द्वार पर आकर खड़ी हो जाती थीं पर आज एकाएक एक ऐसी बात हो गई है, जिसने बड़ी को बड़ी और छोटी को छोटी बना दिया है। कृष्णा यही है, पर निर्मला बड़ी गम्भीर, एकान्त-प्रिय और लज्जाशील हो गई है। इधर महीनों से बाबू उदयभानुलाल निर्मला के विवाह की बातचीत कर रहे थे। आज उनकी मेहनत ठिकाने लगी है। बाबू भालचन्द्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवन मोहन सिन्हा से बात पक्की हो गई है। वर के पिता ने कह दिया है कि आपकी खुशी है दहेज दें, या न दें, मुझे इसकी परवाह नहीं, हां, बारात में जो लोग जाऐं उनका आदर-सत्कार अच्छी तरह होना

चहिए, जिसमें मेरी और आपकी जग-हंसाई न हो। बाबू उदयभानुलाल थे तो वकील, पर संचय करना न जानते थे। दहेज उनके सामने कठिन समस्या थी। इसलिए जब वर के पिता ने स्वयं कह दिया कि मुझे दहेज की परवाह नहीं, तो मानों उन्हें आंखें मिल गईं। डरते थे, न जाने किस-किस के सामने हाथ फैलाना पड़े, दो-तीन महाजनों को ठीक कर रखा था। उनका अनुमान था कि हाथ रोकने पर भी बीस हजार से कम खर्च न होंगे। यह आश्वासन पाकर वे खुशी के मारे फूले न समाये।

इसकी सूचना ने अज्ञान बलिका को मुंह ढांप कर एक कोने में बिठा रखा है। उसके हृदय में एक विचित्र शंका समा गई है, रोम-रोम में एक अज्ञात भय का संचार हो गया है, न जाने क्या होगा। उसके मन में वे उमंगें नहीं हैं, जो युवतियों की आंखों में तिरछी चितवन बनकर, ओंठों पर मधुर हास्य बनकर और अंगों में आलस्य बनकर प्रकट होती हैं। नहीं वहां अभिलाषाएं नहीं हैं वहां केवल शंकाएं, चिन्ताएं और भी कल्पनाएं हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है।

कृष्णा कुछ-कुछ जानती हैं, कुछ-कुछ नहीं जानती। जानती हैं, बहन को अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे, द्वार पर बाजे बजेंगे, मेहमान आयेंगे, नाच होगा-यह जानकर प्रसन्न है और यह भी जानती हैं कि बहन सबके गले मिलकर रोयेगी, यहां से रो-धोकर विदा हो जाऐगी, मैं अकेली रह जाऊंगी- यह जानकर दु:खी है, पर यह नहीं जानती कि यह इसलिए हो रहा है, माताजी और पिताजी क्यों बहन को इस घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं। बहन ने तो किसी को कुछ नहीं कहा, किसी से लड़ाई नहीं की, क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी ये लोग निकाल देंगे? मैं भी इसी तरह कोने में बैठकर रोऊंगी और किसी को मुझ पर दया न आयेगी? इसलिए वह भयभीत भी है।

संध्या का समय था, निर्मला छत पर जानकर अकेली बैठी आकाश की और तृषित नेत्रों से ताक रही थी। ऐसा मन होता था पंख होते, तो वह उड़ जाती और इन सारे झंझटों से छूट जाती। इस समय बहुधा दोनों बहनें कहीं सैर करने जाया करती थीं। बगी खाली न होती, तो बगीचे में ही टहला करतीं, इसलिए कृष्णा उसे खोजती फिरती थी, जब कहीं न पाया, तो छत पर आई और उसे देखते ही हंसकर बोली-तुम यहां आकर छिपी बैठी हो और मैं तुम्हें ढूंढती फिरती हूँ। चलो, बगी तैयार करा आयी हूँ।

निर्मला- ने उदासीन भाव से कहा-तू जा, मैं न जाऊंगी।

कृष्णा-नहीं मेरी अच्छी दीदी, आज जरूर चलो। देखो, कैसी ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है।

निर्मला-मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।

कृष्णा की आंखें डबडबा आई। कांपती हुई आवाज से बोली- आज तुम क्यों नहीं चलतीं मुझसे क्यों नहीं बोलतीं क्यों इधर-उधर छिपी-छिपी फिरती हो? मेरा जी अकेले बैठे-बैठे घबड़ाता है। तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊंगी। यहीं तुम्हारे साथ बैठी रहूँगी।

निर्मला-और जब मैं चली जाऊंगी तब क्या करेगी? तब किसके साथ खेलेगी और किसके साथ घूमने जाऐगी, बता?

कृष्णा-मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। अकेले मुझसे यहां न रहा जाऐगा।

निर्मला मुस्कराकर बोली-तुझे अम्मा न जाने देंगी।

कृष्णा-तो मैं भी तुम्हें न जाने दूंगी। तुम अम्मा से कह क्यों नहीं देती कि मैं न जाऊंगी।

निर्मला- कह तो रही हूँ, कोई सुनता है!

कृष्णा-तो क्या यह तुम्हारा घर नहीं है?

निर्मला-नहीं, मेरा घर होता, तो कोई क्यों जबर्दस्ती निकाल देता?

कृष्णा-इसी तरह किसी दिन मैं भी निकाल दी जाऊंगी?

निर्मला-और नहीं क्या तू बैठी रहेगी! हम लड़कियां हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता।

कृष्णा-चन्दर भी निकाल दिया जाऐगा?

निर्मला-चन्दर तो लड़का है, उसे कौन निकालेगा?

कृष्णा-तो लड़कियां बहुत खराब होती होंगी?

निर्मला-खराब न होतीं, तो घर से भगाई क्यों जाती?

कृष्णा-चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भगाता। हम-तुम तो कोई बदमाशी भी नहीं करतीं।

एकाएक चन्दर धम-धम करता हुआ छत पर आ पहुँचा और निर्मला को देखकर बोला-अच्छा आप यहां बैठी हैं। ओहो! अब तो बाजे बजेंगे, दीदी दुल्हन बनेंगी, पालकी पर चढ़ेंगी, ओहो! ओहो!

चन्दर का पूरा नाम चन्द्रभानु सिन्हा था। निर्मला से तीन साल छोटा और कृष्णा से दो साल बड़ा।

निर्मला–चन्दर, मुझे चिढ़ाओगे तो अभी जाकर अम्मा से कह दूंगी।

चन्द्र–तो चिढ़ती क्यों हो तुम भी बाजे सुनना। ओ हो–हो! अब आप दुल्हन बनेंगी। क्यों किशनी, तू बाजे सुनेगी न वैसे बाजे तूने कभी न सुने होंगे।

कृष्णा–क्या बैण्ड से भी अच्छे होंगे?

चन्द्र–हां–हां, बैण्ड से भी अच्छे, हजार गुने अच्छे, लाख गुने अच्छे। तुम जानो क्या एक बैण्ड सुन लिया, तो समझने लगीं कि उससे अच्छे बाजे नहीं होते। बाजे बजानेवाले लाल–लाल वर्दियां और काली–काली टोपियां पहने होंगे। ऐसे खबूसूरत मालूम होंगे कि तुमसे क्या कहूँ आतिशबाजियां भी होंगी, हवाइयां आसमान में उड़ जाऐंगी और वहां तारों में लगेंगी तो लाल, पीले, हरे, नीले तारे टूट–टूटकर गिरेंगे। बड़ा बजा आयेगा।

कृष्णा–और क्या–क्या होगा चन्दन, बता दे मेरे भैया?

चन्द्र–मेरे साथ घूमने चल, तो रास्ते में सारी बातें बता दूं। ऐसे–ऐसे तमाशे होंगे कि देखकर तेरी आंखें खुल जाऐंगी। हवा में उड़ती हुई परियां होंगी, सचमुच की परियां।

कृष्णा–अच्छा चलो, लेकिन न बताओगे, तो मारूंगी।

चन्द्रभानू और कृष्णा चले गए, पर निर्मला अकेली बैठी रह गई। कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ। कृष्णा, जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी निवठुर हो गई। अकेली छोड़कर चली गई। बात कोई न थी, लेकिन दु:खी हृदय दुखती हुई आंख है, जिसमें हवा से भी पीड़ा होती हैं। निर्मला बड़ी देर तक बैठी रोती रही। भाई–बहन, माता–पिता, सभी इसी भांति मुझे भूल जाऐंगे, सबकी आंखें फिर जाऐंगी, फिर शायद इन्हें देखने को भी तरस जाऊं।

बाग में फूल खिले हुए थे। मीठी–मीठी सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे। निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी–पड़ी सो गई और आंख लगते ही उसका मन स्वप्न–देश में, विचरने लगा। क्या देखती हैं कि सामने एक नदी लहरें मार रही है और वह नदी के किनारे नाव की बाठ देख रही है। सन्ध्या का समय है। अंधेरा किसी भयंकर जन्तु की भांति बढ़ता चला आता है। वह घोर चिन्ता में पड़ी हुई है कि कैसे यह नदी पार होगी, कैसे पहुँचूंगी! रो रही है कि कहीं रात न हो जाऐ, नहीं तो मैं अकेली यहां कैसे रहूँगी। एकाएक उसे एक सुन्दर नौका घाट की ओर आती दिखाई देती हैं। वह खुशी से उछल पड़ती हैं और ज्योही नाव घाट पर आती हैं,

वह उस पर चढ़ने के लिए बढ़ती हैं, लेकिन ज्योंही नाव के पटरे पर पैर रखना चाहती हैं, उसका मल्लाह बोल उठता है–तेरे लिए यहां जगह नहीं है! वह मल्लाह की खुशामद करती हैं, उसके पैरों पड़ती हैं, रोती हैं, लेकिन वह यह कहे जाता है, तेरे लिए यहां जगह नहीं है। एक क्षण में नाव खुल जाती हैं। वह चिल्ला–चिल्लाकर रोने लगती हैं। नदी के निर्जन तट पर रात भर कैसे रहेगी, यह सोच वह नदी में कूद कर उस नाव को पकड़ना चाहती हैं कि इतने में कहीं से आवाज आती हैं–ठहरो, ठहरो, नदी गहरी है, डूब जाओगी। वह नाव तुम्हारे लिए नहीं है, मैं आता हूँ, मेरी नाव में बैठ जाओ। मैं उस पार पहुँचा दूंगा। वह भयभीत होकर इधर–उधर देखती हैं कि यह आवाज कहां से आई? थोड़ी देर के बाद एक छोटी–सी डोंगी आती दिखाई देती हैं। उसमें न पाल है, न पतवार और न मस्तूल। पेंदा फटा हुआ है, तख्ते टूटे हुए, नाव में पानी भरा हुआ है और एक आदमी उसमें से पानी उलीच रहा है। वह उससे कहती हैं, यह तो टूटी हुई है, यह कैसे पार लगेगी? मल्लाह कहता है– तुम्हारे लिए यही भेजी गई है, आकर बैठ जाओ! वह एक क्षण सोचती हैं– इसमें बैठूं या न बैठूं? अन्त में वह निश्चय करती हैं– बैठ जाऊं। यहां अकेली पड़ी रहने से नाव में बैठ जाना फिर भी अच्छा है। किसी भयंकर जन्तु के पेट में जाने से तो यही अच्छा है कि नदी में डूब जाऊं। कौन जाने, नाव पार पहुँच ही जाऐ। यह सोचकर वह प्राणों की मुट्ठी में लिए हुए नाव पर बैठ जाती हैं। कुछ देर तक नाव डगमगाती हुई चलती हैं, लेकिन प्रतिक्षण उसमें पानी भरता जाता है। वह भी मल्लाह के साथ दोनों हाथों से पानी उलीचने लगती हैं। यहां तक कि उनके हाथ रह जाते हैं, पर पानी बढ़ता ही चला जाता है, आखिर नाव चक्कर खाने लगती हैं, मालूम होती हैं– अब डूबी, अब डूबी। तब वह किसी अदृश्य सहारे के लिए दोनों हाथ फैलाती हैं, नाव नीचे जाती हैं और उसके पैर उखड़ जाते हैं। वह जोर से चिल्लाई और चिल्लाते ही उसकी आंखें खुल गई। देखा, तो माता सामने खड़ी उसका कन्धा पकड़कर हिला रही थी।

बाबू उदयभानुलाल का मकान बाजार बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े और कमरे में दर्जी की सुईयां चल रही हैं। सामने नीम के नीचे बढ़ई चारपाइयां बना रहा है। खपरैल में हलवाई के लिए भट्ठा खोदा गया है। मेहमानों के लिए अलग एक मकान ठीक किया गया है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि हरेक मेहमान के लिए एक–एक चारपाई, एक–एक कुर्सी और एक–एक मेज हो। हर तीन मेहमानों के लिए एक–एक कहार रखने की तजवीज हो रही है। अभी

बारात आने में एक महीने की देर है, लेकिन तैयारियां अभी से हो रही हैं। बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाऐ कि किसी को जबान हिलाने का मौका न मिले। वे लोग भी याद करें कि किसी के यहां बारात में गये थे। पूरा मकान बर्तनों से भरा हुआ है। चाय के सेट हैं, नाश्ते की तश्तरियां, थाल, लोटे, गिलास। जो लोग नित्य खाट पर पड़े हुक्का पीते रहते थे, बड़ी तत्परता से काम में लगे हुए हैं। अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का ऐसा अच्छा अवसर उन्हें फिर बहुत दिनों के बाद मिलेगा। जहां एक आदमी को जाना होता है, पांच दौड़ते हैं। काम कम होता है, हुल्लड़ अधिक। जरा-जरा सी बात पर घण्टों तर्क-वितर्क होता है और अन्त में वकील साहब को आकर निर्णय करना पड़ता है। एक कहता है, यह घी खराब है, दूसरा कहता है, इससे अच्छा बाजार में मिल जाऐ तो टांग की राह से निकल जाऊं। तीसरा कहता है, इसमें तो हीक आती हैं। चौथा कहता है, तुम्हारी नाक ही सड़ गई है, तुम क्या जानो घी किसे कहते हैं। जब से यहां आये हो, घी मिलने लगा है, नहीं तो घी के दर्शन भी न होते थे! इस पर तकरार बढ़ जाती हैं और वकील साहब को झगड़ा चुकाना पड़ता है।

रात के नौ बजे थे। उदयभानुलाल अन्दर बैठे हुए खर्च का तखमीना लगा रहे थे। वह प्रायः रोज ही तखमीना लगते थे पर रोज ही उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन और परिवर्धन करना पड़ता था। सामने कल्याणी भौंहे सिकोड़े हुए खड़ी थी। बाबू साहब ने बड़ी देर के बाद सिर उठाया और बोले-दस हजार से कम नहीं होता, बल्कि शायद और बढ़ जाऐ।

कल्याणी-दस दिन में पांच से दस हजार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख नौबत आ जाऐ।

उदयभानु-क्या करूं, जग हंसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। कोई शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज एक पाई नहीं लेते तो मेरा भी कर्त्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रखूं।

कल्याणी- जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न नहीं रख सकता। उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई-न-कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियां भी मयस्सर नहीं वह भी बारात में जाकर तानाशाह बन बैठता है। तेल खुशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहां से बटोर लाये, कहार बात नहीं सुनते, लालटेनें धुआं देती हैं, कुर्सियों में खटमल है, चारपाइयां ढीली हैं, जनवासे की जगह हवादार नहीं।

ऐसी-ऐसी हजारों शिकायतें होती रहती हैं। उन्हें आप कहां तक रोकियेगा? अगर यह मौका न मिला, तो और कोई ऐब निकाल लिये जाऐंगे। भई, यह तेल तो रंडियों के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिए। जनाब ने यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखाई है, मानो हमने साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं यमदूत हैं, जब देखिये सिर पर सवार! लालटेनें ऐसी भेजी हैं कि आंखें चमकने लगती हैं, अगर दस-पांच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े तो आंखें फूट जाएं। जनवासा क्या है, अभागे का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से झोंके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूँगी कि बारतियों के नखरों का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु- तो आखिर तुम मुझे क्या करने को कहती हो?

कल्याणी-कह तो रही हूँ, पक्का इरादा कर लो कि मैं पांच हजार से अधिक न खर्च करूंगा। घर में तो टका है नहीं, कर्ज ही का भरोसा ठहरा, तो इतना कर्ज क्यों लें कि जिन्दगी में अदा न हो। आखिर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए।

उदयभानु- तो आज मैं मरा जाता हूँ?

कल्याणी- जीने-मरने का हाल कोई नहीं जानता।

कल्याणी- इसमें बिगड़ने की तो कोई बात नहीं। मरना एक दिन सभी को है। कोई यहां अमर होकर थोड़े ही आया है। आंखें बन्द कर लेने से तो होने-वाली बात न टलेगी। रोज आंखों देखती हूँ, बाप का देहान्त हो जाता है, उसके बच्चे गली-गली ठोकरें खाते फिरते हैं। आदमी ऐसा काम ही क्यों करे?

उदयभानु न जलकर कहा- जो अब समझ लूं कि मेरे मरने के दिन निकट आ गये, यही तुम्हारी भविष्यवाणी है! सुहाग से स्त्रियों का जी ऊबते नहीं सुना था, आज यह नई बात मालूम हुई। रंडापे में भी कोई सुख होगा ही!

कल्याणी-तुमसे दुनिया की कोई भी बात कही जाती हैं, तो जहर उगलने लगते हो। इसलिए न कि जानते हो, इसे कहीं टिकना नहीं है, मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है या और कुछ! जहां कोई बात कही, बस सिर हो गये, मानों मैं घर की लौंडी हूँ, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूँ, तुम और भी दबाते हो। मुफ्तखोर माल उड़ायें, कोई मुंह न खोले, शराब-कबाब में रुपये लुटें, कोई जबान न हिलाये। वे सारे कांटे मेरे बच्चों ही के लिए तो बोये जा रहे हैं।

उदयभानु लाल- तो मैं क्या तुम्हारा गुलाम हूँ?

कल्याणी- तो क्या मैं तुम्हारी लौंडी हूँ?

उदयभानु लाल- ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारों पर नाचते हैं।

कल्याणी- तो ऐसी स्त्रियों भी होंगी, जो मर्दों की जूतियां सहा करती हैं।

उदयभानु लाल- मैं कमाकर लाता हूँ, जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ। किसी को बोलने का अधिकार नहीं।

कल्याणी- तो आप अपना घर संभलिये! ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहां मेरी कोई पूछ नहीं घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी। इससे जौ भर भी कम नहीं। अगर तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं भी अपने मन की रानी हूँ। तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है। तुम्हारे बच्चे हैं, मारो या जिलाओ। न आंखों से देखूंगी, न पीड़ा होगी। आंखें फूटीं, पीर गई!

उदयभानु- क्या तुम समझती हो कि तुम न संभालेगी तो मेरा घर ही न संभलेगा? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर संभाल सकता हूँ।

कल्याणी-कौन? अगर 'आज के महीने दिन मिट्टी में न मिल जाऐ, तो कहना कोई कहती थी!

यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा, वह झमककर उठी और कमरे के द्वार की ओर चली। वकील साहब मुकदमें में तो खूब मीन-मेख निकालते थे, लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही-सा ज्ञान था। यही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता है। अगर वे अब भी नरम पड़ जाते और कल्याणी का हाथ पकड़कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती, लेकिन आपसे यह तो हो न सका, उल्टे चलते-चलते एक और चरका दिया।

बोल-मैके का घमण्ड होगा?

कल्याणी ने द्वारा पर रुक कर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा और बिफरकर बोल- मैके वाले मेरे तकदीर के साथी नहीं है और न मैं इतनी नीच हूँ कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूं।

उदयभानु-तब कहां जा रही हो?

कल्याणी-तुम यह पूछने वाले कौन होते हो? ईश्वर की सृष्टि में असंख्य प्राप्रियों के लिए जगह है, क्या मेरे ही लिए जगह नहीं है?

यह कहकर कल्याणी कमरे के बाहर निकल गई। आंगन में आकर उसने एक बार आकाश की ओर देखा, मानो तारागण को साक्षी दे रही है कि मैं इस घर में कितनी निर्दयता से निकाली जा रही हूँ। रात के ग्यारह बज गये थे। घर

में सन्नाटा छा गया था, दोनों बेटों की चारपाई उसी के कमरे में रहती थी। वह अपने कमरे में आई, देखा चन्द्रभानु सोया है, सबसे छोटा सूर्यभानु चारपाई पर उठ बैठा है। माता को देखते ही वह बोला–तुम तहां दई तीं अम्मां?

कल्याणी दूर ही से खड़े–खड़े बोली– कहीं तो नहीं बेटा, तुम्हारे बाबूजी के पास गई थी।

सूर्य–तुम तली दई, मुधे अतेले दर लदता था। तुम क्यों तली दई तीं, बताओ?

यह कहकर बच्चे ने गोद में चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला दिये। कल्याणी अब अपने को न रोक सकी। मातृ–स्नेह के सुधा–प्रवाह से उसका संतप्त हृदय परिप्लावित हो गया। हृदय के कोमल पौधे, जो क्रोध के ताप से मुरझा गये थे, फिर हरे हो गये। आंखें सजल हो गई। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और छाती से लगाकर बोली–तुमने पुकार क्यों न लिया, बेटा?

सूर्य–पुतालता तो ता, तुम थुनती न तीं, बताओ अब तो कबी न दाओगी।

कल्याणी–नहीं भैया, अब नहीं जाऊंगी।

यह कहकर कल्याणी सूर्यभानु को लेकर चारपाई पर लेटी। मां के हृदय से लिपटते ही बालक नि:शंक होकर सो गया, कल्याणी के मन में संकल्प–विकल्प होने लगे, पति की बातें याद आतीं तो मन होता–घर को तिलांजलि देकर चली जाऊं, लेकिन बच्चों का मुंह देखती, तो वासल्य से चित्त गद्रगद्र हो जाता। बच्चों को किस पर छोड़कर जाऊं? मेरे इन लालों को कौन पालेगा, ये किसके होकर रहेंगे? कौन प्रात:काल इन्हें दूध और हलवा खिलायेगा, कौन इनकी नींद सोयेगा, इनकी नींद जागेगा? बेचारे कौड़ी के तीन हो जाऐंगे। नहीं प्यारो, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगी। तुम्हारे लिए सब कुछ सह लूंगी। निरादर–अपमान, जली–कटी, खोटी–खरी, घुड़की–झिड़की सब तुम्हारे लिए सहूँगी।

कल्याणी तो बच्चे को लेकर लेटी, पर बाबू साहब को नींद न आई उन्हें चोट करनेवाली बातें बड़ी मुश्किल से भूलती थीं। उफ, यह मिजाज! मानों मैं ही इनकी स्त्री हूँ। बात मुंह से निकालनी मुश्किल है। अब मैं इनका गुलाम होकर रहूँ। घर में अकेली यह रहें और बाकी जितने अपने बेगाने हैं, सब निकाल दिये जाऐं। जला करती हैं। मनाती हैं कि यह किसी तरह मरें, तो मैं अकेली आराम करूं। दिल की बात मुंह से निकल ही आती हैं, चाहे कोई कितना ही छिपाये। कई दिन से देख रहा हूँ ऐसी ही जली–कटी सुनाया करती हैं। मैके का घमण्ड होगा, लेकिन वहां कोई भी न पूछेगा, अभी सब आवभगत करते हैं। जब जाकर

सिर पड़ जाऐंगी तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाऐगा। रोती हुई जाऐंगी। वाह रे घमण्ड! सोचती हैं-मैं ही यह गृहस्थी चलाती हूँ। अभी चार दिन को कहीं चला जाऊं, तो मालूम हो जाऐगा, सारी शेखी किरकिरी हो जाऐगा। एक बार इनका घमण्ड तोड़ ही दूं। जरा वैधव्य का मजा भी चखा दूं। न जाने इनकी हिम्मत कैसे पड़ती हैं कि मुझे यों कोसने लगती हैं। मालूम होता है, प्रेम इन्हें छू नहीं गया या समझती हैं, यह घर से इतना चिमटा हुआ है कि इसे चाहे जितना कोसूं, टलने का नाम न लेगा। यही बात है, पर यहां संसार से चिमटनेवाले जीव नहीं हैं! जहन्नुम में जाऐ यह घर, जहां ऐसे प्राणियों से पाला पड़े। घर है या नरक? आदमी बाहर से थका-मांदा आता है, तो उसे घर में आराम मिलता है। यहां आराम के बदले कोसने सुनने पड़ते हैं। मेरी मृत्यु के लिए व्रत रखे जाते हैं। यह है पचीस वर्ष के दाम्पत्य जीवन का अन्त! बस, चल ही दूं। जब देख लूंगा इनका सारा घमण्ड धूल में मिल गया और मिजाज ठण्डा हो गया, तो लौट आऊंगा। चार-पांच दिन काफी होंगे। लो, तुम भी याद करोगी किसी से पाला पड़ा था।

यही सोचते हुए बाबू साहब उठे, रेशमी चादर गले में डाली, कुछ रुपये लिये, अपना कार्ड निकालकर दूसरे कुर्ते की जेब में रखा, छड़ी उठाई और चुपके से बाहर निकले। सब नौकर नींद में मस्त थे। कुत्ता आहट पाकर चौंक पड़ा और उनके साथ हो लिया।

पर यह कौन जानता था कि यह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। जीवन-रंगशाला का वह निर्दय सूत्रधार किसी अगम गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर क्रीड़ा दिखा रहा है। यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रही है, अभिनय सत्य का रूप ग्रहण करने वाला है।

निशा ने इन्दू को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतंक जमा रखा था। सद्रवृत्तियां मुंह छिपाये पड़ी थीं और कुवृत्तियां विजय-गर्व से इठलाती फिरती थीं। वन में वन्यजन्तु शिकार की खोज में विचार रहे थे और नगरों में नर-पिशाच गलियों में मंडराते फिरते थे।

बाबू उदयभानुलाल लपके हुए गंगा की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने अपना कुर्ता घाट के किनारे रखकर पांच दिन के लिए मिर्जापुर चले जाने का निश्चय किया था। उनके कपड़े देखकर लोगों को डूब जाने का विश्वास हो जाऐगा, कार्ड कुर्ते की जेब में था। पता लगाने में कोई दिक्कत न हो सकती थी। दम-के-दम में सारे शहर में खबर मशहूर हो जाऐगी। आठ बजते-बजते तो मेरे द्वार पर सारा शहर जमा हो जाऐगा, तब देखूं, देवी जी क्या करती हैं?

यही सोचते हुए बाबू साहब गलियों में चले जा रहे थे, सहसा उन्हें अपने पीछे किसी दूसरे आदमी के आने की आहट मिली, समझे कोई होगा। आगे बढ़े, लेकिन जिस गली में वह मुड़ते उसी तरफ यह आदमी भी मुड़ता था। तब बाबू साहब को आशंका हुई कि यह आदमी मेरा पीछा कर रहा है। ऐसा आभास हुआ कि इसकी नीयत साफ नहीं है। उन्होंने तुरन्त जेबी लालटेन निकाली और उसके प्रकाश में उस आदमी को देखा। एक वरिष्ठ मनुष्य कन्धे पर लाठी रखे चला आता था। बाबू साहब उसे देखते ही चौंक पड़े। यह शहर का छटा हुआ बदमाश था। तीन साल पहले उस पर डाके का अभियोग चला था। उदयभानु ने उस मुकदमे में सरकार की ओर से पैरवी की थी और इस बदमाश को तीन साल की सजा दिलाई थी। तभी से वह इनके खून का प्यासा हो रहा था। कल ही वह छूटकर आया था। आज दैवात् साहब अकेले रात को दिखाई दिये, तो उसने सोचा यह इनसे दाव चुकाने का अच्छा मौका है। ऐसा मौका शायद ही फिर कभी मिले। तुरन्त पीछे हो लिया और वार करने की घात ही में था कि बाबू साहब ने जेबी लालटेन जलाई। बदमाश जरा ठिठककर बोला–क्यों बाबूजी पहचानते हो? मैं हूँ मतई।

बाबू साहब ने डपटकर कहा– तुम मेरे पीछे–पीछे क्यों आ हे हो?

मतई– क्यों, किसी को रास्ता चलने की मनाही है? यह गली तुम्हारे बाप की है?

बाबू साहब जवानी में कुश्ती लड़े थे, अब भी हृष्ट–पुष्ट आदमी थे। दिल के भी कच्चे न थे। छड़ी संभालकर बोले–अभी शायद मन नहीं भरा। अबकी सात साल को जाओगे।

मतई–मैं सात साल को जाऊंगा या चौदह साल को, पर तुम्हें जिंदा न छोडूंगा। हां, अगर तुम मेरे पैरों पर गिरकर कसम खाओ कि अब किसी को सजा न कराऊंगा, तो छोड़ दूं। बोलो मंजूर है?

उदयभानु–तेरी शामत तो नहीं आई?

मतई–शामत मेरी नहीं आई, तुम्हारी आई है। बोलो खाते हो कसम–एक!

उदयभानु–तुम हटते हो कि मैं पुलिसमैन को बुलाऊं।

मतई–दो!

उदयभानु– 'गरजकर' हट जा बादशाह, सामने से!

मतई–तीन!

मुंह से 'तीन' शब्द निकालते ही बाबू साहब के सिर पर लाठी का ऐसा

तुला हाथ पड़ा कि वह अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े। मुंह से केवल इतना ही निकला–हाय! मार डाला!

मतई ने समीप आकर देखा, तो सिर फट गया था और खून की घर निकल रही थी। नाड़ी का कहीं पता न था। समझ गया कि काम तमाम हो गया। उसने कलाई से सोने की घड़ी खोल ली, कुर्ते से सोने के बटन निकाल लिये, उंगली से अंगूठी उतारी और अपनी राह चला गया, मानो कुछ हुआ ही नहीं। हां, इतनी दया की कि लाश रास्ते से घसीटकर किनारे डाल दी। हाय, बेचारे क्या सोचकर चले थे, क्या हो गया! जीवन, तुमसे ज्यादा असार भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या वह उस दीपक की भांति ही क्षणभंगुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है! पानी के एक बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती हैं, जीवन में उतना सार भी नहीं। सांस का भरोसा ही क्या और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं! नहीं जानते, नीचे जानेवाली सांस ऊपर आयेगी या नहीं, पर सोचते इतनी दूर की हैं, मानो हम अमर हैं।

उस दिन से निर्मला का रंग–ढंग बदलने लगा। उसने अपने को कर्त्तव्य पर मिटा देने का निश्चय कर दिया। अब तक नैराश्य के संताप में उसने कर्त्तव्य पर ध्यान ही न दिया था उसके हृदय में विप्लव की ज्वाला–सी दहकती रहती थी, जिसकी असह्य वेदना ने उसे संज्ञाहीन–सा कर रखा था। अब उस वेदना का वेग शांत होने लगा। उसे ज्ञात हुआ कि मेरे लिए जीवन का कोई आंनद नहीं। उसका स्वप्न देखकर क्यों इस जीवन को नष्ट करूं। संसार में सब–के–सब प्राणी सुख–सेज ही पर तो नहीं सोते। मैं भी उन्हीं अभागों में से हूँ। मुझे भी विधाता ने दुख की गठरी ढोने के लिए चुना है। वह बोझ सिर से उतर नहीं सकता। उसे फेंकना भी चाहूँ, तो नहीं फेंक सकती। उस कठिन भार से चाहे आंखों में अंधेरा छा जाऐ, चाहे गर्दन टूटने लगे, चाहे पैर उठाना दुस्तर हो जाऐ, लेकिन वह गठरी ढोनी ही पड़ेगी? उम्र भर का कैदी कहां तक रोयेगा? रोये भी तो कौन देखता है? किसे उस पर दया आती हैं? रोने से काम में हर्ज होने के कारण उसे और यातनाएं ही तो सहनी पड़ती हैं।

दूसरे दिन वकील साहब कचहरी से आये तो देखा–निर्मला की सहास्य मूर्ति अपने कमरे के द्वार पर खड़ी है। वह अनिन्द्य छवि देखकर उनकी आंखें तृप्त हो गयीं। आज बहुत दिनों के बाद उन्हें यह कमल खिला हुआ दिखलाई दिया। कमरे में एक बड़ा–सा आईना दीवार में लटका हुआ था। उस पर एक परदा

पड़ा रहता था। आज उसका परदा उठा हुआ था। वकील साहब ने कमरे में कदम रखा, तो शीशे पर निगाह पड़ी। अपनी सूरत साफ-साफ दिखाई दी। उनके हृदय में चोट-सी लग गयी। दिन भर के परिश्रम से मुख की कांति मलिन हो गयी थी, भांति-भांति के पौष्टिक पदार्थ खाने पर भी गालों की झुर्रियां साफ दिखाई दे रही थीं। तोंद कसी होने पर भी किसी मुंहजोर घोड़े की भांति बाहर निकली हुई थी। आईने के ही सामने किन्तू दूसरी ओर ताकती हुई निर्मला भी खड़ी हुई थी। दोनों सूरतों में कितना अंतर था। एक रत्न जटित विशाल भवन, दूसरा टूटा-फूटा खंडहर। वह उस आईने की ओर न देख सके। अपनी यह हीनावस्था उनके लिए असह्य थी। वह आईने के सामने से हट गये, उन्हें अपनी ही सूरत से घृणा होने लगी। फिर इस रूपवती कामिनी का उनसे घृणा करना कोई आश्चर्य की बात न थी। निर्मला की ओर ताकने का भी उन्हें साहस न हुआ। उसकी यह अनुपम छवि उनके हृदय का शूल बन गयी।

निर्मला ने कहा-आज इतनी देर कहां लगायी? दिन भर राह देखते-देखते आंखें फूट जाती हैं।

तोताराम ने खिड़की की ओर ताकते हुए जवाब दिया-मुकदमों के मारे दम मारने की छुट्टी नहीं मिलती। अभी एक मुकदमा और था, लेकिन मैं सिरदर्द का बहाना करके भाग खड़ा हुआ।

निर्मला-तो क्यों इतने मुकदमे लेते हो? काम उतना ही करना चाहिए जितना आराम से हो सके। प्राण देकर थोड़े ही काम किया जाता है। मत लिया करो, बहुत मुकदमे। मुझे रुपयों का लालच नहीं। तुम आराम से रहोगे, तो रुपये बहुत मिलेंगे।

तोताराम-भई, आती हुई लक्ष्मी भी तो नहीं ठुकराई जाती।

निर्मला-लक्ष्मी अगर रक्त और मांस की भेंट लेकर आती हैं, तो उसका न आना ही अच्छा। मैं धन की भूखी नहीं हूँ।

इस वक्त मंसाराम भी स्कूल से लौटा। धूप में चलने के कारण मुख पर पसीने की बूंदे आयी हुई थीं, गोरे मुखड़े पर खून की लाली दौड़ रही थी, आंखों से ज्योति-सी निकलती मालूम होती थी। द्वार पर खड़ा होकर बोला-अम्मां जी, लाइए, कुछ खाने का निकालिए, जरा खेलने जाना है।

निर्मला जाकर गिलास में पानी लाई और एक तश्तरी में कुछ मेवे रखकर मंसाराम को दिए। मंसाराम जब खाकर चलने लगा, तो निर्मला ने पूछा-कब तक आओगे?

मंसाराम–कह नहीं सकता, गोरों के साथ हॉकी का मैच है। बारक यहां से बहुत दूर है।

निर्मला–भई, जल्द आना। खाना ठण्डा हो जाऐगा, तो कहोगे मुझे भूख नहीं है।

मंसाराम ने निर्मला की ओर सरल स्नेह भाव से देखकर कहा–मुझे देर हो जाऐ तो समझ लीजिएगा, वहीं खा रहा हूँ। मेरे लिए बैठने की जरूरत नहीं।

वह चला गया, तो निर्मला बोली–पहले तो घर में आते ही न थे, मुझसे बोलते शर्माते थे। किसी चीज की जरुरत होती, तो बाहर से ही मंगवा भेजते। जब से मैंनें बुलाकर कहा, तब से आने लगे हैं।

तोताराम ने कुछ चिढ़कर कहा–यह तुम्हारे पास खाने–पीने की चीजें मांगने क्यों आता है? दीदी से क्यों नहीं कहता?

निर्मला ने यह बात प्रशंसा पाने के लोभ से कही थी। वह यह दिखाना चाहती थी कि मैं तुम्हारे लड़कों को कितना चाहती हूँ। यह कोई बनावटी प्रेम न था। उसे लड़कों से सचमुच स्नेह था। उसके चरित्र में अभी तक बाल–भाव ही प्रधान था, उसमें वही उत्सुकता, वही चंचलता, वही विनोदप्रियता विद्यमान थी और बालकों के साथ उसकी ये बालवृत्तियां प्रस्फुटित होती थीं। पत्नी–सुलभ ईर्ष्या अभी तक उसके मन में उदय नहीं हुई थी, लेकिन पति के प्रसन्न होने के बदले नाक–भौं सिकोड़ने का आशय न समझकर बोली–मैं क्या जानूं, उनसे क्यों नहीं मांगते? मेरे पास आते हैं, तो दुत्कार नहीं देती। अगर ऐसा करूं, तो यही होगा कि यह लड़कों को देखकर जलती हैं।

मुंशीजी ने इसका कुछ जवाब न दिया, लेकिन आज उन्होंने मुवक्किलों से बातें नहीं कीं, सीधे मंसाराम के पास गये और उसका इम्तहान लेने लगे। यह जीवन में पहला ही अवसर था कि इन्होंने मंसाराम या किसी लड़के की शिक्षोन्नति के विषय में इतनी दिलचस्पी दिखायी हो। उन्हें अपने काम से सिर उठाने की फुरसत ही न मिलती थी। उन्हें इन विषयों को पढ़े हुए चालीस वर्ष के लगभग हो गये थे। तब से उनकी ओर आंख तक न उठायी थी। वह कानूनी पुस्तकों और पत्रों के सिवा और कुछ पड़ते ही न थे। इसका समय ही न मिलता, पर आज उन्हीं विषयों में मंसाराम की परीक्षा लेने लगे। मंसाराम जहीन था और इसके साथ ही मेहनती भी था। खेल में भी टीम का कैप्टन होने पर भी वह क्लास में प्रथम रहता था। जिस पाठ को एक बार देख लेता, पत्थर की लकीर हो जाती थी। मुंशीजी को उतावली में ऐसे मार्मिक प्रश्न तो सूझे नहीं, जिनके

उत्तर देने में चतुर लड़के को भी कुछ सोचना पड़ता और ऊपरी प्रश्नों को मंसाराम से चुटकियों में उड़ा दिया। कोई सिपाही अपने शत्रु पर वार खाली जाते देखकर जैसे झल्ला-झल्लाकर और भी तेजी से वार करता है, उसी भांति मंसाराम के जवाबों को सुन-सुनकर वकील साहब भी झल्लाते थे। वह कोई ऐसा प्रश्न करना चाहते थे, जिसका जवाब मंसाराम से न बन पड़े। देखना चाहते थे कि इसका कमजोर पहलू कहां है। यह देखकर अब उन्हें संतोष न हो सकता था कि वह क्या करता है। वह यह देखना चाहते थे कि यह क्या नहीं कर सकता। कोई अभ्यस्त परीक्षक मंसाराम की कमजोरियों को आसानी से दिखा देता, पर वकील साहब अपनी आधी शताब्दी की भूली हुई शिक्षा के आधार पर इतने सफल कैसे होते? अंत में उन्हें अपना गुस्सा उतारने के लिए कोई बहाना न मिला तो बोले-मैं देखता हूँ, तुम सारे दिन इधर-उधर मटरगश्ती किया करते हो, मैं तुम्हारे चरित्र को तुम्हारी बुद्धि से बढ़कर समझता हूँ और तुम्हारा यों आवारा घूमना मुझे कभी गवारा नहीं हो सकता।

मंसाराम ने निर्भीकता से कहा-मैं शाम को एक घण्टा खेलने के लिए जाने के सिवा दिन भर कहीं नहीं जाता। आप अम्मां या बुआजी से पूछ लें। मुझे खुद इस तरह घूमना पसंद नहीं। हां, खेलने के लिए हेड मास्टर साहब से आग्रह करके बुलाते हैं, तो मजबूरन जाना पड़ता है। अगर आपको मेरा खेलने जाना पसंद नहीं है, तो कल से न जाऊंगा।

मुंशीजी ने देखा कि बातें दूसरी ही रुख पर जा रही हैं, तो तीव्र स्वर में बोले-मुझे इस बात का इतमीनान क्योंकर हो कि खेलने के सिवा कहीं नहीं घूमने जाते? मैं बराबर शिकायतें सुनता हूँ।

मंसाराम ने उत्तेजित होकर कहा-किन महाशय ने आपसे यह शिकायत की है, जरा मैं भी तो सुनूं?

वकील-कोई हो, इससे तुमसे कोई मतलब नहीं। तुम्हें इतना विश्वास होना चाहिए कि मैं झूठा आक्षेप नहीं करता।

मंसाराम-अगर मेरे सामने कोई आकर कह दे कि मैंने इन्हें कहीं घूमते देखा है, तो मुंह न दिखाऊं।

वकील-किसी को ऐसी क्या गरज पड़ी है कि तुम्हारी मुंह पर तुम्हारी शिकायत करें और तुमसे बैर मोल लें? तुम अपने दो-चार साथियों को लेकर उसके घर की खपरैल फोड़ते फिरो। मुझसे इस किस्म की शिकायत एक आदमी ने नहीं, कई आदमियों ने की है और कोई वजह नहीं है कि मैं अपने दोस्तों की बात पर विश्वास न करुं। मैं चाहता हूँ कि तुम स्कूल ही में रहा करो।

मंसाराम ने मुंह गिराकर कहा–मुझे वहां रहने में कोई आपत्ति नहीं है, जब से कहिये, चला जाऊं।

वकील– तुमने मुंह क्यों लटका लिया? क्या वहां रहना अच्छा नहीं लगता? ऐसा मालूम होता है, मानों वहां जाने के भय से तुम्हारी नानी मरी जा रही है। आखिर बात क्या है, वहां तुम्हें क्या तकलीफ होगी?

मंसाराम छात्रालय में रहने के लिए उत्सुक नहीं था, लेकिन जब मुंशीजी ने यही बात कह दी और इसका कारण पूछा, सो वह अपनी झेंप मिटाने के लिए प्रसन्नचित्त होकर बोला–मुंह क्यों लटकाऊं? मेरे लिए जैसे बोर्डिंग हाउस। तकलीफ भी कोई नहीं, और हो भी तो उसे सह सकता हूँ। मैं कल से चला जाऊंगा। हां अगर जगह न खाली हुई तो मजबूरी है।

मुंशीजी वकील थे। समझ गये कि यह लौंडा कोई ऐसा बहाना ढूंढ रहा है, जिसमें मुझे वहां जाना भी न पड़े और कोई इल्जाम भी सिर पर न आये। बोले–सब लड़कों के लिए जगह है, तुम्हारे ही लिये जगह न होगी?

मंसाराम– कितने ही लड़कों को जगह नहीं मिली और वे बाहर किराये के मकानों में पड़े हुए हैं। अभी बोर्डिंग हाउस में एक लड़के का नाम कट गया था, तो पचास अर्जियां उस जगह के लिए आयी थीं।

वकील साहब ने ज्यादा तर्क–वितर्क करना उचित नहीं समझा। मंसाराम को कल तैयार रहने की आज्ञा देकर अपनी बग्गी तैयार करायी और सैर करने चल गये। इधर कुछ दिनों से वह शाम को प्रायः सैर करने चले जाए करते थे। किसी अनुभवी प्राणी ने बतलाया था कि दीर्घ जीवन के लिए इससे बढ़कर कोई मंत्र नहीं है। उनके जाने के बाद मंसाराम आकर रुक्मिणी से बोला बुआजी, बाबूजी ने मुझे कल से स्कूल में रहने को कहा है।

रुक्मिणी ने विस्मित होकर पूछा–क्यों?

मंसाराम–मैं क्या जानूं? कहने लगे कि तुम यहां आवारों की तरह इधर–उधर फिरा करते हो।

रुक्मिणी–तूने कहा नहीं कि मैं कहीं नहीं जाता।

मंसाराम–कहा क्यों नहीं, मगर वह जब मानें भी।

रुक्मिणी–तुम्हारी नयी अम्मा जी की कृपा होगी और क्या?

मंसाराम–नहीं, बुआजी, मुझे उन पर संदेह नहीं है, वह बेचारी भूल से कभी कुछ नहीं कहतीं। कोई चीज मांगने जाता हूँ, तो तुरन्त उठाकर दे देती हैं।

रुक्मिणी–तू यह त्रिया–चरित्र क्या जाने, यह उन्हीं की लगाई हुई आग है। देख, मैं जाकर पूछती हूँ।

रुक्मिणी झल्लाई हुई निर्मला के पास जा पहुँची। उसे आड़े हाथों लेने का, कांटों में घसीटने का, तानों से छेदने का, रुलाने का सुअवसर वह हाथ से न जाने देती थी। निर्मला उनका आदर करती थी, उनसे दबती थी, उनकी बातों का जवाब तक न देती थी। वह चाहती थी कि यह सिखावन की बातें कहें, जहां मैं भूलूं वहां सुधारें, सब कामों की देख-रेख करती रहें, पर रुक्मिणी उससे तनी ही रहती थी।

निर्मला चारपाई से उठकर बोली-आइए दीदी, बैठिए।

रुक्मिणी ने खड़े-खड़े कहा-मैं पूछती हूँ क्या तुम सबको घर से निकालकर अकेले ही रहना चाहती हो?

निर्मला ने कातर भाव से कहा-क्या हुआ दीदी जी? मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा।

रुक्मिणी-मंसाराम को घर से निकाले देती हो, तिस पर कहती हो, मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा। क्या तुमसे इतना भी देखा नहीं जाता?

निर्मला-दीदी जी, तुम्हारे चरणों को छूकर कहती हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम। मेरी आंखे फूट जाऐं, अगर उसके विषय में मुंह तक खोला हो।

रुक्मिणी-क्यों व्यर्थ कसमें खाती हो। अब तक तोताराम कभी लड़के से नहीं बोलते थे। एक हफ्ते के लिए मंसाराम ननिहाल चला गया था, तो इतने घबराए कि खुद जाकर लिवा लाए। अब इसी मंसाराम को घर से निकालकर स्कूल में रखे देते हैं। अगर लड़के का बाल भी बांका हुआ, तो तुम जानोगी। वह कभी बाहर नहीं रहा, उसे न खाने की सुध रहती हैं, न पहनने की-जहां बैठता, वहीं सो जाता है। कहने को तो जवान हो गया, पर स्वभाव बालकों-सा है। स्कूल में उसकी मरन हो जाऐगी। वहां किसे फिक्र है कि इसने खोया या नहीं, कहां कपड़े उतारे, कहां सो रहा है। जब घर में कोई पूछने वाला नहीं, तो बाहर कौन पूछेगा मैंने तुम्हें चेता दिया, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

यह कहकर रुक्मिणी वहां से चली गयी।

वकील साहब सैर करके लौटे, तो निर्मला न तुरंत यह विषय छेड़ दिया-मंसाराम से वह आजकल थोड़ी अंग्रेजी पढ़ती थी। उसके चले जाने पर फिर उसके पढ़ने का हरज न होगा? दूसरा कौन पढ़ायेगा? वकील साहब को अब तक यह बात न मालूम थी। निर्मला ने सोचा था कि जब कुछ अभ्यास हो जाऐगा, तो वकील साहब को एक दिन अंग्रेजी में बातें करके चकित कर दूंगी। कुछ थोड़ा-सा ज्ञान तो उसे अपने भाइयों से ही हो गया था। अब वह नियमित रूप

से पढ़ रही थी। वकील साहब की छाती पर सांप-सा लोट गया, त्योरियां बदलकर बोले-वे कब से पढ़ा रहा है, तुम्हें। मुझसे तुमने कभी नहीं कहा।

निर्मला ने उनका यह रूप केवल एक बार देखा था, जब उन्होने सियाराम को मारते-मारते बेदम कर दिया था। वही रूप और भी विकराल बनकर आज उसे फिर दिखाई दिया। सहमती हुई बोली-उनके पढ़ने में तो इससे कोई हरज नहीं होता, मैं उसी वक्त उनसे पढ़ती हूँ जब उन्हें फुरसत रहती हैं। पूछ लेती हूँ कि तुम्हारा हरज होता हो, तो जाओ। बहुधा जब वह खेलने जाने लगते हैं, तो दस मिनट के लिए रोक लेती हूँ। मैं खुद चाहती हूँ कि उनका नुकसान न हो।

बात कुछ न थी, मगर वकील साहब हताश से होकर चारपाई पर गिर पड़े और माथे पर हाथ रखकर चिंता में मग्न हो गये। उन्होंनं जितना समझा था, बात उससे कहीं अधिक बढ़ गयी थी। उन्हें अपने ऊपर क्रोध आया कि मैंने पहले ही क्यों न इस लौंडे को बाहर रखने का प्रबंध किया। आजकल जो यह महारानी इतनी खुश दिखाई देती हैं, इसका रहस्य अब समझ में आया। पहले कभी कमरा इतना सजा-सजाया न रहता था, बनाव-चुनाव भी न करती थीं, पर अब देखता हूँ कायापलट-सी हो गयी है। जी में तो आया कि इसी वक्त चलकर मंसाराम को निकाल दें, लेकिन प्रौढ़ बुद्धि ने समझाया कि इस अवसर पर क्रोध की जरूरत नहीं। कहीं इसने भांप लिया, तो गजब ही हो जाऐगा। हां, जरा इसके मनोभावों को टटोलना चाहिए। बोले-यह तो मैं जानता हूँ कि तुम्हें दो-चार मिनट पढ़ाने से उसका हरज नहीं होता, लेकिन आवारा लड़का है, अपना काम न करने का उसे एक बहाना तो मिल जाता है। कल अगर फेल हो गया, तो साफ कह देगा-मैं तो दिन भर पढ़ाता रहता था। मैं तुम्हारे लिए कोई मिस नौकर रख दूंगा। कुछ ज्यादा खर्च न होगा। तुमने मुझसे पहले कहा ही नहीं। यह तुम्हें भला क्या पढ़ाता होगा, दो-चार शब्द बताकर भाग जाता होगा। इस तरह तो तुम्हें कुछ भी न आयेगा।

निर्मला ने तुरन्त इस आक्षेप का खण्डन किया-नहीं, यह बात तो नहीं। वह मुझे दिल लगा कर पढ़ाते हैं और उनकी शैली भी कुछ ऐसी है कि पढ़ने में मन लगता है। आप एक दिन जरा उनका समझाना देखिए। मैं तो समझती हूँ कि मिस इतने ध्यान से न पढ़ायेगी।

मुंशीजी अपनी प्रश्न-कुशलता पर मूंछों पर ताव देते हुए बोले-दिन में एक ही बार पढ़ाता है या कई बार?

निर्मला अब भी इन प्रश्नों का आशय न समझी। बोली–पहले तो शाम ही को पढ़ा देते थे, अब कई दिनों से एक बार आकर लिखना भी देख लेते हैं। वह तो कहते हैं कि मैं अपने क्लास में सबसे अच्छा हूँ। अभी परीक्षा में इन्हीं को प्रथम स्थान मिला था, फिर आप कैसे समझते हैं कि उनका पढ़ने में जी नहीं लगता? मैं इसलिए और भी कहती हूँ कि दीदी समझेंगी, इसी ने यह आग लगाई है। मुफ्त में मुझे ताने सुनने पड़ेंगे। अभी जरा ही देर हुई, धमकाकर गयी हैं।

मुंशीजी ने दिल में कहा–खूब समझता हूँ। तुम कल की छोकरी होकर मुझे चराने चलीं। दीदी का सहारा लेकर अपना मतलब पूरा करना चाहती हैं। बोले–मैं नहीं समझता, बोर्डिंग का नाम सुनकर क्यों लौंडे की नानी मरती हैं। और लड़के खुश होते हैं कि अब अपने दोस्तों में रहेंगे, यह उलटे रो रहा है। अभी कुछ दिन पहले तक यह दिल लगाकर पढ़ता था, यह उसी मेहनत का नतीजा है कि अपने क्लास में सबसे अच्छा है, लेकिन इधर कुछ दिनों से इसे सैर–सपाटे का चस्का पड़ चला है। अगर अभी से रोकथाम न की गयी, तो पीछे करते–धरते न बन पड़ेगा। तुम्हारे लिए मैं एक मिस रख दूंगा।

दूसरे दिन मुंशीजी प्रातःकाल कपड़े–लत्ते पहनकर बाहर निकले। दीवानखाने में कई मुवक्किल बैठे हुए थे। इनमें एक राजा साहब भी थे, जिनसे मुंशीजी को कई हजार सालाना मेहनताना मिलता था, मगर मुंशीजी उन्हें वहीं बैठे छोड़ दस मिनट में आने का वादा करके बग्गी पर बैठकर स्कूल के हेडमास्टर के यहां जा पहुँचे। हेडमास्टर साहब बड़े सज्जन पुरुष थे। वकील साहब का बहुत आदर–सत्कार किया, पर उनके यहां एक लड़के की भी जगह खाली न थी। सभी कमरे भरे हुए थे। इंस्पेक्टर साहब की कड़ी ताकीद थी कि मुफस्सिल के लड़कों को जगह देकर तब शहर के लड़कों को दिया जाऐ। इसीलिए यदि कोई जगह खाली भी हुई, तो भी मंसाराम को जगह न मिल सकेगी, क्योंकि कितने ही बाहरी लड़कों के प्रार्थना–पत्र रखे हुए थे। मुंशीजी वकील थे, रात दिन ऐसे प्राणियों से साबिका रहता था, जो लोभवश असंभव का भी संभव, असाध्य को भी साध्य बना सकते हैं। समझे शायद कुछ दे–दिलाकर काम निकल जाऐ, दफ्तर क्लर्क से ढंग की कुछ बातचीत करनी चाहिए, पर उसने हंसकर कहा– मुंशीजी यह कचहरी नहीं, स्कूल है, हैडमास्टर साहब के कानों में इसकी भनक भी पड़ गयी, तो जामे से बाहर हो जाऐंगे और मंसाराम को खड़े–खड़े निकाल देंगे। संभव है, अफसरों से शिकायत कर दें। बेचारे मुंशीजी अपना–सा मुंह लेकर रह गये। दस बजते–बजते झुंझलाये हुए घर लौटे। मंसाराम उसी वक्त घर से स्कूल जाने

को निकला मुंशीजी ने कठोर नेत्रों से उसे देखा, मानो वह उनका शत्रु हो और घर में चले गये।

इसके बाद दस-बारह दिनों तक वकील साहब का यही नियम रहा कि कभी सुबह कभी शाम, किसी-न-किसी स्कूल के हेडमास्टर से मिलते और मंसाराम को बोर्डिंग हाउस में दाखिल करने कल चेष्टा करते, पर किसी स्कूल में जगह न थी। सभी जगहों से कोरा जवाब मिल गया। अब दो ही उपाय थे-या तो मंसाराम को अलग किराये के मकान में रख दिया जाऐ या किसी दूसरे स्कूल में भर्ती करा दिया जाऐ। ये दोनों बातें आसान थीं। मुफस्सिल के स्कूलों में जगह अक्सर खाली रहती थी, लेकिन अब मुंशीजी का शंकित हृदय कुछ शांत हो गया था। उस दिन से उन्होंने मंसाराम को कभी घर में जाते न देखा। यहां तक कि अब वह खेलने भी न जाता था। स्कूल जाने के पहले और आने के बाद, बराबर अपने कमरे में बैठा रहता। गर्मी के दिन थे, खुले हुए मैदान में भी देह से पसीने की धारें निकलती थीं, लेकिन मंसाराम अपने कमरे से बाहर न निकलता। उसका आत्माभिमान आवारापन के आक्षेप से मुक्त होने के लिए विकल हो रहा था। वह अपने आचरण से इस कलंक को मिटा देना चाहता था।

एक दिन मुंशीजी बैठे भोजन कर रहे थे, कि मंसाराम भी नहाकर खाने आया, मुंशीजी ने इधर उसे महीनों से नंगे बदन न देखा था। आज उस पर निगाह पड़ी, तो होश उड़ गये। हड्डियों का ढांचा सामने खड़ा था। मुख पर अब भी ब्रह्मचर्य का तेज था, पर देह घुलकर कांटा हो गयी थी। पूछा-आजकल तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है, क्या? इतने दुर्बल क्यों हो?

मंसाराम ने धोती ओढ़कर कहा-तबीयत तो बिल्कुल अच्छी है।

मुंशीजी-फिर इतने दुर्बल क्यों हो?

मंसाराम- दुर्बल तो नहीं हूँ। मैं इससे ज्यादा मोटा कब था?

मुंशीजी-वाह, आधी देह भी नहीं रही और कहते हो, मैं दुर्बल नहीं हूँ? क्यों दीदी, यह ऐसा ही था?

रुक्मिणी आंगन में खड़ी तुलसी को जल चढ़ा रही थी, बोली-दुबला क्यों होगा, अब तो बहुत अच्छी तरह लालन-पालन हो रहा है। मैं गंवारिन थी, लडकों को खिलाना-पिलाना नहीं जानती थी। खोमचा खिला-खिलाकर इनकी आदत बिगाड़ देते थी। अब तो एक पढ़ी-लिखी, गृहस्थी के कामों में चतुर औरत पान की तरह फेर रही है न। दुबला हो उसका दुश्मन।

मुंशीजी–दीदी, तुम बड़ा अन्याय करती हो। तुमसे किसने कहा कि लड़कों को बिगाड़ रही हो। जो काम दूसरों के किये न हो सके, वह तुम्हें खुद करने चाहिए। यह नहीं कि घर से कोई नाता न रखो। जो अभी खुद लड़की है, वह लड़कों की देख–रेख क्या करेगी? यह तुम्हारा काम है।

रुक्मिणी–जब तक अपना समझती थी, करती थी। जब तुमने गैर समझ लिया, तो मुझे क्या पड़ी है कि मैं तुम्हारे गले से चिपटूं? पूछो, कै दिन से दूध नहीं पिया? जाके कमरे में देख आओ, नाश्ते के लिए जो मिठाई भेजी गयी थीं, वह पड़ी सड़ रही हैं। मालकिन समझती हैं, मैंने तो खाने का सामान रख दिया, कोई न खाये तो क्या मैं मुंह में डाल दूं? तो भैया, इस तरह वे लड़के पलते होंगे, जिन्होंने कभी लाड़–प्यार का सुख नहीं देखा। तुम्हारे लड़के बराबर पान की तरह फेरे जाते रहे हैं, अब अनाथों की तरह रहकर सुखी नहीं रह सकते। मैं तो बात साफ कहती हूँ। बुरा मानकर ही कोई क्या कर लेगा? उस पर सुनती हूँ कि लड़के को स्कूल में रखने का प्रबंध कर रहे हो। बेचारे को घर में आने तक की मनाही है। मेरे पास आते भी डरता है, और फिर मेरे पास रखा ही क्या रहता है, जो जाकर खिलाऊंगी।

इतने में मंसाराम दो फुलके खाकर उठ खड़ा हुआ। मुंशीजी ने पूछा–क्या दो ही फुलके तो लिये थे। अभी बैठे एक मिनट से ज्यादा नहीं हुआ। तुमने खाया क्या, दो ही फुलके तो लिये थे।

मंसाराम ने सकुचाते हुए कहा–दाल और तरकारी भी तो थी। ज्यादा खा जाता हूँ, तो गला जलने लगता है, खट्टी डकारें आने लगतीं हैं।

मुंशीजी भोजन करके उठे तो बहुत चिंतित थे। अगर यों ही दुबला होता गया, तो उसे कोई भंयकर रोग पकड़ लेगा। उन्हें रुक्मिणी पर इस समय बहुत क्रोध आ रहा था। उन्हें यही जलन है कि मैं घर की मालकिन नहीं हूँ। यह नहीं समझतीं कि मुझे घर की मालकिन बनने का क्या अधिकार है? जिसे रुपया का हिसाब तक नहीं आता, वह घर की स्वामिनी कैसे हो सकती हैं? बनीं तो थीं साल भर तक मालकिन, एक पाई की बचत न होती थी। इस आमदनी में रूपकला दो–ढाई सौ रुपये बचा लेती थी। इनके राज में वही आमदनी खर्च को भी पूरी न पड़ती थी। कोई बात नहीं, लाड़–प्यार ने इन लड़कों को चौपट कर दिया। इतने बड़े–बड़े लड़कों को इसकी क्या जरूरत कि जब कोई खिलाये तो खायें। इन्हें तो खुद अपनी फिक्र करनी चाहिए। मुंशी जी दिनभर उसी उधेड़–बुन में पड़े रहे। दो–चार मित्रों से भी जिक्र किया। लोगों ने कहा–उसके खेल–कूद

में बाधा न डालिए, अभी से उसे कैद न कीजिए, खुली हवा में चरित्र के भ्रष्ट होने की उससे कम संभावना है, जितना बन्द कमरे में। कुसंगत से जरूर बचाइए, मगर यह नहीं कि उसे घर से निकलने ही न दीजिए। युवावस्था में एकान्तवास चरित्र के लिए बहुत ही हानिकारक है। मुंशीजी को अब अपनी गलती मालूम हुई। घर लौटकर मंसाराम के पास गये। वह अभी स्कूल से आया था और बिना कपड़े उतारे, एक किताब सामने खोलकर, सामने खिड़की की ओर ताक रहा था। उसकी दृष्टि एक भिखारिन पर लगी हुई थी, जो अपने बालक को गोद में लिए भिक्षा मांग रही थी। बालक माता की गोद में बैठा ऐसा प्रसन्न था, मानो वह किसी राजसिंहासन पर बैठा हो। मंसाराम उस बालक को देखकर रो पड़ा। यह बालक क्या मुझसे अधिक सुखी नहीं है? इस अन्नत विश्व में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसे वह इस गोद के बदले पाकर प्रसन्न हो? ईश्वर भी ऐसी वस्तु की सृष्टि नहीं कर सकते। ईश्वर ऐसे बालकों को जन्म ही क्यों देते हो, जिनके भाग्य में मातृ-वियोग का दुख भोगना पड़ा? आज मुझ-सा अभागा संसार में और कौन है? किसे मेरे खाने-पीने की, मरने-जीने की सुध है। अगर मैं आज मर भी जाऊं, तो किसके दिल को चोट लगेगी। पिता को अब मुझे रुलाने में मजा आता है, वह मेरी सूरत भी नहीं देखना चाहते, मुझे घर से निकाल देने की तैयारियां हो रही हैं। आह माता। तुम्हारा लाड़ला बेटा आज आवारा कहां जा रहा है। वही पिताजी, जिनके हाथ में तुमने हम तीनों भाइयों के हाथ पकड़ाये थे, आज मुझे आवारा और बदमाश कह रहे हैं। मैं इस योग्य भी नहीं कि इस घर में रह सकूं। यह सोचते-सोचते मंसाराम अपार वेदना से फूट-फूटकर रोने लगा।

उसी समय तोताराम कमरे में आकर खड़े हो गये। मंसाराम ने चटपट आंसू पोंछ डाले और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। मुंशीजी ने शायद यह पहली बार उसके कमरे में कदम रखा था। मंसाराम का दिल धड़धड़ करने लगा कि देखें आज क्या आफत आती हैं। मुंशीजी ने उसे रोते देखा, तो एक क्षण के लिए उनका वात्सल्य घोर निद्रा से चौंक पड़ा घबराकर बोले-क्यों, रोते क्यों हो बेटा। किसी ने कुछ कहा है?

मंसाराम ने बड़ी मुश्किल से उमड़ते हुए आंसुओं को रोककर कहा- जी नहीं, रोता तो नहीं हूँ।

मुंशीजी-तुम्हारी अम्मां ने तो कुछ नहीं कहा?

मंसाराम-जी नहीं, वह तो मुझसे बोलती ही नहीं।

मुंशीजी–क्या करुं बेटा, शादी तो इसलिए की थी कि बच्चों को मां मिल जाऐगी, लेकिन वह आशा पूरी नहीं हुई, तो क्या बिल्कुल नहीं बोलतीं?

मंसाराम–जी नहीं, इधर महीनों से नहीं बोलीं।

मुंशीजी–विचित्र स्वभाव की औरत है, मालूम ही नहीं होता कि क्या चाहती हैं? मैं जानता कि उसका ऐसा मिजाज होगा, तो कभी शादी न करता रोज एक–न–एक बात लेकर उठ खड़ी होती हैं। उसी ने मुझसे कहा था कि यह दिन भर न जाने कहां गायब रहता है। मैं उसके दिल की बात क्या जानता था? समझा, तुम कुसंगत में पड़कर शायद दिनभर घूमा करते हो। कौन ऐसा पिता है, जिसे अपने प्यारे पुत्र को आवारा फिरते देखकर रंज न हो? इसीलिए मैंने तुम्हें बोर्डिंग हाउस में रखने का निश्चय किया था। बस, और कोई बात नहीं थी, बेटा। मैं तुम्हारा खेलन–कूदना बंद नहीं करना चाहता था। तुम्हारी यह दशा देखकर मेरे दिल के टुकड़े हुए जाते हैं। कल मुझे मालूम हुआ मैं भ्रम में था। तुम शौक से खेलो, सुबह–शाम मैदान में निकल जाए करो। ताजी हवा से तुम्हें लाभ होगा। जिस चीज की जरूरत हो मुझसे कहो, उनसे कहने की जरूरत नहीं। समझ लो कि वह घर में है ही नहीं। तुम्हारी माता छोड़कर चली गयी तो मैं तो हूँ।

बालक का सरल निष्कपट हृदय पितृ–प्रेम से पुलकित हो उठा। मालूम हुआ कि साक्षात् भगवान् खड़े हैं। नैराश्य और क्षोभ से विकल होकर उसने मन में अपने पिता का निष्ठुर और न जाने क्या–क्या समझ रखा। विमाता से उसे कोई गिला न था। अब उसे ज्ञात हुआ कि मैंने अपने देवतुल्य पिता के साथ कितना अन्याय किया है। पितृ–भक्ति की एक तरंग–सी हृदय में उठी, और वह पिता के चरणों पर सिर रखकर रोने लगा। मुंशीजी करुणा से विह्वल हो गये। जिस पुत्र को क्षण भर आंखों से दूर देखकर उनका हृदय व्यग्र हो उठता था, जिसके शील, बुद्धि और चरित्र का अपने–पराये सभी बखान करते थे, उसी के प्रति उनका हृदय इतना कठोर क्यों हो गया? वह अपने ही प्रिय पुत्र को शत्रु समझने लगे, उसको निर्वासन देने को तैयार हो गये। निर्मला पुत्र और पिता के बीच में दीवार बनकर खड़ी थी। निर्मला को अपनी ओर खींचने के लिए पीछे हटना पड़ता था, और पिता तथा पुत्र में अंतर बढ़ता जाता था। फलतः आज यह दशा हो गयी है कि अपने अभिन्न पुत्र से उन्हें इतना छल करना पड़ रहा है। आज बहुत सोचने के बाद उन्हें एक–एक ऐसी युक्ति सूझी है, जिससे आशा हो रही है कि वह निर्मला को बीच से निकालकर अपने दूसरे बाजू को अपनी तरफ खींच लेंगे।

उन्होंने उस युक्ति का आरंभ भी कर दिया है, लेकिन इसमें अभीष्ट सिद्ध होगा या नहीं, इसे कौन जानता है।

जिस दिन से तोतोराम ने निर्मला के बहुत मिन्नत-समाजत करने पर भी मंसाराम को बोर्डिंग हाउस में भेजने का निश्चय किया था, उसी दिन से उसने मंसाराम से पढ़ना छोड़ दिया। यहां तक कि बोलती भी न थी। उसे स्वामी की इस अविश्वासपूर्ण तत्परता का कुछ-कुछ आभास हो गया था। ओफ्फोह। इतना शक्की मिजाज। ईश्वर ही इस घर की लाज रखें। इनके मन में ऐसी-ऐसी दुर्भावनाएं भरी हुई हैं। मुझे यह इतनी गयी-गुजरी समझते हैं। ये बातें सोच-सोचकर वह कई दिन रोती रही। तब उसने सोचना शूरू किया, इन्हें क्या ऐसा संदेह हो रहा है? मुझ में ऐसी कौन-सी बात है, जो इनकी आंखों में खटकती हैं। बहुत सोचने पर भी उसे अपने में कोई ऐसी बात नजर न आयी। तो क्या उसका मंसाराम से पढ़ना, उससे हंसना-बोलना ही इनके संदेह का कारण है, तो फिर मैं पढ़ना छोड़ दूंगी, भूलकर भी मंसाराम से न बोलूंगी, उसकी सूरत न दखूंगी।

लेकिन यह तपस्या उसे असाध्य जान पड़ती थी। मंसाराम से हंसने-बोलने में उसकी विलासिनी कल्पना उत्तेजित भी होती थी और तृप्त भी। उसे बातें करते हुए उसे अपार सुख का अनुभव होता था, जिसे वह शब्दों में प्रकट न कर सकती थी। कुवासना की उसके मन में छाया भी न थी। वह स्वप्न में भी मंसाराम से कलुषित प्रेम करने की बात न सोच सकती थी। प्रत्येक प्राणी को अपने हमजोलियों के साथ, हंसने-बोलने की जो एक नैसर्गिक तृष्णा होती हैं, उसी की तृप्ति का यह एक अज्ञात साधन था। अब वह अतृप्त तृष्णा निर्मला के हृदय में दीपक की भांति जलने लगी। रह-रहकर उसका मन किसी अज्ञात वेदना से विकल हो जाता। खोयी हुई किसी अज्ञात वस्तु की खोज में इधर-उधर घूमती-फिरती, जहां बैठती, वहां बैठी ही रह जाती, किसी काम में जी न लगता। हां, जब मुंशीजी आ जाते, वह अपनी सारी तृष्णाओं को नैराश्य में डुबाकर, उनसे मुस्कराकर इधर-उधर की बातें करने लगती।

कल जब मुंशीजी भोजन करके कचहरी चले गये, तो रुक्मिणी ने निर्मला को खुब तानों से छेदा-जानती तो थी कि यहां बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ेगा, तो क्यों घरवालों से नहीं कह दिया कि वहां मेरा विवाह न करो? वहां जाती जहां पुरुष के सिवा और कोई न होता। वही यह बनाव-चुनाव और छवि देखकर खुश होता, अपने भाग्य को सराहता। यहां बुड्ढा आदमी तुम्हारे रंग-रूप, हाव-भाव पर क्या लट्टू होगा? इसने इन्हीं बालकों की सेवा करने के लिए तुमसे

विवाह किया है, भोग-विलास के लिए नहीं वह बड़ी देर तक घाव पर नमक छिड़कती रही, पर निर्मला ने चूं तक न की। वह अपनी सफाई तो पेश करना चाहती थी, पर न कर सकती थी। अगर कहे कि मैं वही कर रही हूँ, जो मेरे स्वामी की इच्छा है तो घर का भण्डा फूटता है। अगर वह अपनी भूल स्वीकार करके उसका सुधार करती हैं, तो भय है कि उसका न जाने क्या परिणाम हो? वह यों बड़ी स्पष्टवादिनी थी, सत्य कहने में उसे संकोच या भय न होता था, लेकिन इस नाजुक मौके पर उसे चुप्पी साधनी पड़ी। इसके सिवा दूसरा उपाय न था। वह देखती थी मंसाराम बहुत विरक्त और उदास रहता है, यह भी देखती थी कि वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता है, लेकिन उसकी वाणी और कर्म दोनों ही पर मोहर लगी हुई थी। चोर के घर चोरी हो जाने से उसकी जो दशा होती हैं, वही दशा इस समय निर्मला की हो रही थी।

जब कोई बात हमारी आशा के विरुद्ध होती हैं, तभी दुख होता है। मंसाराम को निर्मला से कभी इस बात की आशा न थी कि वे उसकी शिकायत करेंगी। इसलिए उसे घोर वेदना हो रही थी। वह क्यों मेरी शिकायत करती हैं? क्या चाहती हैं? यही न कि वह मेरे पति की कमाई खाता है, इसके पढ़ाने-लिखाने में रुपये खर्च होते हैं, कपड़ा पहनता है। उनकी यही इच्छा होगी कि यह घर में न रहे। मेरे न रहने से उनके रुपये बच जाऐंगे। वह मुझसे बहुत प्रसन्नचित्त रहती हैं। कभी मैंने उनके मुंह से कटु शब्द नहीं सुने। क्या यह सब कौशल है? हो सकता है? चिड़िया को जाल में फंसाने के पहले शिकारी दाने बिखेरता है। आह। मैं नहीं जानता था कि दाने के नीचे जाल है, यह मातृ-स्नेह केवल मेरे निर्वासन की भूमिका है।

अच्छा, मेरा यहां रहना क्यों बुरा लगता है? जो उनका पति है, क्या वह मेरा पिता नहीं है? क्या पिता-पुत्र का संबंध स्त्री-पुरुष के संबंध से कुछ कम घनिष्ट है? अगर मुझे उनके संपूर्ण आधिपत्य से ईर्ष्या नहीं होती, वह जो चाहे करें, मैं मुंह नहीं खोल सकता, तो वह मुझे एक अगुंल भर भूमि भी देना नहीं चाहतीं। आप पक्के महल में रहकर क्यों मुझे वृक्ष की छाया में बैठा नहीं देख सकतीं।

हां, वह समझती होंगी कि वह बड़ा होकर मेरे पति की सम्पत्ति का स्वामी हो जाऐगा, इसलिए अभी से निकाल देना अच्छा है। उनको कैसे विश्वास दिलाऊं कि मेरी ओर से यह शंका न करें। उन्हें क्योंकर बताऊं कि मंसाराम विष खाकर प्राण दे देगा, इसके पहले कि उनका अहित कर। उसे चाहे कितनी ही कठिनाइयां

सहनी पडें वह उनके हृदय का शूल न बनेगा। यों तो पिताजी ने मुझे जन्म दिया है और अब भी मुझ पर उनका स्नेह कम नहीं है, लेकिन क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि जिस दिन पिताजी ने उनसे विवाह किया, उसी दिन उन्होंने हमें अपने हृदय से बाहर निकाल दिया? अब हम अनाथों की भांति यहां पड़े रह सकते हैं, इस घर पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। कदाचित् पूर्व संस्कारों के कारण यहां अन्य अनाथों से हमारी दशा कुछ अच्छी है, पर हैं अनाथ ही। हम उसी दिन अनाथ हुए, जिस दिन अम्मां जी परलोक सिधारीं। जो कुछ कसर रह गयी थी, वह इस विवाह ने पूरी कर दी। मैं तो खुद पहले इनसे विशेष संबंध न रखता था। अगर, उन्हीं दिनों पिताजी से मेरी शिकायत की होती, तो शायद मुझे इतना दुख न होता। मैं तो उससे आघात के लिए तैयार बैठा था। संसार में क्या मैं मजदूरी भी नहीं कर सकता? लेकिन बुरे वक्त में इन्होंने चोट की। हिंसक पशु भी आदमी को गाफिल पाकर ही चोट करते हैं। इसीलिए मेरी आवभगत होती थी, खाना खाने के लिए उठने में जरा भी देर हो जाती थी, तो बुलावे पर बुलावे आते थे, जलपान के लिए प्रातः हलुआ बनाया जाता था, बार-बार पूछा जाता था-रुपयों की जरूरत तो नहीं है? इसीलिए वह सौ रुपयों की घड़ी मंगवाई थी।

मगर क्या इन्हें क्या दूसरी शिकायत न सूझी, जो मुझे आवारा कहा? आखिर उन्होंने मेरी क्या आवारगी देखी? यह कह सकती थीं कि इसका मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता, एक-न-एक चीज के लिए नित्य रुपये मांगता रहता है। यही एक बात उन्हें क्यों सूझी? शायद इसीलिए कि यही सबसे कठोर आघात है, जो वह मुझ पर कर सकती हैं। पहली ही बार इन्होंने मुझे पर अग्नि-बाण चला दिया, जिससे कहीं शरण नहीं। इसीलिए न कि वह पिता की नजरों से गिर जाऐ? मुझे बोर्डिंग-हाउस में रखने का तो एक बहाना था। उद्देश्य यह था कि इसे दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया जाऐ। दो-चार महीने के बाद खर्च-वर्च देना बंद कर दिया जाऐ, फिर चाहे मरे या जिये। अगर मैं जानता कि यह प्रेरणा इनकी ओर से हुई है, तो कहीं जगह न रहने पर भी जगह निकाल लेता। नौकरों की कोठरियों में तो जगह मिल जाती, बरामदे में पड़े रहने के लिए बहुत जगह मिल जाती। खैर, अब सबेरा है। जब स्नेह नहीं रहा, तो केवल पेट भरने के लिए यहां पड़े रहना बेहयाई है, यह अब मेरा घर नहीं। इसी घर में पैदा हुआ हूँ, यही खेला हूँ, पर यह अब मेरा नहीं। पिताजी भी मेरे पिता नहीं हैं। मैं उनका पुत्र हूँ, पर वह मेरे पिता नहीं हैं। संसार के सारे नाते स्नेह के नाते हैं। जहां स्नेह नहीं, वहां कुछ नहीं। हाय, अम्मांजी, तुम कहां हो?

यह सोचकर मंसाराम रोने लगा। ज्यों-ज्यों मातृ स्नेह की पूर्व-स्मृतियां जागृत होती थीं, उसके आंसू उमड़ते आते थे। वह कई बार अम्मां-अम्मां पुकार उठा, मानो वह खड़ी सुन रही हैं। मातृ-हीनता के दु:ख का आज उसे पहली बार अनुभव हुआ। वह आत्माभिमानी था, साहसी था, पर अब तक सुख की गोद में लालन-पालन होने के कारण वह इस समय अपने आप को निराधार समझ रहा था।

रात के दस बज गये थे। मुंशीजी आज कहीं दावत खाने गये हुए थे। दो बार महरी मंसाराम को भोजन करने के लिए बुलाने आ चुकी थी। मंसाराम ने पिछली बार उससे झुंझलाकर कह दिया था-मुझे भूख नहीं है, कुछ न खाऊंगा। बार-बार आकर सिर पर सवार हो जाती हैं। इसीलिए जब निर्मला ने उसे फिर उसी काम के लिए भेजना चाहा, तो वह न गयी।

बोली-बहूजी, वह मेरे बुलाने से न आवेंगे।

निर्मला-आयेंगे क्यों नहीं? जाकर कह दे खाना ठण्डा हुआ जाता है। दो चार कौर खा लें।

महरी-मैं यह सब कह के हार गयी, नहीं आते।

निर्मला-तूने यह कहा था कि वह बैठी हुई हैं।

महरी-नहीं बहूजी, यह तो मैंने नहीं कहा, झूठ क्यों बोलूं।

निर्मला-अच्छा, तो जाकर यह कह देना, वह बैठी तुम्हारी राह देख रही हैं। तुम न खाओगे तो वह रसोई उठाकर सो रहेंगी। मेरी भूंगी, सुन, अबकी और चली जा। (हंसकर) न आवें, तो गोद में उठा लाना।

भूंगी नाक-भौं सिकोड़ते गयी, पर एक ही क्षण में आकर बोली-अरे बहूजी, वह तो रो रहे हैं। किसी ने कुछ कहा है क्या?

निर्मला इस तरह चौककर उठी और दो-तीन पग आगे चली, मानो किसी माता ने अपने बेटे के कुएं में गिर पड़ने की खबर पायी हो, फिर वह ठिठक गयी और भूंगी से बोली-रो रहे हैं? तूने पूछा नहीं क्यों रो रहे हैं?

भूंगी- नहीं बहूजी, यह तो मैंने नहीं पूछा। झूठ क्यों बोलूं?

वह रो रहे हैं। इस निस्तबध रात्रि में अकेले बैठै हुए वह रो रहे हैं। माता की याद आयी होगी? कैसे जाकर उन्हें समझाऊं? हाय, कैसे समझाऊं? यहां तो छींकते नाक कटती हैं। ईश्वर, तुम साक्षी हो अगर मैंने उन्हें भूल से भी कुछ कहा हो, तो वह मेरे आगे आये। मैं क्या करुं? वह दिल में समझते होंगे कि इसी ने पिताजी से मेरी शिकायत की होगी। कैसे विश्वास दिलाऊं कि मैंने कभी तुम्हारे

विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाला? अगर मैं ऐसे देवकुमार के-से चरित्र रखने वाले युवक का बुरा चेतूं, तो मुझसे बढ़कर राक्षसी संसार में न होगी।

निर्मला देखती थी कि मंसाराम का स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता जाता है, वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता है, उसके मुख की निर्मल कांति दिन-दिन मलिन होती जाती हैं, उसका सारा बदन संकुचित होता जाता है। इसका कारण भी उससे छिपा न था, पर वह इस विषय में अपने स्वामी से कुछ न कह सकती थी। यह सब देख-देखकर उसका हृदय विदीर्ण होता रहता था, पर उसकी जबान न खुल सकती थी। वह कभी-कभी मन में झुंझलाती कि मंसाराम क्यों जरा-सी बात पर इतना क्षोभ करता है? क्या इनके आवारा कहने से वह आवारा हो गया? मेरी और बात है, एक जरा-सा शक मेरा सर्वनाश कर सकता है, पर उसे ऐसी बातों की इतनी क्या परवाह?

जी में प्रबल इच्छा हुई कि चलकर उन्हें चुप कराऊं और लाकर खाना खिला दूं। बेचारे रात-भर भूखे पड़े रहेंगे। हाय। मैं इस उपद्रव की जड़ हूँ। मेरे आने के पहले इस घर में शांति का राज्य था। पिता बालकों पर जान देता था, बालक पिता को प्यार करते थे। मेरे आते ही सारी बाधाएं आ खड़ी हुईं। इनका अंत क्या होगा? भगवान् ही जाने। भगवान् मुझे मौत भी नहीं देते। बेचारा अकेले भूखों पड़ा है। उस वक्त भी मुंह जूठा करके उठ गया था। और उसका आहार ही क्या है, जितना वह खाता है, उतना तो साल-दो-साल के बच्चे खा जाते हैं।

निर्मला चली। पति की इच्छा के विरुद्ध चली। जो नाते में उसका पुत्र होता था, उसी को मनाने जाते उसका हृदय कांप रहा था। उसने पहले रुक्मिणी के कमरे की ओर देखा, वह भोजन करके बेखबर सो रही थीं, फिर बाहर कमरे की ओर गयी। वहां सन्नाटा था। मुंशी अभी न आये थे। यह सब देख-भालकर वह मंसाराम के कमरे के सामने जा पहुँची। कमरा खुला हुआ था, मंसाराम एक पुस्तक सामने रखे मेज पर सिर झुकाये बैठा हुआ था, मानो शोक और चिन्ता की सजीव मूर्ति हो। निर्मला ने पुकारना चाहा पर उसके कंठ से आवाज न निकली।

सहसा मंसाराम ने सिर उठाकर द्वार की ओर देखा। निर्मला को देखकर अंधेरे में पहचान न सका। चौंककर बोला-कौन?

निर्मला ने कांपते हुए स्वर में कहा-मैं तो हूँ। भोजन करने क्यों नहीं चल रहे हो? कितनी रात गयी।

मंसाराम ने मुंह फेरकर कहा-मुझे भूख नहीं है।

निर्मला–यह तो मैं तीन बार भूंगी से सुन चुकी हूँ।

मंसाराम–तो चौथी बार मेरे मुंह से सुन लीजिए।

निर्मला–शाम को भी तो कुछ नहीं खाया था, भूख क्यों नहीं लगी?

मंसाराम ने व्यंग्य की हंसी हंसकर कहा–बहुत भूख लगेगी, तो आयेगा कहां से?

यह कहते-कहते मंसाराम ने कमरे का द्वार बंद करना चाहा, लेकिन निर्मला किवाड़ों को हटाकर कमरे में चली आयी और मंसाराम का हाथ पकड़ सजल नेत्रों से विनय-मधुर स्वर में बोली–मेरे कहने से चलकर थोड़ा-सा खा लो। तुम न खाओगे, तो मैं भी जाकर सो रहूँगी। दो ही कौर खा लेना। क्या मुझे रात-भर भूखों मारना चाहते हो?

मंसाराम सोच में पड़ गया। अभी भोजन नहीं किया, मेरे ही इंतजार में बैठी रहीं। यह स्नेह, वात्सल्य और विनय की देवी हैं या ईर्ष्या और अमंगल की मायाविनी मूर्ति? उसे अपनी माता का स्मरण हो आया। जब वह रुठ जाता था, तो वे भी इसी तरह मनाने आने करती थीं और जब तक वह न जाता था, वहां से न उठती थीं। वह इस विनय को अस्वीकार न कर सका। बोला–मेरे लिए आपको इतना कष्ट हुआ, इसका मुझे खेद है। मैं जानता कि आप मेरे इंतजार में भूखी बैठी हैं, तो तभी खाने आया होता।

निर्मला ने तिरस्कार-भाव से कहा–यह तुम कैसे समझ सकते थे कि तुम भूखे रहोगे और मैं खाकर सो रहूँगी? क्या विमाता का नाता होने से ही मैं ऐसी स्वार्थिनी हो जाऊंगी?

सहसा मर्दाने कमरे में मुंशीजी के खांसने की आवाज आयी। ऐसा मालूम हुआ कि वह मंसाराम के कमरे की ओर आ रहे हैं। निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। वह तुरंत कमरे से निकल गयी और भीतर जाने का मौका न पाकर कठोर स्वर में बोली–मैं लौंडी नहीं हूँ कि इतनी रात तक किसी के लिए रसोई के द्वार पर बैठी रहूँ। जिसे न खाना हो, वह पहले ही कह दिया करे।

मुंशीजी ने निर्मला को वहां खड़े देखा। यह अनर्थ। यह यहां क्या करने आ गयी? बोले-यहां क्या कर रही हो?

निर्मला ने कर्कश स्वर में कहा-कर क्या रही हूँ, अपने भाग्य को रो रही हूँ। बस, सारी बुराइयों की जड़ मैं ही हूँ। कोई इधर रुठा है, कोई उधर मुंह फुलाये खड़ा है। किस-किस को मनाऊं और कहां तक मनाऊं।

मुंशीजी कुछ चकित होकर बोले-बात क्या है?

निर्मला–भोजन करने नहीं जाते और क्या बात है? दस दफे महरी को भेजा, आखिर आप दौड़ी आयी। इन्हें तो इतना कह देना आसान है, मुझे भूख नहीं है, यहां तो घर भर की लौंडी हूँ, सारी दुनिया मुंह में कालिख पोतने को तैयार। किसी को भूख न हो, पर कहने वालों को यह कहने से कौन रोकेगा कि पिशाचिनी किसी को खाना नहीं देती।

मुंशीजी ने मंसाराम से कहा–खाना क्यों नहीं खा लेते जी? जानते हो क्या वक्त है?

मंसाराम स्तम्मित–सा खड़ा था। उसके सामने एक ऐसा रहस्य हो रहा था, जिसका मर्म वह कुछ भी न समझ सकता था। जिन नेत्रों में एक क्षण पहले विनय के आंसू भरे हुए थे, उनमें अकस्मात् ईर्ष्या की ज्वाला कहां से आ गयी? जिन अधरों से एक क्षण पहले सुधा–वृष्टि हो रही थी, उनमें से विष प्रवाह क्यों होने लगा? उसी अर्ध चेतना की दशा में बोला–मुझे भूख नहीं है।

मुंशीजी ने घुड़ककर कहा–क्यों भूख नहीं है? भूख नहीं थी, तो शाम को क्यों न कहला दिया? तुम्हारी भूख के इंतजार में कौन सारी रात बैठा रहे? तुममें पहले तो यह आदत न थी। रूठना कब से सीख लिया? जाकर खा लो।

मंसाराम–जी नहीं, मुझे जरा भी भूख नहीं है।

तोताराम–ने दांत पीसकर कहा–अच्छी बात है, जब भूख लगे तब खाना। यह कहते हुए वह अंदर चले गये। निर्मला भी उनके पीछे ही चली गयी। मुंशीजी तो लेटने चले गये, उसने जाकर रसोई उठा दी और कुल्लाकर, पान खा मुस्कराती हुई आ पहुँची। मुंशीजी ने पूछा–खाना खा लिया न?

निर्मला–क्या करती, किसी के लिए अन्न–जल छोड़ दूंगी?

मुंशीजी–इसे न जाने क्या हो गया है, कुछ समझ में नहीं आता? दिन–दिन घुलता चला जाता है, दिन भर उसी कमरे में पड़ा रहता है।

निर्मला कुछ न बोली। वह चिंता के अपार सागर में डुबकियां खा रही थी। मंसाराम ने मेरे भाव–परिवर्तन को देखकर दिल में क्या–क्या समझा होगा? क्या उसके मन में यह प्रश्न उठा होगा कि पिताजी को देखते ही इसकी त्यौरियां क्यों बदल गयीं? इसका कारण भी क्या उसकी समझ में आ गया होगा? बेचारा खाने आ रहा था, तब तक यह महाशय न जाने कहां से फट पड़े? इस रहस्य को उसे कैसे समझाऊं समझाना संभव भी है? मैं किस विपत्ति में फंस गयी?

सवेरे वह उठकर घर के काम–धंधे में लगी। सहसा नौ बजे भूंगी ने आकर कहा–मंसा बाबू तो अपने कागज–पत्तर सब इक्के पर लाद रहे हैं।

भूंगी–मैंने पूछा तो बोले, अब स्कूल में ही रहूँगा।

मंसाराम प्रात:काल उठकर अपने स्कूल के हेडमास्टर साहब के पास गया था और अपने रहने का प्रबंध कर आया था। हेडमास्टर साहब ने पहले तो कहा–यहां जगह नहीं है, तुमसे पहले के कितने ही लड़कों के प्रार्थना–पत्र पडे हुए हैं, लेकिन जब मंसाराम ने कहा–मुझे जगह न मिलेगी, तो कदाचित् मेरा पढ़ना न हो सके और मैं इम्तहान में शरीक न हो सकूं, तो हेडमास्टर साहब को हार माननी पड़ी। मंसाराम के प्रथम श्रेणी में पास होने की आशा थी। अध्यापकों को विश्वास था कि वह उस शाला की कीर्ति को उज्ज्वल करेगा। हेडमास्टर साहब ऐसे लड़कों को कैसे छोड़ सकते थे? उन्होने अपने दफ्तर का कमरा खाली करा दिया। इसीलिए मंसाराम वहां से आते ही अपना सामान इक्के पर लादने लगा।

मुंशीजी ने कहा–अभी ऐसी क्या जल्दी है? दो–चार दिन में चले जाना। मैं चाहता हूँ, तुम्हारे लिए कोई अच्छा सा रसोइया ठीक कर दूं।

मंसाराम–वहां का रसोइया बहुत अच्छा भोजन पकाता है।

मुंशीजी–अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। ऐसा न हो कि पढ़ने के पीछे स्वास्थ्य खो बैठो।

मंसाराम–वहां नौ बजे के बाद कोई पढ़ने नहीं पाता और सबको नियम के साथ खेलना पड़ता है।

मुंशी जी–बिस्तर क्यों छोड़ देते हो? सोओगे किस पर?

मंसाराम–कंबल लिए जाता हूँ। बिस्तर की जरूरत नहीं।

मुंशी जी–कहार जब तक तुम्हारा सामान रख रहा है, जाकर कुछ खा लो। रात भी तो कुछ नहीं खाया था।

मंसाराम–वहीं खा लूंगा। रसोइये से भोजन बनाने को कह आया हूँ यहां खाने लगूंगा तो देर होगी।

घर में जियाराम और सियाराम भी भाई के साथ जाने के जिद कर रहे थे निर्मला उन दोनों के बहला रही थी–बेटा, वहां छोटे नहीं रहते, सब काम अपने ही हाथ से करना पड़ता है।

एकाएक रुक्मिणी ने आकर कहा–तुम्हारा वज्र का हृदय है, महारानी। लड़के ने रात भी कुछ नहीं खाया, इस वक्त भी बिना खाय–पीये चला जा रहा है और तुम लड़कों के लिए बातें कर रही हो? उसको तुम जानती नहीं हो। यह समझ लो कि वह स्कूल नहीं जा रहा है, बनवास ले रहा है, लौटकर फिर न

आयेगा। यह उन लड़कों में नहीं है, जो खेल में मार भूल जाते हैं। बात उसके दिल पर पत्थर की लकीर हो जाती हैं।

निर्मला ने कातर स्वर में कहा–क्या करुं, दीदीजी? वह किसी की सुनते ही नहीं। आप जरा जाकर बुला लें। आपके बुलाने से आ जाऐंगे।

रुक्मिणी– आखिर हुआ क्या, जिस पर भागा जाता है? घर से उसका जी कभी उचाट न होता था। उसे तो अपने घर के सिवा और कहीं अच्छा ही न लगता था। तुम्हीं ने उसे कुछ कहा होगा, या उसकी कुछ शिकायत की होगी। क्यों अपने लिए कांटे बो रही हो? रानी, घर को मिट्टी में मिलाकर चैन से न बैठने पाओगी।

निर्मला ने रोकर कहा–मैंने उन्हें कुछ कहा हो, तो मेरी जबान कट जाऐ। हां, सौतेली मां होने के कारण बदनाम तो हूँ ही। आपके हाथ जोड़ती हूँ जरा जाकर उन्हें बुला लाइये।

रुक्मिणी ने तीव्र स्वर में कहा– तुम क्यों नहीं बुला लातीं? क्या छोटी हो जाओगी? अपना होता, तो क्या इसी तरह बैठी रहती?

निर्मला की दशा उस पंखहीन पक्षी की तरह हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर आते देख कर उड़ना चाहता है, पर उड़ नहीं सकता, उछलता है और गिर पड़ता है, पंख फड़फड़ाकर रह जाता है। उसका हृदय अंदर ही अंदर तड़प रहा था, पर बाहर न जा सकती थी।

इतने में दोनों लड़के आकर बोले–भैयाजी चले गये।

निर्मला मूर्तिवत् खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन हो गयी हो। चले गये? घर में आये तक नहीं, मुझसे मिले तक नहीं चले गये। मुझसे इतनी घृणा। मैं उनकी कोई न सही, उनकी बुआ तो थीं। उनसे तो मिलने आना चाहिए था? मैं यहां थी न। अंदर कैसे कदम रखते? मैं देख लेती न। इसीलिए चले गये।

मंसाराम के जाने से घर सूना हो गया। दोनों छोटे लड़के उसी स्कूल में पढ़ते थे। निर्मला रोज उनसे मंसाराम का हाल पूछती। आशा थी कि छुट्टी के दिन वह आयेगा, लेकिन जब छुट्टी के दिन गुजर गये और वह न आया, तो निर्मला की तबीयत घबराने लगी। उसने उसके लिए मूंग के लड्डू बना रखे थे। सोमवार को प्रातः भूंगी का लड्डू देकर मदरसे भेजा। नौ बजे भूंगी लौट आयी। मंसाराम ने लड्डू ज्यों-के-त्यों लौटा दिये थे।

निर्मला ने पूछा–पहले से कुछ हरे हुए हैं, रे?

भूंगी–हरे-वरे तो नहीं हुए, और सूख गये हैं।

निर्मला– क्या जी अच्छा नहीं है?

भूंगी–यह तो मैंने नहीं पूछा बहूजी, झूठ क्यों बोलूं? हां, वहां का कहार मेरा देवर लगता है। वह कहता था कि तुम्हारे बाबूजी की खुराक कुछ नहीं है। दो फुलकियां खाकर उठ जाते हैं, फिर दिन भर कुछ नहीं खाते। हरदम पढ़ते रहते हैं।

निर्मला–तूने पूछा नहीं, लड्डू क्यों लौटाये देते हो?

भूंगी– बहूजी, झूठ क्यों बोलूं? यह पूछने की तो मुझे सुध ही न रही। हां, यह कहते थे कि अब तू यहां कभी न आना, न मेरे लिए कोई चीज लाना और अपनी बहूजी से कह देना कि मेरे पास कोई चिट्ठी–पत्तरी न भेजें। लड़कों से भी मेरे पास कोई संदेशा न भेजें और एक ऐसी बात कही कि मेरे मुंह से निकल नहीं सकती, फिर रोने लगे।

निर्मला–कौन बात थी कह तो?

भूंगी–क्या कहूँ कहते थे मेरे जीने को धिक्कार है? यही कहकर रोने लगे।

निर्मला के मुंह से एक ठंडी सांस निकल गयी। ऐसा मालूम हुआ, मानो कलेजा बैठा जाता है। उसका रोम–रोम आर्तनाद करने लगा। वह वहां बैठी न रह सकी। जाकर बिस्तर पर मुंह ढांपकर लेट रही और फूट–फूटकर रोने लगी। 'वह भी जान गये'। उसके अन्त:करण में बार–बार यही आवाज गूंजने लगी–'वह भी जान गये'। भगवान् अब क्या होगा? जिस संदेह की आग में वह भस्म हो रही थी, अब शतगुण वेग से धधकने लगी। उसे अपनी कोई चिंता न थी। जीवन में अब सुख की क्या आशा थी, जिसकी उसे लालसा होती? उसने अपने मन को इस विचार से समझाया था कि यह मेरे पूर्व कर्मों का प्रायश्चित है। कौन प्राणी ऐसा निर्लज्ज होगा, जो इस दशा में बहुत दिन जी सके? कर्त्तव्य की वेदी पर उसने अपना जीवन और उसकी सारी कामनाएं होम कर दी थीं। हृदय रोता रहता था, पर मुख पर हंसी का रंग भरना पड़ता था। जिसका मुंह देखने को जी न चाहता था, उसके सामने हंस–हंसकर बातें करनी पड़ती थीं। जिस देह का स्पर्श उसे सर्प के शीतल स्पर्श के समान लगता था, उससे आलिंगित होकर उसे जितनी घृणा, जितनी मर्मवेदना होती थी, उसे कौन जान सकता है? उस समय उसकी यही इच्छा थी कि धरती फट जाऐ और मैं उसमें समा जाऊं। लेकिन सारी विडम्बना अब तक अपने ही तक थी। अपनी चिंता उसन छोड़ दी थी, लेकिन वह समस्या अब अत्यंत भयंकर हो गयी थी। वह अपनी आंखों से मंसाराम की आत्मपीड़ा नहीं देख सकती थी। मंसाराम जैसे मनस्वी, साहसी युवक पर इस आक्षेप का जो असर पड़ सकता था, उसकी कल्पना ही से उसके प्राण कांप

उठते थे। अब चाहे उस पर कितने ही संदेह क्यों न हों, चाहे उसे आत्महत्या ही क्यों न करनी पड़े, पर वह चुप नहीं बैठ सकती। मंसाराम की रक्षा करने के लिए वह विकल हो गयी। उसने संकोच और लज्जा की चादर उतारकर फेंक देने का निश्चय कर लिया।

वकील साहब भोजन करके कचहरी जाने के पहले एक बार उससे अवश्य मिल लिया करते थे। उनके आने का समय हो गया था। आ ही रहे होंगे, यह सोचकर निर्मला द्वार पर खड़ी हो गयी और उनका इंतजार करने लगी लेकिन यह क्या? वह तो बाहर चले जा रहे हैं। गाड़ी जुतकर आ गयी, यह हुक्म वह यहीं से दिया करते थे। तो क्या आज वह न आयेंगे, बाहर-ही-बाहर चले जाऐंगे। नहीं, ऐसा नहीं होने पायेगा। उसने भूंगी से कहा-जाकर बाबूजी को बुला ला। कहना, एक जरुरी काम है, सुन लीजिए।

मुंशीजी जाने को तैयार ही थे। यह संदेशा पाकर अंदर आये, पर कमरे में न आकर दूर से ही पूछा-क्या बात है भाई? जल्दी कह दो, मुझे एक जरूरी काम से जाना है। अभी थोड़ी देर हुई, हेडमास्टर साहब का एक पत्र आया है कि मंसाराम को ज्वर आ गया है, बेहतर हो कि आप घर ही पर उसका इलाज करें। इसलिए उधर ही से होता हुआ कचहरी जाऊंगा। तुम्हें कोई खास बात तो नहीं कहनी है।

निर्मला पर मानो वज्र गिर पड़ा। आंसुओं के आवेग और कंठ-स्वर में घोर संग्राम होने लगा। दोनों पहले निकलने पर तुले हुए थे। दो में से कोई एक कदम भी पीछे हटना नहीं चाहता था। कंठ-स्वर की दुर्बलता और आंसुओं की सबलता देखकर यह निश्चय करना कठिन नहीं था कि एक क्षण यही संग्राम होता रहा तो मैदान किसके हाथ रहेगा। आखिर दोनों साथ-साथ निकले, लेकिन बाहर आते ही बलवान ने निर्बल को दबा लिया। केवल इतना मुंह से निकला-कोई खास बात नहीं थी। आप तो उधर जा ही रहे हैं।

मुंशीजी- मैंने लड़कों पूछा था, तो वे कहते थे, कल बैठे पढ़ रहे थे, आज न जाने क्या हो गया।

निर्मला ने आवेश से कांपते हुए कहा-यह सब आप कर रहे हैं

मुंशीजी ने त्योरियां बदलकर कहा-मैं कर रहा हूँ? मैं क्या कर रहा हूँ?

निर्मला-अपने दिल से पूछिए।

मुंशीजी-मैंने तो यही सोचा था कि यहां उसका पढ़ने में जी नहीं लगता, वहां और लड़कों के साथ खामाख्वाह पढ़ेगा ही। यह तो बुरी बात न थी और मैंने क्या किया?

निर्मला–खूब सोचिए, इसीलिए आपने उन्हें वहां भेजा था? आपके मन में और कोई बात न थी।

मुंशीजी जरा हिचकिचाए और अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए मुस्कराने की चेष्टा करके बोले–और क्या बात हो सकती थी? भला तुम्हीं सोचो।

निर्मला–खैर, यही सही। अब आप कृपा करके उन्हें आज ही लेते आइयेगा, वहां रहने से उनकी बीमारी बढ़ जाने का भय है। यहां दीदीजी जितनी तीमारदारी कर सकती हैं, दूसरा नहीं कर सकता।

एक क्षण के बाद उसने सिर नीचा करके कहा–मेरे कारण न लाना चाहते हों, तो मुझे घर भेज दीजिए। मैं वहां आराम से रहूँगी।

मुंशीजी ने इसका कुछ जवाब न दिया। बाहर चले गये, और एक क्षण में गाड़ी स्कूल की ओर चली।

मन। तेरी गति कितनी विचित्र है, कितनी रहस्य से भरी हुई, कितनी दुर्भेद्य। तू कितनी जल्द रंग बदलता है? इस कला में तू निपुण है। आतिशबाजी की चर्खी को भी रंग बदलते कुछ देरी लगती हैं, पर तुझे रंग बदलने में उसका लक्षांश समय भी नहीं लगता। जहां अभी वात्सल्य था, वहां फिर संदेह ने आसन जमा लिया।

वह सोचते थे–कहीं उसने बहाना तो नहीं किया है?

मंसाराम दो दिन तक गहरी चिंता में डूबा रहा। बार–बार अपनी माता की याद आती, न खाना अच्छा लगता, न पढ़ने ही में जी लगता। उसकी कायापलट–सी हो गई। दो दिन गुजर गये और छात्रालय में रहते हुए भी उसने वह काम न किया, जो स्कूल के मास्टरों ने घर से कर लाने को दिया था। परिणाम स्वरुप उसे बेंच पर खड़ा रहना पड़ा। जो बात कभी न हुई थी, वह आज हो गई। यह असह्य अपमान भी उसे सहना पड़ा।

तीसरे दिन वह इन्हीं चिंताओं में मग्न हुआ अपने मन को समझा रहा था–कहा संसार में अकेले मेरी ही माता मरी है? विमाताएं तो सभी इसी प्रकार की होती हैं। मेरे साथ कोई नई बात नहीं हो रही है। अब मुझे पुरुषों की भांति द्विगुण परिश्रम से अपना काम करना चाहिए, जैसे माता–पिता राजी रहें, वैसे उन्हें राजी रखना चाहिए। इस साल अगर छात्रवृति मिल गई, तो मुझे घर से कुछ लेने की जरूरत ही न रहेगी। कितने ही लड़के अपने ही बल पर बड़ी–बड़ी उपाधियां प्राप्त कर लेते हैं। भाग्य के नाम को रोने–कोसने से क्या होगा।

इतने में जियाराम आकर खड़ा हो गया।

मंसाराम ने पूछा–घर का क्या हाल है जिया? नई अम्मांजी तो बहुत प्रसन्न होंगी?

जियाराम–उनके मन का हाल तो मैं नहीं जानता, लेकिन जब से तुम आये हो, उन्होने एक जून भी खाना नहीं खाया। जब देखो, तब रोया करती हैं। जब बाबूजी आते हैं, तब अलबत्ता हंसने लगती हैं। तुम चले आये तो मैंने भी शाम को अपनी किताबें संभाली। यहीं तुम्हारे साथ रहना चाहता था। भूंगी चुड़ैल ने जाकर अम्मांजी से कह दिया। बाबूजी बैठे थे, उनके सामने ही अम्मांजी ने आकर मेरी किताबें छीन लीं और रोकर बोलीं, तुम भी चले जाओगे, तो इस घर में कौन रहेगा? अगर मेरे कारण तुम लोग घर छोड़-छोड़कर भागे जा रहे तो लो, मैं ही कहीं चली जाती हूँ। मैं तो झल्लाया हुआ था ही, वहां अब बाबूजी भी न थे, बिगड़कर बोला, आप क्यों कहीं चली जाऐंगी? आपका तो घर है, आप आराम से रहिए। गैर तो हमीं लोग हैं, हम न रहेंगे, तब तो आपको आराम–आराम ही होगा।

मंसाराम–तुमने खूब कहा, बहुत ही अच्छा कहा। इस पर और भी झल्लाई होंगी और जाकर बाबूजी से शिकायत की होगी।

जियाराम–नहीं, यह कुछ नहीं हुआ। बेचारी जमीन पर बैठकर रोने लगीं। मुझे भी करुणा आ गयी। मैं भी रो पड़ा। उन्होने आंचल से मेरे आंसू पोंछे और बोलीं, जिया। मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे भैया केइ विषय में तुम्हारे बाबूजी से एक शब्द भी नहीं कहा। मेरे भाग में कलंक लिखा हुआ है, वही भोग रही हूँ। फिर और न जाने क्या–क्या कहा, जो मेरी समझ में नहीं आया। कुछ बाबूजी की बात थी।

मंसाराम ने उद्विग्नता से पूछा–बाबूजी के विषय में क्या कहा? कुछ याद है?

जियाराम–बातें तो भई, मुझे याद नहीं आतीं। मेरी 'मेमोरी' कौन बड़ी हैं, लेकिन उनकी बातों का मतलब कुछ ऐसा मालूम होता था कि उन्हें बाबूजी को प्रसन्न रखने के लिए यह स्वांग भरना पड़ रहा है। न जाने धर्म–अधर्म की कैसी बातें करती थीं जो मैं बिल्कुल न समझ सका। मुझे तो अब इसका विश्वास आ गया है कि उनकी इच्छा तुम्हें यहां भेजन की न थी।

मंसाराम– तुम इन चालों का मतलब नहीं समझ सकते। ये बड़ी गहरी चालें हैं।

जियाराम– तुम्हारी समझ में होंगी, मेरी समझ में नहीं हैं।

मंसाराम- जब तुम ज्योमेट्री नहीं समझ सकते, तो इन बातों को क्या समझ सकोगे? उस रात को जब मुझे खाना खाने के लिए बुलाने आयी थीं और उनके आग्रह पर मैं जाने को तैयार भी हो गया था, उस वक्त बाबूजी को देखते ही उन्होंने जो कैंडा बदला, वह क्या मैं कभी भी भूल सकता हूँ?

जियाराम-यही बात मेरी समझ में नहीं आती। अभी कल ही मैं यहां से गया, तो लगीं तुम्हारा हाल पूछने। मैंने कहा, वह तो कहते थे कि अब कभी इस घर में कदम न रखूंगा। मैंने कुछ झूठ तो कहा नहीं, तुमने मुझसे कहा ही था। इतना सुनना था कि फूट-फूटकर रोने लगीं मैं दिल में बहुत पछताया कि कहां-से-कहां मैंने यह बात कह दी। बार-बार यही कहती थीं, क्या वह मेरे कारण घर छोड़ देंगे? मुझसे इतने नाराज हैं।? चले गये और मुझसे मिले तक नहीं। खाना तैयार था, खाने तक नहीं आये। हाय। मैं क्या बताऊं, किस विपत्ति में हूँ। इतने में बाबूजी आ गये। बस तुरन्त आंखें पोंछकर मुस्कुराती हुई उनके पास चली गईं। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आज मुझे बड़ी मिन्नत की कि उनको साथ लेते आना। आज मैं तुम्हें खींच ले चलूंगा। दो दिन में वह कितनी दुबली हो गयी हैं, तुम्हें यह देखकर उन पर दया आयी। तो चलोगे न?

मंसाराम ने कुछ जवाब न दिया। उसके पैर कांप रहे थे। जियाराम तो हाजिरी की घंटी सुनकर भागा, पर वह बेंच पर लेट गया और इतनी लम्बी सांस ली, मानो बहुत देर से उसने सांस ही नहीं ली है। उसके मुख से दुस्सह वेदना में डूबे हुए शब्द निकले-हाय ईश्वर। इस नाम के सिवा उसे अपना जीवन निराधार मालूम होता था। इस एक उच्छवास में कितना नैराश्य था, कितनी संवेदना, कितनी करुणा, कितनी दीन-प्रार्थना भरी हुई थी, इसका कौन अनुमान कर सकता है। अब सारा रहस्य उसकी समझ में आ रहा था और बार-बार उसका पीड़ित हृदय आर्तनाद कर रहा था-हाय ईश्वर। इतना घोर कलंक।

क्या जीवन में इससे बड़ी विपत्ति की कल्पना की जा सकती हैं? क्या संसार में इससे घोरतम नीचता की कल्पना हो सकती हैं? आज तक किसी पिता ने अपने पुत्र पर इतना निर्दय कलंक न लगाया होगा। जिसके चरित्र की सभी प्रशंसा करते थे, जो अन्य युवकों के लिए आदर्श समझा जाता था, जिसने कभी अपवित्र विचारों को अपने पास नहीं फटकने दिया, उसी पर यह घोरतम कलंक। मंसाराम को ऐसा मालूम हुआ, मानों उसका दिल फटा जाता है।

दूसरी घंटी भी बज गई। लड़के अपने-अपने कमरे में गए, पर मंसाराम हथेली पर गाल रखे अनिमेष नेत्रों से भूमि की ओर देख रहा था, मानो उसका

सर्वस्व जलमग्न हो गया हो, मानो वह किसी को मुंह न दिखा सकता हो। स्कूल में गैरहाजिरी हो जाऐगी, जुर्माना हो जाऐगा, इसकी उसे चिंता नहीं, जब उसका सर्वस्व लुट गया, तो अब इन छोटी-छोटी बातों का क्या भय? इतना बड़ा कलंक लगने पर भी अगर जीता रहूँ, तो मेरे जीने को धिक्कार है।

उसी शोकातिरेक दशा में वह चिल्ला पड़ा-माताजी। तुम कहां हो? तुम्हारा बेटा, जिस पर तुम प्राण देती थीं, जिसे तुम अपने जीवन का आधार समझती थीं, आज घोर संकट में है। उसी का पिता उसकी गर्दन पर छुरी फेर रहा है। हाय, तुम हो?

मंसाराम फिर शांतचित्त से सोचने लगा-मुझ पर यह संदेह क्यों हो रहा है? इसका क्या कारण है? मुझमें ऐसी कौन-सी बात उन्होंने देखी, जिससे उन्हें यह संदेह हुआ? वह हमारे पिता है, मेरे शत्रु नहीं है, जो अनायास ही मझ पर यह अपराध लगाने बैठ जाएं। जरूर उन्होनें कोई-कोई बात देखी या सुनी है। उनका मुझ पर कितना स्नेह था। मेरे बगैर भोजन न करते थे, वही मेरे शत्रु हो जाएं, यह बात अकारण नहीं हो सकती।

अच्छा, इस संदेह का बीजारोपण किस दिन हुआ? मुझे बोर्डिंग हाउस में ठहराने की बात तो पीछे की है। उस दिन रात को वह मेरे कमरे में आकर मेरी परीक्षा लेने लगे थे, उसी दिन उनकी त्योरियां बदली हुईं थीं। उस दिन ऐसी कौन-सी बात हुई, जो अप्रिय लगी हो। मैं नई अम्मां से कुछ खाने को मांगने गया था। बाबूजी उस समय वहां बैठे थे। हां, अब याद आती हैं, उसी वक्त उनका चेहरा तमतमा गया था। उसी दिन से नई अम्मां ने मुझसे पढ़ना छोड़ दिया। अगर मैं जानता कि मेरा घर में आना-जाना, अम्मांजी से कुछ कहना-सुनना और उन्हें पढ़ाना-लिखाना पिताजी को बुरा लगता है, तो आज क्यों यह नौबत आती? और नई अम्मां। उन पर क्या बीत रही होगी?

मंसाराम ने अब तक निर्मला की ओर ध्यान नहीं दिया था। निर्मला का ध्यान आते ही उसके रोंये खड़े हो गये। हाय उनका सरल स्नेहशील हृदय यह आघात कैसे सह सकेगा? आह। मैं कितने भ्रम में था। मैं उनके स्नेह को कौशल समझता था। मुझे क्या मालूम था कि उन्हें पिताजी का भ्रम शांत करने के लिए मेरे प्रति इतना कटु व्यवहार करना पड़ता है। आह। मैंने उन पर कितना अन्याय किया है। उनकी दशा तो मुझसे भी खराब हो रही होगी। मैं तो यहां चला आया, मगर वह कहां जाऐंगी? जिया कहता था, उन्होंने दो दिन से भोजन नहीं किया। हरदम रोया करती हैं। कैसे जाकर समझाऊं। वह इस अभागे के पीछे क्यों अपने

सिर यह विपत्ति ले रही हैं? वह बार-बार मेरा हाल पूछती हैं? क्यों बार-बार मुझे बुलाती हैं? कैसे कह दूं कि माता मुझे तुमसे जरा भी शिकायत नहीं, मेरा दिल तुम्हारी तरफ से साफ है।

वह अब भी बैठी रो रही होंगी। कितना बड़ा अनर्थ है। बाबूजी को यह क्या हो रहा है? क्या इसीलिए विवाह किया था? एक बालिका की हत्या करने के लिए ही उसे लाये थे? इस कोमल पुष्प को मसल डालने के लिए ही तोड़ा था।

उनका उद्वार कैसे होगा। उस निरपराधिनी का मुख कैस उज्ज्वल होगा? उन्हें केवल मेरे साथ स्नेह का व्यवहार करने के लिए यह दंड दिया जा रहा है। उनकी सज्जनता का उन्हें यह उपहार मिल रहा है। मैं उन्हें इस प्रकार निर्दय आघात सहते देखकर बैठा रहूँगा? अपनी मान-रक्षा के लिए न सही, उनकी आत्म-रक्षा के लिए इन प्राणों का बलिदान करना पड़ेगा। इसके सिवाय उद्धार का काई उपाय नहीं। आह। दिल में कैसे-कैसे अरमान थे। वे सब खाक में मिला देने होंगे। एक सती पर संदेह किया जा रहा है और मेरे कारण। मुझे अपनी प्राणों से उनकी रक्षा करनी होगी, यही मेरा कर्त्तव्य है। इसी में सच्ची वीरता है। माता, मैं अपने रक्त से इस कालिमा को धो दूंगा। इसी में मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण है।

वह दिन भर इन्हीं विचारों में डूबा रहा। शाम को उसके दोनों भाई आकर घर चलने के लिए आग्रह करने लगे।

सियाराम-चलते क्यों नही? मेरे भैयाजी, चले चलो न।

मंसाराम-मुझे फुरसत नहीं है कि तुम्हारे कहने से चला चलूं।

जियाराम-आखिर कल तो इतवार है ही।

मंसाराम-इतवार को भी काम है।

जियाराम-अच्छा, कल आआगे न?

मंसाराम-नहीं, कल मुझे एक मैच में जाना है।

सियाराम-अम्मांजी मूंग के लड्डू बना रही हैं। न चलोगे तो एक भी पाआगे। हम तुम मिल के खा जाऐंगे, जिया इन्हें न देंगे।

जियाराम-भैया, अगर तुम कल न गये तो शायद अम्मांजी यहीं चली आयें।

मंसाराम-सच। नहीं ऐसा क्यों करेंगी। यहां आयीं, तो बड़ी परेशानी होगी। तुम कह देना, वह कहीं मैच देखने गये हैं।

जियाराम–मैं झूठ क्यों बोलने लगा। मैं कह दूंगा, वह मुंह फुलाये बैठे थे। देख लें उन्हें साथ लाता हूँ कि नहीं।

सियाराम–हम कह देंगे कि आज पढ़ने नहीं गये। पड़े–पड़े सोते रहे।

मंसाराम ने इन दूतों से कल आने का वादा करके गला छुड़ाया। जब दोनों चले गये, तो फिर चिंता में डूबा। रात–भर उसे करवटें बदलते गुजरी। छुट्टी का दिन भी बैठे–बैठे कट गया, उसे दिन भर शंका होती रहती कि कहीं अम्मांजी सचमुच न चली आयें। किसी गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनता, तो उसका कलेजा धकधक करने लगता। कहीं आ तो नहीं गयीं?

छात्रालय में एक छोटा–सा औषधालय था। एक डॉक्टर साहब संध्या समय एक घण्टे के लिए आ जाए करते थे। अगर कोई लड़का बीमार होता तो उसे दवा देते। आज वह आये तो मंसाराम कुछ सोचता हुआ उनके पास जाकर खड़ा हो गया। वह मंसाराम को अच्छी तरह जानते थे। उसे देखकर आश्चर्य से बोले–यह तुम्हारी क्या हालत है जी? तुम तो मानो गले जा रहे हो। कहीं बाजार का का चस्का तो नहीं पड़ गया? आखिर तुम्हें हुआ क्या? जरा यहां तो आओ।

मंसाराम ने मुस्कराकर कहा–मुझे जिन्दगी का रोग है। आपके पास इसकी भी तो कोई दवा है?

डाक्टर–मैं तुम्हारी परीक्षा करना चाहता हूँ। तुम्हारी सूरत ही बदल गयी है, पहचाने भी नहीं जाते।

यह कहकर, उन्होंने मंसाराम का हाथ पकड़ लिया और छाती, पीठ, आंखें, जीभ सब बारी–बारी से देखीं। तब चिंतित होकर बोले–वकील साहब से मैं आज ही मिलूंगा। तुम्हें थाइसिस हो रहा है। सारे लक्षण उसी के हैं।

मंसाराम ने बड़ी उत्सुकता से पूछा–कितने दिनों में काम तमाम हो जाऐगा, डॉक्टर साहब?

डॉक्टर–कैसी बात करते हो जी। मैं वकील साहब से मिलकर तुम्हें किसी पहाड़ी जगह भेजने की सलाह दूंगा। ईश्वर ने चाहा, तो बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे। बीमारी अभी पहले स्टेज में है।

मंसाराम–तब तो अभी साल दो साल की देर मालूम होती हैं। मैं तो इतना इंतजार नहीं कर सकता। सुनिए, मुझे थायसिस–वायसिस कुछ नहीं है, न कोई दूसरी शिकायत ही है, आप बाबूजी को नाहक असमंजस में न डालिएगा। इस वक्त मेरे सिर में दर्द है, कोई दवा दीजिए। कोई ऐसी दवा हो, जिससे नींद भी आ जाऐ। मुझे दो रात से नींद नहीं आती।

डॉक्टर ने जहरीली दवाइयों की आलमारी खोली और शीशी से थोड़ी सी दवा निकालकर मंसाराम को दी। मंसाराम ने पूछा–यह तो कोई जहर है भला इस कोई पी ले तो मर जाऐ?

डॉक्टर–नहीं, मर तो नहीं जाऐ, पर सिर में चक्कर जरूर आ जाऐ।

मंसाराम–कोई ऐसी दवा भी इसमें है, जिसे पीते ही प्राण निकल जाऐं?

डॉक्टर–ऐसी एक–दो नहीं कितनी ही दवाएं हैं। यह जो शीशी देख रहे हो, इसकी एक बूंद भी पेट में चली जाऐ, तो जान न बचे। आनन–फानन में मौत हो जाऐ।

मंसाराम–क्यों डॉक्टर साहब, जो लोग जहर खा लेते हैं, उन्हें बड़ी तकलीफ होती होगी?

डॉक्टर–सभी जहरों में तकलीफ नहीं होती। बाज तो ऐसे हैं कि पीते ही आदमी ठंडा हो जाता है। यह शीशी इसी किस्म की है, इस पीते ही आदमी बेहोश हो जाता है, फिर उसे होश नहीं आता।

मंसाराम ने सोचा–तब तो प्राण देना बहुत आसान है, फिर क्यों लोग इतना डरते हैं? यह शीशी कैसे मिलेगी? अगर दवा का नाम पूछकर शहर के किसी दवा–फरोश से लेना चाहूँ, तो वह कभी न देगा। ऊंह, इसे मिलने में कोई दिक्कत नहीं। यह तो मालूम हो गया कि प्राणों का अन्त बड़ी आसानी से किया जा सकता है। मंसाराम इतना प्रसन्न हुआ, मानो कोई इनाम पा गया हो। उसके दिल पर से बोझ–सा हट गया। चिंता की मेघ–राशि जो सिर पर मंडरा रही थी, छिन्न–भिन्न् हो गयी। महीनों बाद आज उसे मन में एक स्फूर्ति का अनुभव हुआ। लड़के थियेटर देखने जा रहे थे, निरीक्षक से आज्ञा ले ली थी। मंसाराम भी उनके साथ थियेटर देखने चला गया। ऐसा खुश था, मानो उससे ज्यादा सुखी जीव संसार में कोई नहीं है। थियेटर में नकल देखकर तो वह हंसते–हंसते लोट गया। बार–बार तालियां बजाने और 'वन्स मोर' की हांक लगाने में पहला नम्बर उसी का था। गाना सुनकर वह मस्त हो जाता था, और 'ओहो हो।' करके चिल्ला उठता था। दर्शकों की निगाहें बार–बार उसकी तरफ उठ जाती थीं। थियेटर के पात्र भी उसी की ओर ताकते थे और यह जानने को उत्सुक थे कि कौन महाशय इतने रसिक और भावुक हैं। उसके मित्रों को उसकी उच्छृंखलता पर आश्चर्य हो रहा था। वह बहुत ही शांतचित्त, गम्भीर स्वभाव का युवक था। आज वह क्यों इतना हास्यशील हो गया है, क्यों उसके विनोद का पारावार नहीं है।

दो बजे रात को थियेटर से लौटने पर भी उसका हास्योन्माद कम नहीं हुआ। उसने एक लड़के की चारपाई उलट दी, कई लड़कों के कमरे के द्वार बाहर से बंद कर दिये और उन्हें भीतर से खट-खट करते सुनकर हंसता रहा। यहां तक कि छात्रालय के अध्यक्ष महोदय की नींद भी शोरगुल सुनकर खुल गयी और उन्होंने मंसाराम की शरारत पर खेद प्रकट किया। कौन जानता है कि उसके अन्त:स्थल में कितनी भीषण क्रांति हो रही है? संदेह के निर्दय आघात ने उसकी लज्जा और आत्मसम्मान को कुचल डाला है। उसे अपमान और तिरस्कार का लेशमात्र भी भय नहीं है। यह विनोद नहीं, उसकी आत्मा का करुण विलाप है। जब और सब लड़के सो गये, तो वह भी चारपाई पर लेटा, लेकिन उसे नींद नहीं आयी। एक क्षण के बाद वह बैठा और अपनी सारी पुस्तकें बांधकर संदूक में रख दीं। जब मरना ही है, तो पढ़कर क्या होगा? जिस जीवन में ऐसी-एसी बाधाएं हैं, ऐसी-ऐसी यातनाएं हैं, उससे मृत्यु कहीं अच्छी।

यह सोचते-सोचते तड़का हो गया। तीन रात से वह एक क्षण भी न सोया था। इस वक्त वह उठा तो उसके पैर थर-थर कांप रहे थे और सिर में चक्कर सा आ रहा था। आंखें जल रही थीं और शरीर के सारे अंग शिथिल हो रहे थे। दिन चढ़ता जाता था और उसमें इतनी शक्ति भी न थी कि उठकर मुंह हाथ धो डाले। एकाएक उसने भूंगी को रूमाल में कुछ लिए हुए एक कहार के साथ आते देखा। उसका कलेजा सन्न रह गया। हाय। ईश्वर वे आ गयीं। अब क्या होगा? भूंगी अकेले नहीं आयी होगी? बग्गी जरूर बाहर खड़ी होगी? कहां तो उससे उठा तक न जाता था, कहां भूंगी को देखते ही दौड़ा और घबराई हुई आवाज में बोला-अम्मांजी भी आयी हैं, क्या रे? जब मालूम हुआ कि अम्मांजी नहीं आयी, तब उसका चित्त शांत हुआ।

भूंगी ने कहा-भैया। तुम कल गये नहीं, बहूजी तुम्हारी राह देखती रह गयीं। उनसे क्यों रूठे हो भैया? कहती हैं, मैंने उनकी कुछ भी शिकायत नहीं की है। मुझसे आज रोकर कहने लगीं-उनके पास यह मिठाई लेती जा और कहना, मेरे कारण क्यों घर छोड़ दिया है? कहां रख दूं यह थाली?

मंसाराम ने रुखाई से कहा-यह थाली अपने सिर पर पटक दे चुड़ैल। वहां से चली है मिठाई लेकर। खबरदार, जो फिर कभी इधर आयी। सौगात लेकर चली है। जाकर कह देना, मुझे उनकी मिठाई नहीं चाहिए। जाकर कह देना, तुम्हारा घर है तुम रहो, वहां वे बड़े आराम से हैं। खूब खाते और मौज करते हैं। सुनती हैं, बाबूजी की मुंह पर कहना, समझ गयी? मुझे किसी का डर नहीं है,

और जो करना चाहें, कर डालें, जिससे दिल में कोई अरमान न रह जाऐ। कहें तो इलाहाबाद, लखनऊ, कलकत्ता चला जाऊं। मेरे लिए जैसे बनारस वैसे दूसरा शहर। यहां क्या रखा है?

भूंगी–भैया, मिठाई रख लो, नहीं रो–रोकर मर जाऐंगी। सच मानो रो–रोकर मर जाऐंगी।

मंसाराम ने आंसुओं के उठते हुए वेग को दबाकर कहा–मर जाएंगी, मेरी बला से। कौन मुझे बड़ा सुख दे दिया है, जिसके लिए पछताऊं। मेरा तो उन्होंने सर्वनाश कर दिया। कह देना, मेरे पास कोई संदेशा न भेजें, कुछ जरूरत नहीं।

भूंगी– भैया, तुम तो कहते हो यहां खूब खाता हूँ और मौज करता हूँ, मगर देह तो आधी भी न रही। जैसे आये थे, उससे आधे भी न रहे।

मंसाराम–यह तेरी आंखों का फेर है। देखना, दो–चार दिन में मुटाकर कोल्हू हो जाता हूँ कि नहीं। उनसे यह भी कह देना कि रोना–धोना बंद करें। जो मैंने सुना कि रोती हैं और खाना नहीं खातीं, मुझसे बुरा कोई नहीं। मुझे घर से निकाला है, तो आप न से रहें। चली हैं, प्रेम दिखाने। मैं ऐसे त्रिया–चरित्र बहुत पढ़े बैठा हूँ।

भूंगी चली गयी। मंसाराम को उससे बातें करते ही कुछ ठण्ड मालूम होने लगी थी। यह अभिनय करने के लिए उसे अपने मनोभावों को जितना दबाना पड़ा था, वह उसके लिए असाध्य था। उसका आत्म–सम्मान उसे इस कुटिल व्यवहार का जल्द–से–जल्द अंत कर देने के लिए बाध्य कर रहा था, पर इसका परिणाम क्या होगा? निर्मला क्या यह आघात सह सकेगी? अब तक वह मृत्यु की कल्पना करते समय किसी अन्य प्राणी का विचार न करता था, पर आज एकाएक ज्ञान हुआ कि मेरे जीवन के साथ एक और प्राणी का जीवन–सूत्र भी बंधा हुआ है। निर्मला यह समझेगी कि मेरी निष्ठुरता ही ने इनकी जान ली। यह समझकर उसका कोमल हृदय फट न जाऐगा? उसका जीवन तो अब भी संकट में है। संदेह के कठोर पंजे में फंसी हुई अबला क्या अपने को हत्यारिणी समझकर बहुत दिन जीवित रह सकती हैं?

मंसाराम ने चारपाई पर लेटकर लिहाफ ओढ़ लिया, फिर भी सर्दी से कलेजा कांप रहा था। थोड़ी ही देर में उसे जोर से ज्वर चढ़ आया, वह बेहोश हो गया। इस अचेत दशा में उसे भांति–भांति के स्वप्न दिखाई देने लगे। थोड़ी–थोड़ी देर के बाद चौंक पड़ता, आंखें खुल जाती, फिर बेहोश हो जाता।

सहसा वकील साहब की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ा। हां, वकील साहब की आवाज थी। उसने लिहाफ फेंक दिया और चारपाई से उतरकर नीचे खड़ा हो गया। उसके मन में एक आवेग हुआ कि इस वक्त इनके सामने प्राण दे दूं। उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैं मर जाऊं, तो इन्हें सच्ची खुशी होगी। शायद इसीलिए वह देखने आये हैं कि मेरे मरने में कितनी देर है। वकील साहब ने उसका हाथ पकड़ लिया, जिससे वह गिर न पड़े और पूछा–कैसी तबीयत है लल्लू। लेटे क्यों न रहे? लेट न जाओ, तुम खड़े क्यों हो गये?

मंसाराम–मेरी तबीयत तो बहुत अच्छी है। आपको व्यर्थ ही कष्ट हुआ। मुंशी जी ने कुछ जवाब न दिया। लड़के की दशा देखकर उनकी आंखों से आंसू निकल आये। वह हृष्ट–पुष्ट बालक, जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता था, अब सूखकर कांटा हो गया था। पांच–छः दिन में ही वह इतना दुबला हो गया था कि उसे पहचानना कठिन था। मुंशीजी ने उसे आहिस्ता से चारपाई पर लिटा दिया और लिहाफ अच्छी तरह उसे उढ़ाकर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। कहीं लड़का हाथ से तो नहीं जाएगा। यह ख्याल करके वह शोक विह्वल हो गये और स्टूल पर बैठकर फूट–फूटकर रोने लगे। मंसाराम भी लिहाफ में मुंह लपेटे रो रहा था। अभी थोड़े ही दिनों पहले उसे देखकर पिता का हृदय गर्व से फूल उठता था, लेकिन आज उसे इस दारुण दशा में देखकर भी वह सोच रहे हैं कि इसे घर ले चलूं या नहीं। क्या यहां दवा नहीं हो सकती? मैं यहां चौबीसों घण्टे बैठा रहूँगा। डॉक्टर साहब यहां हैं ही। कोई दिक्कत न होगी। घर ले चलने में उन्हें बाधाएं–ही–बाधाएं दिखाई देती थीं, सबसे बड़ा भय यह था कि वहां निर्मला इसके पास हरदम बैठी रहेगी और मैं मना न कर सकूंगा, यह उनके लिए असह्य था।

इतने में अध्यक्ष ने आकर कहा–मैं तो समझता हूँ कि आप इन्हें अपने साथ ले जाऐं। गाड़ी है ही, कोई तकलीफ न होगी। यहां अच्छी तरह देखभाल न हो सकेगी।

मुंशीजी–हां, आया तो मैं इसी खयाल से था, लेकिन इनकी हालत बहुत ही नाजुक मालूम होती हैं। जरा–सी असावधानी होने से सरसाम हो जाने का भय है।

अध्यक्ष–यहां से इन्हें ले जाने में थोड़ी–सी दिक्कत जरूर है, लेकिन यह तो आप खुद सोच सकते हैं कि घर पर जो आराम मिल सकता है, वह यहां किसी तरह नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त किसी बीमार लड़के को यहां रखना नियम–विरुद्ध भी है।

मुंशीजी- कहिए तो मैं हेडमास्टर से आज्ञा ले लूं। मुझे इनका यहां से इस हालत में ले जाना किसी तरह मुनासिब नहीं मालूम होता।

अध्यक्ष ने हेडमास्टर का नाम सुना, तो समझे कि यह महाशय धमकी दे रहे हैं। जरा तिनककर बोले-हेडमास्टर नियम-विरुद्व कोई बात नहीं कर सकते। मैं इतनी बड़ी जिम्मेदारी कैसे ले सकता हूँ?

अब क्या हो? क्या घर ले जाना ही पड़ेगा? यहां रखने का तो यह बहाना था कि ले जाने बीमारी बढ़ जाने की शंका है। यहां से ले जाकर हस्पताल में ठहराने का कोई बहाना नहीं है, जो सुनेगा, वह यही कहेगा कि डाक्टर की फीस बचाने के लिए लड़के को अस्पताल फेंक आये, पर अब ले जाने के सिवा और कोई उपाय न था। अगर अध्यक्ष महोदय इस वक्त रिश्वत लेने पर तैयार हो जाते, तो शायद दो-चार साल का वेतन ले लेते, लेकिन कायदे के पाबंद लोगों में इतनी बुद्वि, इतनी चतुराई कहां। अगर इस वक्त मुंशीजी को कोई आदमी ऐसा उज्र सुझा देता, जिसमें उन्हें मंसाराम को घर न ले जाना पड़े, तो वह आजीवन असका एहसान मानते। सोचने का समय भी न था। अध्यक्ष महोदय शैतान की तरह सिर पर सवार था। विवश होकर मुंशीजी ने दोनों साईसों को बुलाया और मंसाराम को उठाने लगे। मंसाराम अर्धचेतना की दशा में था, चौककर बोला, क्या है? कौन है?

मुंशीजी-कोई नहीं है बेटा, मैं तुम्हें घर ले चलना चाहता हूँ, आओ, गोद में उठा लूं।

मंसाराम- मुझे क्यों घर ले चलते हैं? मैं वहां नहीं जाऊंगा।

मुंशीजी- यहां तो रह नहीं सकते, नियम ही ऐसा है।

मंसाराम- कुछ भी हो, वहां न जाऊंगा। मुझे और कहीं ले चलिए, किसी पेड़ के नीचे, किसी झोंपड़े में, जहां चाहे रखिए, पर घर पर न ले चलिए।

अध्यक्ष ने मुंशीजी से कहा-आप इन बातों का ख्याल न करें, यह तो होश में नहीं है।

मंसाराम- कौन होश में नहीं है? मैं होश में नहीं हूँ? किसी को गालियां देता हू? दांत काटता हूँ? क्यों होश में नहीं हूँ? मुझे यहीं पड़ा रहने दीजिए, जो कुछ होना होगा, अगरन ऐसा है, तो मुझे अस्पताल ले चलिए, मैं वहां पड़ा रहूँगा। जीना होगा, जीऊँगा, मरना होगा मरूँगा, लेकिन घर किसी तरह भी न जाऊंगा।

यह जोर पाकर मुंशीजी फिर अध्यक्ष की मिन्नतें करने लगे, लेकिन वह कायदे का पाबंदी आदमी कुछ सुनता ही न था। अगर छूत की बीमारी हुई और

किसी दूसरे लड़के को छूत लग गयी, तो कौन उसका जवाबदेह होगा। इस तर्क के सामने मुंशीजी की कानूनी दलीलें भी मात हो गयीं।

आखिर मुंशीजी ने मंसाराम से कहा–बेटा, तुम्हें घर चलने से क्यों इंकार हो रहा है? वहां तो सभी तरह का आराम रहेगा। मुंशीजी ने कहने को तो यह बात कह दी, लेकिन डर रहे थे कि कहीं सचमुच मंसाराम चलने पर राजी न हो जाऐ। मंसाराम को अस्पताल में रखने का कोई बहाना खोज रहे थे और उसकी जिम्मेदारी मंसाराम ही के सिर डालना चाहते थे। यह अध्यक्ष के सामने की बात थी, वह इस बात की साक्षी दे सकते थे कि मंसाराम अपनी जिद से अस्पताल जा रहा है। मुंशीजी का इसमे लेशमात्र भी दोष नहीं है।

मंसाराम ने झल्लाकर हा–नहीं, नहीं सौ बार नहीं, मैं घर नहीं जाऊंगा। मुझे अस्पताल ले चलिए और घर के सब आदमियों को मना कर दीजिए कि मुझे देखने न आये। मुझे कुछ नहीं हुआ है, बिल्कुल बीमार नहीं हूँ। आप मुझे छोड़ दीजिए, मैं अपने पांव से चल सकता हूँ।

वह उठ खड़ा हुआ और उन्मत्त की भांति द्वार की ओर चला, लेकिन पैर लड़खडा गये। यदि मुंशीजी ने संभाल न लिया होता, तो उसे बड़ी चोट आती। दोनों नौकरों की मदद से मुंशीजी उसे बग्गी के पास लाये और अंदर बैठा दिया।

गाड़ी अस्पताल की ओर चली। वही हुआ जो मुंशीजी चाहते थे। इस शोक में भी उनका चित्त संतुष्ट था। लड़का अपनी इच्छा से अस्पताल जा रहा था क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं था कि घर में इसे कोई स्नेह नहीं है? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मंसाराम निर्दोष है? वह उसक पर अकारण ही भ्रम कर रहे थे।

लेकिन जरा ही देर में इस तुष्टि की जगह उनके मन में ग्लानि का भाव जाग्रत हुआ। वह अपने प्राण–प्रिय पुत्र को घर न ले जाकर अस्पताल लिये जा रहे थे। उनके विशाल भवन में उनके पुत्र के लिए जगह न थी, इस दशा में भी जबकि उसकी जीवल संकट में पड़ा हुआ था। कितनी विडम्बना है!

एक क्षण के बाद एकाएक मुंशीजी के मन में प्रश्न उठा–कहीं मंसाराम उनके भावों को ताड़ तो नहीं गया? इसीलिए तो उसे घर से घृणा नहीं हो गयी है? अगर ऐसा है, तो गजब हो जाऐगा।

उस अनर्थ की कल्पना ही से मुंशीजी के रोंए खड़े हो गये और कलेजा धक्धक करने लगा। हृदय में एक धक्का–सा लगा। अगर इस ज्वर का यही कारण है, तो ईश्वर ही मालिक है। इस समय उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। वह आग

जो उन्होंने अपने ठिठुरे हुए हाथों को सेंकने के लिए जलाई थी, अब उनके घर में लगी जा रही थी। इस करुणा, शोक, पश्चात्ताप और शंका से उनका चित्त घबरा उठा। उनके गुप्त रोदन की ध्वनि बाहर निकल सकती, तो सुनने वाले रो पड़ते। उनके आंसू बाहर निकल सकते, तो उनका तार बंध जाता। उन्होंने पुत्र के वर्ण-हीन मुख की ओर एक वात्सल्यूपर्ण नेत्रों से देखा, वेदना से विकल होकर उसे छाती से लगा लिया और इतना रोये कि हिचकी बंच गयी।